प्रस्तावना।

. शङ्करानन्द जो जो वाक्य मुमुक्षुके मननमें उपयोगी हैं, सो सो
पर्येकि वाक्योंका अर्थ आत्मपुराणमें निरूपण करगयेहैं, तिस आत्मपुर
लोकोंकी प्रवृत्तिको न देखकर पंडित काशारामने तिसपर टीका कीहै ि
सहित आत्मपुराणसे भी व्याकरणादिकोंके अभ्याससे रहित जो भाषाके
करनेहारे मुमुक्षु हैं, तिनको श्रुतिके अर्थका ज्ञान यथार्थ होता नहीं, यातें
वास्ते उसे जो उपयोगी टीकाएं हैं तिनको मिलाकर सम्पूर्ण आत्म
मूलकी भाषा स्वामि चिद्घनानन्दने की है उक्त आत्मपुराण भाषाका
वृहत् ग्रंथ है, जिसका मूल्य १०) मुद्रा है जो साधारण लोगोंकी शक्तिके प
हैं, तथा विचरनेहारे मुमुक्षु पुरुषोंके अर्थ एक बोझ है, इसके अतिरिक्त ि
मुमुक्षु पुरुषोंको आत्मपुराणके पठन तथा श्रवण करनेकी अभिलाषा तो है, पर
वृहत् ग्रन्थ होने तथा अवकाशके कारण अपनी अभिलाषा पूर्ण नहीं करसकते
उनकी सरलता विचारकर मैंने उक्त आत्मपुराणमें वर्णित सब उपनिषदों
अर्थोंसे तथा अन्य वेदान्त ग्रन्थोंसे मुमुक्षु पुरुषोंको आत्मसाक्षात्कार करने
अत्यन्त उपयोगी, ब्रह्मविचारमें परमानन्ददायी तथा आत्मदर्शनमें दर्पणरू
विषयोंका संक्षिप्त संग्रह कियाहै। इस संग्रहमें एक उत्तमता तथा अपूर्वता यह भ
करदी गईहै कि प्रत्येक विषय नामसहित भिन्न भिन्न वर्णितहैं जो सूचीपत्र
विदित है, उक्त संग्रह यद्यपि अधिकारी पुरुषोंके निमित्त ही प्रवृत्त है तथापि इस
संग्रहमें इतना सामर्थ्य है, कि जो बहिर्मुख तथा रागवान् पुरुष भी श्रद्धापूर्वक
निरन्तर पाठ तथा श्रवण करें तो तिस पाठ और श्रवणके प्रभावसे अन्तर्मुख तथ
वैराग्यवान् होकर आत्मज्ञानको प्राप्त हों, यातें मुमुक्षुपुरुषोंको इस संग्रहको अवश्य
श्रवण और मनन करना चाहिये ॥

जिन उपनिषदोंक्त अर्थोंसे यह उपनिषद्सारसंग्रह ग्रन्थ लिखागयाहै उनके
नाम यह हैं —तैत्तिरीय ऐतरेय, कौषीतकी, गर्भ, श्वेताश्वतर, बृहदारण्यक, कठ,
नारायण, आत्मप्रबोध, जाबाल, हंस, अमृतनाद, महत्, परमहंस, ब्रह्म, ब्रह्मबिन्दु,
कैवल्य, छान्दोग्य, केन, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, नृसिंहपूर्वोत्तरतापनीय [illegible], इत्यादि

इस प्रकार इस पुस्तकको मैंने सर्वाङ्गसुन्दर बनाके इसके छापने आदिक
समस्त अधिकार **श्रीवेङ्कटेश्वर यन्त्रालयके** अध्यक्ष श्रीमान् सेठ खेमराज
श्रीकृष्णदासजीको समर्पण किया है इसलिये अन्य कोई महानुभाव इसके
छापने आदिका साहस न करें। नहीं तो उन्हें लाभके बदले हानि उठानी पड़ेगी।

मङ्गलाकांक्षी, पण्डित गदाधर मिश्र.

॥ श्रीः ॥

चतुर्विंशत्युपनिषद्सार संग्रह भाषाकी विषयानुक्रमणिका ।

अनुक्रमणिका।

विषय.	पृष्ठांक.

[(७)] यजुर्वेदियकठोपनिषद्से–

(८) यजुर्वेदीयनारायणोपनिषद्से–

(९) आत्मप्रबोधोपनिषद्से–

विषय.	पृष्ठाङ्क.

(१७) कैवल्योपनिषद्से–

(१८) सामवेदीय छांदोग्योपनिषद्से–

विषय.	पृष्ठाङ्क

इति अनुक्रमणिका समाप्ता ।

॥ श्रीः ॥

अथ चतुर्विंशत्युपनिषत्सारसंग्रहभाषा ।

यजुर्वेदकी तैत्तिरीय उपनिषद्के भाष्यके अर्थसे उपनिषद्के आरम्भमें शांति-मंत्रपठननिरूपण ॥

ॐ शंनो मित्रः शंवरुणः ॥ शंनो भवत्वर्यमा ॥
शंन इन्द्रो बृहस्पतिः ॥ शंनो विष्णुरुरुक्रमः ॥
नमो ब्रह्मणे॥ नमस्ते वायो॥त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि॥
त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि॥ऋतं वदिष्यामि ॥
सत्यं वदिष्यामि ॥ तन्मामवतु ॥ तद्वक्तारमवतु ॥
अवतु माम् ॥ अवतु वक्तारम् ॥
ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ॥

प्राणवृत्तिका तथा दिनका अभिमानी देवता जो मित्र नामा है, सो मित्र देवता हमारेको कल्याण करै ॥ तैसेही रात्रिका तथा अपान वृत्तिका अभिमानी जो वरुण है सो वरुण हमारेको सुखका करनेवाला हो ॥ चक्षुमें तथा आदित्य मंडलमे स्थित अर्यमा नामका देवता हमारेको सुख करै ॥ तथा हस्तका अभिमानी देवता इन्द्र हमारा कल्याण करै ॥ वाणीमें तथा बुद्धिमें स्थित बृहस्पति देवता हमको सुखदेवैं ॥ पादोंका

अभिमानी अधिक बलवान् जो विष्णु है सो विष्णु देव हमारा कल्याण करै ॥ इसी प्रकार अध्यात्म करणोंके अभिमानी सर्व देवता हमारा कल्याण करैं ॥ ब्रह्मविद्याका अर्थी मुमुक्षु समष्टिवायुरूप ब्रह्मको नमस्कार करताहै ॥ हे ब्रह्मन् तेरे तांई मेरा नमस्कार है ॥ हे वायो तेरे तांई मेरा नमस्कार है ॥ हे वायो तुम ब्रह्मरूप हुएही प्राणरूपसे चक्षु आदिकोंसेभी अव्यवहित हो नेत्रादिक तो रूपादिकोंके ज्ञानद्वारा अनुमेय हैं॥ नेत्रादिकोंसे यह प्राणभोक्ताके अत्यन्त समीप है ॥ यातें नेत्रादिकोंकी अपेक्षासे श्रुतिमें प्राणको प्रत्यक्षरूपता कही है ॥ हे वायो प्रत्यक्ष ब्रह्मरूप तेरे तांई मेरा नमस्कार है ॥ जैसे राजाके द्वारपालको राजाके दर्शनकी इच्छावाला पुरुष कहता है कि तुमही राजा हो ॥ तैसे हृदयमें साक्षी रूपसे स्थित जो ब्रह्महै तिस ब्रह्मके प्राप्तिकी इच्छावाला मुमुक्षु प्राणसे कहता है कि मैं अधिकारी तुम प्राण स्वरूपको ब्रह्मरूपसे कथन करता हूँ ॥ हे प्राण बुद्धिमें जो अर्थ निश्चय होता है ॥ तथा वाक् कायसे जो अर्थ सिद्ध होता है तिन सर्व रूपसे आपही स्थित हो सर्व रूपसे आपको कथन करनेहारा जो मैं अधिकारी हूँ तिस मेरे तांई विद्याकी प्राप्ति करो ॥ तथा वक्ता जो आचार्य है तिस वक्ताको वक्तृत्व शक्तिके दानसे रक्षा करो ॥ तथा ब्रह्मविद्याके दानसे मुझ अधिकारीकी रक्षा करो ॥ ऐसे ब्रह्मविद्यामें विघ्ननिवृत्तिवास्ते अधिकारी

वारंवार देवताओंको नमस्कार करे ॥ आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक इन तीन प्रकारकी विद्याकी प्राप्तिमें जो विघ्न हैं तिन विघ्नोंकी निवृत्तिवास्ते तीनवार "ॐ शांतिः शांतिः शांतिः" यह मंत्र अधिकारी पठन करे ॥

अधिकारी ॐकाररूप परमेश्वरके आगे आत्मज्ञानके प्राप्तिनिमित्त निम्नलिखित रीतिसे प्रार्थना करे।

हे सर्व वेदोंमें श्रेष्ठ ॐकार आप सर्व रूप हो; प्रथम आप प्रजापतिको स्पष्ट प्रतीत हुए हो। हे परमेश्वर रूप ॐकार मुझ अधिकारीको ब्रह्मविद्याका दान करो ॥ हे भगवत् मैं आपकी कृपासे बहुत अर्थके धारण शक्तिवाला होऊँ ॥ मेरा शरीर ब्रह्मविद्याके योग्य होवे ॥ मेरी जिह्वा मधुर भाषणेवाली होवै और कर्णोंसे मैं बहुत अर्थको श्रवण करूं ॥ हे ॐकार तुम ब्रह्मके कोश हो ॥ जैसे कोश (मियान) में खड्ग रहता है, तिस खड्गकी प्रतीति कोशमें होती है, तैसे ब्रह्मकी प्राप्ति ॐकारके चिन्तनसे होतीहै, इस कारण ॐकारको ब्रह्मका कोशरूपसे कथन किया ॥ बाह्य घटादिकोंके ज्ञानसे तुम प्रतीत होते नहीं, तात्पर्य यह है कि बाह्य वृत्तिवाले तुमको नहीं जानते ॥ हे भगवन् जो आत्मज्ञान मैं श्रवण करता हूँ तिनकी आप रक्षा करो अर्थ यह कि मुझको

आत्मज्ञानकी विस्मृति न होवै ॥ ॐकार रूप ब्रह्मकी प्रार्थना समाप्त हुई ॥ ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ॐ

यजुर्वेदके तैत्तिरीय उपनिषदके भाष्यके अर्थसे ।

अथ अनुबन्धनिरूपण ॥

वेदान्तशास्त्रमें चार अनुबन्ध होते हैं (१) विषय (२) प्रयोजन (३) अधिकारी (४) सम्बन्ध ॥ जिसके ज्ञानसे अधिकारी पुरुषोंकी शास्त्रमें प्रवृत्ति होती है, तिसका नाम अनुबन्ध है ॥ "ब्रह्मविदाप्नोति परम्" इस सूत्रमें स्थित जो ब्रह्मपद है, सो ब्रह्म वेदान्तशास्त्रका विषय है ॥ शास्त्रका प्रयोजन दो प्रकारका होताहै, एक तो गौणप्रयोजन, दूसरा मुख्यप्रयोजन होता है, तहां तिस ब्रह्मको विषय करनेहारा जो अन्तः करणकी वृत्तिरूप ज्ञान है, सो ज्ञान इस वेदान्तशास्त्रका गौणप्रयोजन है, और सर्व अनर्थोंकी निवृत्तिपूर्वक जो ब्रह्मभावकी प्राप्ति है, सो वेदान्तशास्त्रका मुख्यप्रयोजनहै ॥ जिस पुरुषको तिन दोनों प्रयोजनोंके प्राप्तिकी इच्छा है, तथा विवेक, वैराग्य, शम, दमादि षट् सम्पत्ति, मुमुक्षुता इन चार साधनों करके सम्पन्न है, सो पुरुष इस वेदान्त शास्त्रका अधिकारी है ॥ अधिकारी पुरुषका तथा वेदान्तशास्त्रका परस्पर बोध्यबोधकभाव सम्बन्ध है । यहांपर अधिकारी पुरुष तो बोध्य है, और वेदान्त शास्त्र बोधक है ।

ब्रह्मज्ञानका और वेदान्तशास्त्रका परस्पर जन्यजनकभाव-सम्बन्ध है। यहांपर ब्रह्मज्ञान तो जन्यहै, और वेदान्तशास्त्र जनक है। ब्रह्मका और वेदान्तशास्त्रका परस्पर अभिव्यंग्य, अभिव्यंजकभावसम्बन्ध है यहांपर ब्रह्म तो अभिव्यंग्य है, और वेदान्तशास्त्र अभिव्यंजक है॥ जो पदार्थ पूर्वसिद्ध वस्तुकी प्रतीति कराइ देवै, तिस पदार्थका नाम अभिव्यंजक है। और तिस प्रतीतिका विषय जो पदार्थ होवै, तिसका नाम अभिव्यंग्य है। जैसे हरीतकी आमलकादिकोंका भक्षण जलके मधुर रसकी प्रतीति कराता है. इससे हरीतकी आमलकादि का भक्षण जलके माधुर्यताका अभिव्यंजक है, और तिस जलकी माधुर्यता अभिव्यंग्य है॥ तैसे यह वेदान्त शास्त्र भी पूर्व सिद्ध ब्रह्मका साक्षात्कार कराता है। इस कारण वेदान्तशास्त्र अभिव्यंजक है, और ब्रह्म अभिव्यंग्य है॥ अज्ञानका और वेदान्त शास्त्रका परस्पर निवृत्य निवर्तकभाव सम्बन्ध है। यहांपर अज्ञान तो निवृत्य है, और आत्मज्ञान द्वारा वेदान्तशास्त्र तिसका निवर्त्तक है॥ इति॥ अनुबंध-निरूपण समाप्त हुआ॥

वेदान्त शास्त्रका अधिकारी कौन है।

जो पुरुष विवेक वैराग्य, षट्सपत्ति, तथा मुमुक्षुत्व इन चार साधनोंकरके युक्त हो वह वेदान्तशास्त्रके विचारका अधिकारीहै।

१ नित्यानित्य विवेक निरूपण ।

ब्रह्म सत्य है और जगत् मिथ्या है, इसका निश्चय करना ।

२ वैराग्यनिरूपण ॥

इस लोकके स्रक् चन्दन वनितादि भोगोंमें वमन विष्ठा मूत्र समान इच्छा न होना यह इस लोकका वैराग्यहै । स्वर्ग लोक तथा ब्रह्मलोकके रम्भा उर्वशी आदिके संभोगादि विषयोंकी इच्छा न करनी यह परलोक सम्बन्धी वैराग्यहै ॥

३ शमादि षट्सम्पत्तिनिरूपण ।

बालककी नांई इस मनको रागद्वेषादिक विकारोंसे रहित करना, इसका नाम शम है । वागादिक इन्द्रियोंको अपने अपने विषयोंसे रहित करना, इसका नाम दम है ॥ प्रारब्धानुसार जो पदार्थ प्राप्त हो, उसीसे अपने शरीरका निर्वाह करना, प्रिय अप्रिय वस्तुकी प्राप्तिमें रागद्वेष न करना, इस प्रकारके सन्तोषका नाम उपरति है । शरीर करके तथा वाणी करके दुष्ट पुरुषोंने करी जो पीडा सो पीडा हमारे वास्तव स्वरूपमें तीनों काल नहीं है, किन्तु हमारे शरीर, अन्तःकरण, इन्द्रियादिकों विषे सो पीडा है, और मैं तिन शरीरादिकोंसे सर्वदा असंग हूँ, ऐसा विचार कर तिन दुष्ट पुरुषोंके ऊपर क्रोध न करना, और जो कोई निन्दा करे उसको श्रवण करके यह विचार कर क्षमा

करना, कि यह निन्दक पुरुष हमारे शत्रु नहीं, हैं किन्तु हमारे परम मित्र हैं, क्योंकि दुःखरूप फल देनेहारे जो हमारे पाप कर्म हैं तिनको यह निन्दक अपने विषे लेताहैं यथा श्रुति (सुहृदः साधुकृत्यां द्विषन्तः पापकृत्यां ॥ अर्थ ज्ञानीका सेवक तथा प्रशंसक ज्ञानीके शुभकर्मोंका फल पाता है और ज्ञानीका द्वेषी तथा निन्दक ज्ञानीके अशुभ कर्मोंका फल पाताहै) इससे परे कोई उपकार नहीं है. कि हमारे किये पापकर्मोंका फल वह भोगेगा, ऐसा विचार कर क्षमा करना, इसी प्रकार दुर्वचनादि या ताडनादि करके जो दुःख देवै उसको क्षमा करके उसका हितही चाहना, यह विचारकर कि हमारे शरीरमें तथा इन पुरुषों तथा अन्य प्राणियोंके शरीरोंमें आत्मा एकहीहै, यह विचार कर उन दुष्टोंकाभी अनिष्ट न चाहना वरन इष्टही चाहना इत्यादि यह तितिक्षाहै ॥ आत्माके साक्षात्कार वास्ते जो चित्तकी सावधानता है, तिसका नाम समाधान है । गुरु शास्त्रके उपदेशविषे जो विश्वासहै. उसका नाम श्रद्धा है ॥

४ मुमुक्षुत्वनिरूपण।

संसार (जन्ममरण) रूप घोर दुःखदाई वनसे भय उत्पन्न होकर मोक्षकी तीव्र इच्छा होना ॥

पूर्वोक्त प्रकार, विवेक, वैराग्य, शम, दम, उपरति, तितिक्षा, समाधान, श्रद्धा, तथा मुमुक्षुता, इन साधनों संयुक्त

अधिकारी पुरुष गुरुमुखसे वेदान्तशास्त्रका श्रवण करके उसके अर्थका मनन करै और श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरुके मुखसे "अयं आत्मा ब्रह्म." "अहं ब्रह्मास्मि" "तत्त्वमसि," "प्रज्ञानमानन्दं ब्रह्म," इन महावाक्योंके विचारसे जीव ब्रह्मके अभेदरूप ज्ञानकी प्राप्ति करके निदिध्यासनपूर्वक आत्मपरायण होकर जीवन्मुक्त विदेहमुक्त को प्राप्त हो तदनन्तर अमृतरूप मोक्षका लाभ होगा ॥ इति ॥

यजुर्वेदीय बृहदारण्यक उपनिषद् याज्ञवल्क्य-कांडके भाष्यके अर्थसे ॥ कहोल तथा याज्ञवल्क्य प्रश्नोत्तरसे ॥

॥ ब्राह्मणका स्वरूप ॥

जन्मना जायते शूद्रो व्रतबन्धाद्द्विजः स्मृतः ॥
वेदाऽभ्यासाद्भवेद्विप्रो ब्रह्म जानाति ब्राह्मणः ॥ १ ॥

श्रवण, मनन, निदिध्यासनसे स्वप्रकाश सुखरूप ब्रह्मकी प्राप्तिकी जिसको इच्छा हो, वह शास्त्रके पदार्थों तथा वाक्यार्थोंका ज्ञान प्राप्त करके चतुष्टयसाधनसम्पन्न होकर प्रथम गुरुमुखसे वेदान्तवाक्योंका श्रवण करके तिन वेदान्त वाक्योंका अद्वितीय ब्रह्मविषे तात्पर्यनिश्चय करै. इसका नाम श्रवण है । तिस श्रवणके अनन्तर सो मुमुक्षु पुरुष जन्म मरणादि विकारवान् तथा आसक्तिद्वारा सर्व एषणाओंका

जनक जो यह शरीर है, तिसको अन्वय व्यतिरेक करके दुःखका कारण जाने । और सर्व एषणाओंका परित्याग करके सो मुमुक्षु जन बालककी नाँई रागद्वेषसे रहित होकर स्थित होवे, तात्पर्य्य यह है, कि रागद्वेषपूर्वक इन्द्रियोंकी प्रवृत्तिसे रहित जो बालक है, सो दुःखको प्राप्त होता नहीं । इससे बालककी नाई रागद्वेषसे रहित होकर मुमुक्षु पुरुष वेदान्तके अर्थका मनन करै । जैसे मालाके पुष्पोंमें तो सूत्रका अन्वय है, पुष्पोंका परस्पर व्यतिरेक है । तैसेही जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति बाल्य, यौवन वृद्धत्व, इत्यादिक अवस्थाओंमें आत्माका तो अन्वय है, और तिन अवस्थाओंका परस्पर व्यतिरेक है, तथा इसी प्रकार नाना युक्तियों करके विरोधकी निवृत्तिपूर्वक जो वेदान्तका चिन्तन है, तिसको शास्त्रवेत्ता पुरुष मनन कहते हैं । श्रवण, मननके अनन्तर अनात्माकार विजातीय वृत्तियोंका परित्याग करके आत्माकार सजातीय वृत्तियोंका प्रवाहरूप जो निदिध्यासन है, तिसको निरन्तर करै तात्पर्य यह है कि मनवाणीका विषय जो दृश्य प्रपंच है, तिससे मैं विलक्षण हूं, और मैं आनन्द स्वरूप हूं, और मैं स्वप्रकाश हूं, और सजातीय, विजातीय, स्वगतभेदसे रहित हूं, इन प्रकारोंकी वृत्तियोंका निरन्तर प्रवाहरूप जो निदिध्यासन है तिस निदिध्यासनमें जिसकी निष्ठा है, और पूर्वोक्त श्रवण मननको चिरकाल पर्यन्त श्रद्धापूर्वक जिसने सेवन

किया है तथा आगे लिखे हुए तीन प्रकारके असम्भावना दोषोंको निवृत्त किया है, ऐसा मुमुक्षु पुरुष ब्रह्मविद्याको प्राप्त होता है, तिस ब्रह्म विद्यावान पुरुषको श्रुतिमें ब्राह्मण कहा है । श्रवण, मनन, निदिध्यासनको परित्याग करके मुमुक्षु पुरुष किसी और उपायसे ब्राह्मणभावको नहीं प्राप्त होसकता ॥ इति ॥

॥ अथ तीनप्रकारका असम्भावनादोष ॥

(१) प्रमाणगत असम्भावना दोष यह है वेदान्तशास्त्र जीव ब्रह्मके अभेदका प्रतिपादक है, अथवा भेदका प्रतिपादक है, इस संशयको अधिकारी पुरुष ब्रह्मवेत्ता गुरुके मुखसे वेदान्त वचनोंको श्रवण करके दूर करै ।

(२) प्रमेयगत असम्भावना दोष यह है यह प्रत्यक् आत्मा ब्रह्मसे अभिन्न है अथवा भिन्न इत्यादिक संशयोंको अधिकारी पुरुष तिन श्रवण किये हुए वेदान्तवचनोंके अर्थके मनन करनेसे दूर करै ॥

(३) विपरीत भावना दोष यह है परिपूर्ण आत्माको परिछिन्न जानना इत्यादि संशयोंको अधिकारी पुरुष तिस मनन किये हुए अर्थ विषे चित्तकी वृत्तियोंका प्रवाहरूप निदिध्यासनसे निवृत्ति करै ॥

इसप्रकार अधिकारी पुरुष श्रवणादिक साधनोंकरके आत्मदेवको साक्षात्कार करै ॥ इति ॥

ॐतत्सद्ब्रह्मणे नमः

यजुर्वेदीय बृहदारण्यक उपनिषद्से भाष्यके अर्थसे याज्ञवल्क्यका ब्राह्मणोंप्रति उपदेश शरीर तथा प्रपंचका मूल कारण ॥

हे ब्राह्मणो! प्रलय कालमें तथा सुषुप्ति अवस्था विषे स्थूल तथा सूक्ष्म शरीरके लय होनेके अनन्तर केवल अज्ञान स्थित रहताहै जिसमें सूक्ष्म शरीरोंके संस्कार बीजरूपसे स्थित रहतेहैं; परन्तु अज्ञान अर्थात् माया जड़ है, अतः उससे समष्टि तथा व्यष्टि सूक्ष्म और स्थूल शरीरकी उत्पत्ति सम्भव नहीं, इस कारण चेतनरूप परमात्माकी अपेक्षा होतीहै, जैसे पृथ्वीमें स्थित बीजका ज्ञान उसके कार्य अंकुरसे होता है, और उस अंकुरसे स्थूल वृक्ष उत्पन्न होता है,परन्तु इसमें भूमिकी अपेक्षा रहती है, इसी प्रकार अज्ञानमें जीवों के संस्काररूप बीजसे अंकुर रूप सूक्ष्म शरीर और वृक्षरूप स्थूल शरीर चेतन परमात्मा की सत्तासे उत्पन्न होते हैं;क्योंकि अज्ञानचेतन परमात्माके आश्रय है, विना चेतन परमात्माकी सत्ताके जड़ अज्ञानमें सृष्टिकी उत्पत्तिकी सामर्थ्य नहीं है, जैसे विनाभूमिके केवल बीजसे अंकुर तथा वृक्ष नहीं उत्पन्न हो सकते ॥

अज्ञानविशिष्ट चेतनका नाम जीव ईश्वर है, तिस जीव ईश्वरके आश्रय अज्ञान नहीं है, क्योंकि इसमें आत्माश्रय-

दोषकी प्राप्ति होवेगी, किन्तु शुद्ध परमात्माके आश्रित अज्ञान रहता है, यह सर्व वेदान्तका सिद्धान्त है ॥

"याज्ञवल्क्य व जनक संवाद
सृष्टिकी उत्पत्तिका मूल कारण।

(१) हे जनक जैसे नट अपनी इच्छासे नानाप्रकारके शरीरोंको धारण करता है, तैसे यह जीवात्मा कर्मके भोगनेकी इच्छासे नानाभांतिके शरीरोंको प्राप्त होता है । यातें संसाररूप चक्रका इच्छारूप काम ही मूल कारण है ॥ स्पष्ट रूपसे प्रमाण ॥ जब यह जीवात्मा प्रथम शुभ कर्म अथवा अशुभ कर्म विषे इच्छा करता है, तिस पीछे यह जीवात्मा उस शुभ अथवा अशुभ कर्मोंके करनेका निश्चय करता है । तब यह जीवात्मा तिस शुभ अथवा अशुभ कर्ममें प्रवृत्त होता है, । चित्तरूपी भूमिमें दो प्रकारके संस्कार रहते हैं, एक तो कर्मजन्यसंस्कार और दूसरा ज्ञानजन्यसंस्कार ॥ तहां कर्मजन्य संस्कार अपने फल भोगनेके वास्ते इच्छाको उत्पन्न करता है और ज्ञानजन्यसंस्कार जिस कर्ममें इच्छा होती है, तिस कर्मविषे निश्चयका ज्ञान उत्पन्न करता है, तदनन्तर जीवात्मा तिस शुभ अशुभकर्मों में प्रवृत्त होता है । तात्पर्य यह है कि इस जीवका शुभ अथवा अशुभ

कर्मोंमें प्रवृत्त करनेवाला जो कर्तव्यपदार्थोंका निश्चय है तिस निश्चयका इच्छारूप कामही मूल कारण है ॥

(२) हे जनक ! सृष्टिकी उत्पत्तिमें कामही सबसे पूर्व है। तहां श्रुति ॥ सोऽकामयत एकोहं बहुस्याम् ॥ अर्थ यहहै ॥ सो माया विशिष्ट परमात्मा देव सृष्टिके आदिकालमें इस प्रकारकी इच्छा करता भया एकही मैं परमात्मा देव बहुत रूप करके उत्पन्न होऊं ॥ इस प्रकारका संकल्प करके सो परमात्मा देव सूक्ष्मस्थूलरूप संपूर्ण जगतको उत्पन्न करता भया, इत्यादिक श्रुतियोंमें अविद्याजन्य कामविषेही सर्व जगतका मूल कारण कथन किया है। हे जनक, केवल श्रुतिप्रमाणसेही कामविषे जगतकी कारणता सिद्ध नहीं है, किन्तु लोकोंके व्यवहारकरकेभी कामही विषे संसारकी कारणता सिद्ध होती है, क्योंकि लोकमें जितने चेतनप्राणी हैं, ते सब प्राणी प्रथम, यह वस्तु हमको प्राप्त हो, या यह वस्तु हमको न प्राप्त हो, इस प्रकारकी कामना करते हैं, तिस कामनाके अनन्तर तिस तिस कार्यविषे प्रवृत्ति द्वारा ते प्राणी नाना प्रकारके संसार को प्राप्त होते हैं, काम, इच्छा, राग, स्पृहा, इन शब्दोंका एकही अर्थ है, यही चारों स्वर्ग, नर्क सुख, दुःख जन्म, मरणादिके कारण हैं ॥ इति ॥

ॐ एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म ।

यजुर्वेदीय तैत्तिरीय उपनिषद्से भाष्यके अर्थसे ब्रह्मरूप आत्मासे इस जगतकी उत्पत्तिका प्रकारनिरूपण ॥

जगतमें जो जो पदार्थ कार्यरूप होता है, वह अपने कारणसे भिन्न सत्तावाला होता नहीं । जैसे मृत्तिकाके कार्य -घट पियाला आदि मृत्तिका रूपही हैं । तैसे ब्रह्मरूप आत्माका -कार्यरूप जो यह आकाशादिक प्रपंच हैं, सो अपने कारण ब्रह्मरूप आत्मासे भिन्न नहीं, किन्तु, सर्व प्रपंच आत्मारूपही है । इस कारण सर्व प्रपंच अद्वितीय ब्रह्मरूपही है ॥ अथ सृष्टिक्रम ॥ सत्यज्ञान अनन्त ब्रह्म रूप आत्मासे प्रथम शब्दगुणवाला आकाश उत्पन्न हुआ, आकाशसे स्पर्श गुणवाला वायु उत्पन्न हुआ वायुसे रूप गुणवाला अग्नि उत्पन्न हुआ, अग्निसे रसगुणवाला जल उत्पन्न हुआ, जलसे गन्धगुणवाली पृथिवी उत्पन्न हुई, सम्पूर्ण कार्योंमें अपना अपना कारण तादात्म्य सम्बन्ध करके रहताहै । इस कारण सो सत्यरूप आत्मा आकाशरूप कार्यमें तादात्म्य सम्बन्ध करके स्थितहै और आकाश वायु में, वायु अग्निमें, अग्नि जलमें. और जल पृथिवी रूप कार्यमें तादात्म्य सम्बन्ध करके स्थितहै, इस कारण आकाशमें वो एक शब्दगुणही. रहताहै, वायुमें शब्द स्पर्श यह दो गुण हैं, वायुमें स्पर्शगु-

णतो अपना है और शब्दगुण आकाशरूप कारणका है, अग्निमें शब्द, स्पर्श, रूप यह तीन गुणहैं, रूप गुण तो अग्निका है शब्द, स्पर्श यह दोनों गुण आकाश और वायुरूप कारणोंके हैं, जलमें शब्द, स्पर्श, रूप, रस यह चार गुण हैं, तहां रस गुण तो जलमें अपना है और शब्द स्पर्श, रूप, यह तीनों गुण क्रमसे आकाश, वायु, अग्निरूप कारणोंके हैं, पृथिवीमें शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध यह पांच गुण रहतेहैं, तहां पृथिवीमें गन्धगुण तो अपना है, और शब्द, स्पर्श, रूप, रस, यह चार गुण क्रमसे आकाश, वायु अग्नि और जलरूप कारणोंके हैं इस प्रकार आकाशादिक कारणोंके गुण वायु आदिक कार्योंमें प्राप्त होते हैं, जैसे आकाशादिक भूतोंके शब्द स्पर्शादिक गुण हैं, तैसे इस आनन्द स्वरूप आत्माके ज्ञान आनन्द गुण रूप नहीं हैं, किन्तु सो ज्ञान आनन्द आत्माके स्वरूपही हैं; क्योंकि जो कदाचित चेतन आत्माके ज्ञान आनन्द गुणरूप होते, तो जैसे आकाशादिक कारणोंके शब्दादिक गुण वायु आदिक कार्योंमें प्रतीत होतेहैं तैसेही आत्माके गुणभी प्रतीत होते, परन्तु आकाशादिक कार्योंमें ते ज्ञानादिक गुण प्रतीत नहीं होतेहैं, इससे यह जाना जाताहै कि ज्ञान आनन्द आत्माके गुणरूप नहीं हैं, किन्तु सो ज्ञान, आनन्द आत्माके स्वरूपही हैं । किम्वा इस लोकमें जो जो पदार्थ पारिणामी कारण

होते हैं तिस तिस परिणामी कारणके गुणही उनके कार्य्यमें प्रतीत होते हैं, जैसे आकाशादिक परिणामी कारणोंके शब्दादिक गुण वायु आदिक कार्योंमें प्रतीत होते हैं । तैसे यह सत् चित आनन्द स्वरूप आत्मा जो कदाचित् आकाशादिकोंका परिणामी कारण होता तो इस आत्माके सत् चित् आनन्दादिक धर्म तिन आकाशादिक भूतोंमें प्रतीत होना चाहिये, और इस आत्माके सत् चित् आनन्दादिक धर्म तिन आकाशादिक भूतोंमें देख पडता नहीं, इससे जाना जाता है कि यह आत्मादेव इन आकाशादिक जड़ जगतका परिणामी उपादान कारण नहीं है, किन्तु यह आत्मादेव इस जगतका विवर्त उपादान कारण है । और तिस ब्रह्मरूप आत्मामें सो विवर्त उपादानरूपता मायाके विना सम्भव नहीं हैं, इससे सो परमात्मादेव माया करकेही तिन आकाशादिक प्रपंचका विवर्त उपादान कारण है ॥ तहां दृष्टान्त ॥ जैसे परिणामभावसे रहित जो रज्जु है, सो रज्जु माया (भ्रान्ति) करकेही सर्पका विवर्त उपादान कारण होता है, तैसेही परिणामभावसे रहित यह आत्मादेवभी माया करकेही इस जगतका विवर्त उपादान कारण होता है । वास्तवमें मायादिक उपाधियुक्त ब्रह्मही सम्पूर्ण जगतका कारण है, यातें जैसे मायाविशिष्ट ब्रह्म आकाशका कारण है, तैसे आकाश विशिष्ट ब्रह्म वायुका कारण है और वायुविशिष्ट ब्रह्म अग्निका

कारण है, और अग्निविशिष्ट ब्रह्म जलका कारण है, और जलविशिष्ट ब्रह्म पृथिवीका कारण है, और पृथिवीविशिष्ट ब्रह्म घटव्रीहि वनस्पति आदिकोंका कारण है। शब्दादिक पंच गुणोंवाली तथा सर्व ब्रह्माण्डकी जननी तथा स्थावर जंगमरूप सर्व भूतोंका धारण करनेवाली जो पृथिवी पूर्वजलसे उत्पन्न हुई है, तिस पृथिवीसे अनेक प्रकारकी औषधियां अर्थात् अन्न वनस्पतियां आदि जो मनुष्यादि जंगम प्राणियोंके भक्षण करने योग्य हैं, उत्पन्न होती हैं। तिन नाना प्रकारकी औषधियोंसे अनेक प्रकारके अन्न उत्पन्न होते हैं, तिनको पुरुष तथा स्त्रियां भक्षण करती हैं, जिससे वीर्य उत्पन्न होता है, जो वीर्य (रेत) स्वर्ग, मेघ, भूमिलोक, पुरुष, योषित् इन पंचअग्नियोंमें योषितरूप पंचम अग्निका आहुतिरूप है (तिन पंचअग्नियोंका निरूपण पृष्ठ १६३ में छान्दोग्योपनिषद्के अर्थमें विस्तारसहित है) तिस वीर्यसे हस्तपादादिक अंगोवाला यह पुरुषशरीर उत्पन्न होता है, और उसी अन्नके भक्षणसे यह शरीर वृद्धि तथा पुष्टताको प्राप्त होता है, इसी कारण इस शरीरको श्रुतिभगवती अन्नरसमय इस नाम करके कथन करती है। इसी प्रकार सर्व जंगम प्राणियोंकी उत्पत्ति आदि होती है। जो वस्तु जिस प्राणीके भक्षण योग्य है वही उसका अन्न है ॥ इ'व ॥

अथ पंच सूक्ष्म भूतोंका पंचीकरण तथा उनसे अन्तःकरण तथा इन्द्रियादिकों- की उत्पत्तिप्रकार निरूपण ।

परमात्मादेवने सूक्ष्म पंचभूतोंको उत्पन्न करके उनका पंची-करण इस प्रकार करता भया प्रथम पंचभूतोंके दो दो वृद्धभाग (आधे आधे) किये, उन प्रत्येकके प्रथम वृद्ध भागको पृथक् पृथक् रक्खा और उनके द्वितीय वृद्ध भागके बराबर चार चार विभाग करके अपने अपने वृद्ध भागोंको त्यागकर दूसरे भूतोंके वृद्ध भागोंमें मिलानेसे पंचीकरण होता है । परन्तु पृथि-वी आदिक भूतोंके जो तामस भाग हैं तिनका पंचीकरण नहीं हुआ ॥ तिन भूतोंके मिलेहुए राजस भागसे प्राणकी उत्प-त्ति होती है, और भिन्न भिन्न राजस भागसे वो पंचकर्मेंद्रियों-की उत्पत्ति होती है, यथा, आकाशके राजस भागसे वाक् इन्द्रियकी उत्पत्ति होवी है, वायुके राजस अंशसे हस्त, तथा अग्निके राजस अंशसे पाद, तथा जलके राजस अंशसे गुदा, तथा पृथिवीके राजस अंशसे उपस्थ इन्द्रिय उत्पन्न होवी हैं॥ इस प्रकार अपंचीकृत भूतोंके राजस भागका कार्य निरूपण किया ॥ अब सात्त्विक भागके कार्यको कहते हैं ॥ आकाश के सात्त्विक भागसे श्रोत्र, वायुके सात्त्विक भागसे त्वक, अग्निके सात्त्विक भागसे चक्षु, जलके सात्त्विक भागसे रसना, पृथिवी के सात्त्विक भागसे घ्राण इन्द्रिय उत्पन्न होती है, भूतोंके मिले-

हुए सात्विक भागसे अन्तःकरण उत्पन्न हुआ; वृत्तिभेदसे अन्तःकरण चार प्रकारका है। संकल्प विकल्परूप वृत्तिसे मन तथा निश्चयवृत्तिसे बुद्धि, तथा स्मरणवृत्तिसे चित्त, तथा अहंकारवृत्तिसे अहंकार कहाता है॥ इस प्रकार सूक्ष्म भूतोंके सात्विकभागोंसे तो समष्टि व्यष्टिरूप सूक्ष्म शरीरकी उत्पत्ति हुई और अब परमात्माने सूक्ष्म भूतोंके तामस भागोंका पंचीकरण किया। इस पंचीकरणसे पंचभूत स्थूल होते हैं। इन स्थूल भूतोंसे ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ ब्रह्माण्डसे चतुर्दश भुवन उत्पन्न हुए॥ इस प्रकार आकाशादिक सर्व जगत ब्रह्मात्मासे उत्पन्न होनेसे तिस ब्रह्मात्मासे भिन्न नहीं, इस कारण ब्रह्म अनन्त है॥ सृष्टि प्रकारमें पंचीकरण तथा इन्द्रियादिकोंकी उत्पत्ति निरूपण समाप्त हुआ॥ ॐ शान्तिःशांतिः शांतिः॥ इति॥

आत्मदेवके तीन शरीर तथा तिनके पंचकोषोंका निरूपण।

स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर, कारण शरीर तिनके कोश यह हैं। प्रथम शरीर तो एक अन्नमय कोश है. दूसरा सूक्ष्म शरीर जिसमें प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय यह तीन कोश हैं। तीसरा कारण शरीर वो एक आनन्दमय कोशरूपहै। इस प्रकार तीनों शरीरमें पंचकोशहैं। उक्त तीन शरीरों तथा पंचकोशोंमें आत्मा अलग होकर स्थितहै। स्थूलशरीर अर्थात् अन्नमय कोशके अन्दर प्राणमय कोश स्थित है।

प्राणमय कोशके अन्तर मनोमय कोश अर्थात् संकल्प विकल्प इत्यादि व्यवहार करनेवाली शक्ति स्थित है। मनोमय कोशके अन्तर विज्ञानमय कोश अर्थात् सत असत् विचार करनेहारी शक्ति (बुद्धि) स्थित है । तिस विज्ञानमय कोशसे अन्य अन्तर अव्याकृतरूप आनन्दमय कोश है। यह अज्ञानरूप आनन्दमय कोश तिस विज्ञानमय कोशको सर्व ओरसे परिपूर्ण करके स्थित है. इस कारण यह आनन्दमय कोश तिस विज्ञानमय कोशका आत्मा रूप है। इस कारण मुमुक्षु पुरुषको आनन्दमय कोशहीमें आत्मत्वबुद्धि करनी चाहिये । जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तीन अवस्थाओं, स्थूल, सूक्ष्म, कारण, तीन शरीरों, तथा अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनन्दमय पंच कोशोंमें अनुगत तथा उनका प्रकाशक, स्वयं ज्योतिरूप साक्षी, आत्मा है, जिसको श्रुति शुद्ध अधिष्ठान, आनन्द स्वरूप ब्रह्म करके निरूपण करती है, तिस साक्षी चेतन आत्मारूप ब्रह्मका चिन्तवन सर्वदा मुमुक्षु पुरुषोंको करना चाहिये ।

साक्षी आत्मारूप ब्रह्मके चिन्तवनका फल ॥

(१) इष्ट पदार्थके दर्शनसे जो सुख उत्पन्न होता है, उसको प्रिय नाम करके कहते हैं (२) तिस इष्ट पदार्थके प्राप्तिसे जो सुख है, उसको मोद नामसे कथन करते हैं (३) तिस

इष्ट पदार्थके भोगजन्य जो सुख है; उसको प्रमोद कहते हैं (४) तिन प्रिय, मोद, प्रमोद इन तीनोंमें जो सुख सामान्य रूपसे अनुगत है, सो सामान्य सुख रूप आनन्द है। (५) इस सर्व जगत्का कारणरूप जो आनन्द स्वरूप ब्रह्म है सो अधिष्ठान ब्रह्म प्रतिष्ठा रूप है॥ इसी प्रकार क्रमसे मुमुक्षु पुरुषको आत्मदर्शनसे प्रथम प्रियनामा सुख होता है, फिर आत्मलाभसे मोद प्राप्त होताहै, अनन्तर . . .
रहनेसे प्रमोद प्राप्त होता है, पश्चात् उक्त प्रिय, मोद, प्रमोदमें सामान्यरूपसे अनुगत जो सुख है, उस सामान्य सुखरूप आनन्दमें मुमुक्षु पुरुप मग्न होता है, जिसको जीवन्मुक्त . .
कहते हैं। तदनन्तर इस सर्व जगत्का कारणरूप जो . .
स्वरूप ब्रह्म है, उस अधिष्ठानरूप ब्रह्ममें सर्वकाल ऐसा संलीन हो जाता है, कि उसको अपने शरीरतककी भी नहीं रहती जिसको विदेहमुक्त अवस्था कहते हैं॥ . . .
यह है कि अधिकारी पुरुप आनन्दमय कोशमें प्राप्त . .
सम्पूर्ण कार्यप्रपंचका परित्याग करके आनन्दमय कोशमें .
थम इष्ट वस्तुके दर्शनजन्य सुखको प्राप्त होता है, . .
इष्ट वस्तुके प्राप्तिजन्य सुखको प्राप्त होता है. तिस पीछे . .
पदार्थके भोगजन्य सुखको प्राप्त होता है तिसके अनन्तर सामान्यसुखरूप आनन्दको प्राप्त होता है, तदनन्तर सर्वसे अन्तर आनन्दस्वरूप ब्रह्मको प्राप्त होता है. जिसको श्रुति

सर्वका अधिष्ठान ब्रह्म करके निरूपण करती है ॥ इस कथनसे श्रुति भगवतीका यह अभिप्राय है कि इस लोकमें सर्व देहधारी जीवोंका चित्त तथा श्रोत्रादिक पंच ज्ञानेन्द्रिय तथा वागादिक पंच कर्मेन्द्रिय नित्यही बहिर्मुख होकर सुखके अर्थ बाह्य पदार्थोंकोही ग्रहण करती हैं। इस शरीरके अन्तरस्थित जो आनन्दका समुद्ररूप आत्मदेव है, तिस आनन्दस्वरूप आत्माको कोईभी देहधारी जीव ग्रहण करता नहीं, किन्तु इस अन्तर आनन्दस्वरूप आत्माका परित्याग करके सम्पूर्ण जीव सुखकी प्राप्तिके अर्थ बाहरही भ्रमण करते हैं, इस बहिर्मुखताके कारण वह सुखके बदले सर्वदा दुःख समुद्रहीमें प्राप्त होते हैं, इस प्रकार तिन बहिर्मुख जीवोंको मोक्षरूप पुरुषार्थसे भ्रष्ट हुआ देखकर तथा जन्ममरणरूप संसारमें प्राप्त हुआ देखके माताकी नाईं अत्यन्त स्नेहयुक्त श्रुति भगवती उक्त सुगम प्रकारसे उपदेश करती भई ॥ इति ॥ तैत्तिरीय उपनिषद्सार (भाषा) समाप्त हुआ ॥

यजुर्वेदीय बृहदारण्यक उपनिषद् याज्ञवल्क्यकांडसे शाकल्य तथा याज्ञवल्क्य प्रश्नोत्तर।

ऐन्द्रजालिक सेना अथवा नगरकी भांति जगत्का स्वरूप निरूपण।

हे शाकल्य! जैसे मायावी ऐन्द्रजालिक पुरुषरूप कारणसे आकाशमें नानाप्रकारकी सेना प्रतीति होती है, तैसे बुद्धि-

रूप कारणसे परमात्मारूप हृदयमें नानाप्रकारके प्रपंच प्रतीत होते हैं । जैसे मायावी रूप कारणके नाश हुए अथवा सुषुप्तिके प्राप्त हुए अथवा दूसरे किसी कार्यमें आसक्त हुए आकाशमें स्थित नानाप्रकारकी सेना प्रतीति होती नहीं, तैसे बुद्धिरूप कारणके नाश हुए अथवा सुषुप्तिमें प्राप्त हुए या आत्माविषे एकाग्र चित्त हुए; परमात्मारूप हृदयमें स्थित नानाप्रकारका प्रपंच प्रतीत होता नहीं ॥ हे शाकल्य, जैसे मायावी पुरुषने आकाशमें उत्पन्न किये जो नानाप्रकारके पदार्थ सो पदार्थ मायावी पुरुषसे भिन्न नहीं, किन्तु मायावी पुरुषका स्वरूपही हैं, तैसे परमात्मारूप हृदयमें बुद्धिने कल्पना किया जो जगत् सो जगत् बुद्धिसे भिन्न नहीं, किन्तु बुद्धि स्वरूपही है, इसी कारणसे वेदान्तमें दृष्टिसृष्टिवादका कथन किया है। हे शाकल्य, जैसे आकाशमें स्थित अन्धकार, अन्धकारही करके प्रतीत होताहै, सूर्यादिक प्रकाश करके अन्धकारकी प्रतीति होती नहीं, तैसे परमात्मारूप हृदयमें स्थित हुई बुद्धि, बुद्धि करकेही प्रतीत होती है, जैसे सूर्य्यादिक प्रकाश करके अन्धकार विशुद्ध निवृत्त हुए आकाशमें दोषरहित नेत्रवाले पुरुष अन्धकारको नहीं देखते, तैसे ब्रह्म- ज्ञान करके अज्ञानके निवृत्त हुए विशुद्ध आत्मामें कारणसहित बुद्धिको विद्वान् पुरुष देखते नहीं, इस कारण आत्मासे भिन्न बुद्धि आदिक जड़ पदार्थ प्रमाण करके सिद्ध नहीं; किन्तु भ्रांति करके सिद्ध हैं ॥ इति ॥

ॐतत्सत् ॥

ऋग्वेदीय ऐतरेय उपनिषद्के भाष्यके अर्थसे मातापके गर्भमें स्थित वामदेवका ऋषियों-प्रति अपने अनुभवज्ञानका निरूपण ।

वामदेव बोले ॥ हे ऋषियो मैंही पूर्वादि दश दिशाओंमें व्यापक हूं; मैंही सूर्य भगवान् रूप हूं, इन्द्र, यम, कुबेर, वरुण इत्यादि जो लोकपाल अनन्तशक्ति सम्पन्न हैं, सो सर्व मेराही स्वरूप हैं, मेरेसे भिन्न नहीं हैं ॥ ब्रह्मासे आदि जो प्राणी अंडज, जरायुज, स्वेदज, उद्भिज्ज रूप हैं, सो सर्व रूप मैं हूं ॥ महान् आश्चर्य है, मैं सर्व अग्नि वायु आदि देवताओंके जन्मोंको जानता हूं ॥ जन्म, अस्तिता, वृद्धि, परिणाम, क्षीणता, नाश यह षट्विकार स्थूल देहके धर्म हैं, मैं तो सूक्ष्म तथा कारण शरीरकाभी अधिष्ठान हूं ॥ कल्पितके धर्मोंसे मुझ अधिष्ठानकी किञ्चित् हानि होती नहीं ॥ जैसे मृगतृष्णाकी नदीके जलसे पृथिवी गीली होती नहीं, तैसे मुझ अधिष्ठानमें स्थूल सूक्ष्म कारण इन तीन शरीरोंके धर्मोंका सम्बन्ध नहीं है, और जैसे श्येन पक्षी बलवाला होता है, तिसको लोहेके पिंजरेमें बन्द करते हैं । परन्तु कोई बलवान् जो श्येन है सो अपने वज्रसमान तुंडसे पिंजरेके नीचे देशको भेदन कर बाहर निकलनेसे आनन्दको प्राप्त होता है । तैसे अज्ञानरूप लोहसे रचित जो चौरासी लक्ष योनिरूप पुरि-

यां हैं यह योनि ही पिंजरा है, रागद्वेषादिरूप जिस पिंजरेमें कीले हैं ॥ ब्रह्मज्ञानरूपी तुंडसे पंचकोशोंमें आत्मत्व अध्यास रूप पाशको मैंने निवृत्त किया है । ब्रह्मज्ञानद्वारा अज्ञानकी निवृत्ति होनेसे देहादिकोंमें अध्यासरूप पाशकी निवृत्ति स्पष्टही है ॥ हे ऋषियो ! महात्मा सनकादिकोंने जो उपदेश किया था, तिस उपदेशसेही मुझको ब्रह्मबोध हुआ है । तिस ब्रह्मबोधके प्रतापसे मैं मृत्युसेभी भयको नहीं प्राप्त होता । क्योंकि जो जन्मवाला है,तिसको मृत्यु अवश्य नाश करता है, । मैं अजन्मा हूं याते मेरे मारनेको मृत्यु समर्थ नहीं है । और मृत्युकाभी मैं आत्मा हूं, अपने नाश करनेमें मृत्यु कैसे प्रवृत्त होगा । जैसे अग्नि स्वभिन्न काष्ठादिकोंका दाह करता है, अपने नाश करनेमें समर्थ नहीं है, तैसे मृत्यु अपनेसे भिन्नके मारनेमें तो समर्थ है । मैं मृत्युकाभी आत्मा हूं अतः मेरे मारनेमें मृत्यु समर्थ नहीं है ॥ जैसे अन्यके दुःखसे अन्य द्वितीय पुरुषको दुःख होता नहीं, तैसे जन्म जरा मृत्यु; आदि देहके धर्मोंसे मैं भिन्न हूं । मेरा जन्म जरा मरण आदि कदाचित् होता नहीं ॥ हे ऋषियो! आत्मबोधसे रहित पुरुषोंको यह अष्ट दोष अचिकित्स्य हैं, अर्थ यह है कि ज्ञान विना जिनकी औषधि द्वितीय नहीं है ॥ प्रसंगसे तिन दोषोंका अब निरूपण करते हैं ॥ इच्छा, १ द्वेष २ भय ३ मोह ४ क्षुधा ५ तृषा ६ निद्रा ७ मलमूत्रकी पीडा ८ यह अष्ट दोष हैं ।

इन अष्ट दोषोंकी संसारमें व्यापकता कहते हैं ॥ संसारमें सात्विक, राजस, तामस, भेदसे तीन प्रकारके पुरुष हैं सात्विक जो मुमुक्षु हैं सो मोक्षकी इच्छा करते हैं राजस पुरुष मोक्ष और विषय दोनोंकी इच्छा करतेहैं ॥ तामस पुरुष तो केवल विषयोंकी इच्छा करतेहैं ॥ इच्छा विना कोई जीव नहीं है ॥ सात्विकका विषयोंसे द्वेष है ॥ राजसका शत्रुओंसे द्वेष है ॥ तामस, शत्रुओंसे तथा मित्रोंसे तथा सन्तजनोंसे द्वेष करते हैं ॥ इस प्रकारसे द्वेषभी सर्वदेहधारी जीवोंमें रहता है ॥ सात्विक पुरुषोंको प्रमादसे भय रहता है ॥ राजस पुरुषोंको यमराजसे भय रहता है ॥ तामसको राजासे तथा राजाके भटादिकोंसे भय प्राप्त होता है, इस प्रकार सर्व प्राणियोंमें भय व्याप्त है ॥ सात्विक पुरुषको आत्माका अज्ञान रूप मोह है ॥ राजसको शास्त्रविद्या तथा आत्माका अज्ञानरूप मोह है ॥ तामसको सर्वमें अज्ञानरूप मोह है ॥ इस प्रकार सर्व प्राणियोंमें मोह व्याप्त है ॥ क्षुधा, तृषा, निद्रा, यह तीनों सात्विक, राजस, तामसमें समान हैं ॥ मलमूत्रकी पीडा वृक्षादिकोंके अतिरिक्त सर्वमें समान है ॥ अथवा वृक्षादिकभी गोंदराल आदिकोंको त्याग करते हैं ॥ विना ब्रह्मज्ञानके यह अष्ट दोष कदाचित निवृत्त होते नहीं ॥ मैं तो महात्मा कृपालु सनकादिकोंके उप-देशसे ब्रह्मज्ञानको प्राप्त हुआ अष्ट दोषोंसे रहित हुआ

है ॥ भो ऋषयो ! यह अष्ट दोष मन आदिकोंके धर्म हैं ॥ मुझ शुद्ध सच्चिदानन्द परिपूर्णको स्पर्श करते नहीं इच्छा, द्वेष, भय, मोह यह चार तो मनमें रहते हैं, यातें मनके धर्म हैं ॥ क्षुधा, तृषा यह दोनों प्राणके धर्म हैं ॥ निद्रा इन्द्रियोंका तथा मनका धर्म है ॥ मलमूत्रकी पीड़ा इस स्थूल शरीरका धर्म है ॥ मैं तो मन आदिकोंका साक्षी हूं तिस साक्षी आत्मामें मन आदि साक्ष्यका तथा साक्ष्य मन आदिकोंके धर्मोंका सम्बन्ध बनता नहीं ॥ हे ऋषियो ! माताके गर्भरूप अग्निकुंडमें मैं वामदेव स्थित हुआ भी ब्रह्मज्ञानरूप पौर्णमासीके चन्द्रमाकी शीतलतासे गर्भके दुःखरूप तापको प्राप्त होता नहीं ॥ यातें ज्ञानका फल मोक्ष प्राप्तिमें तुम लोग कदाचित् संशय नहीं करना ॥ इस प्रकार आत्मज्ञानका उपदेश करता हुआ वामदेव ऋषि माताके गर्भसे बाहर निकल सनकादिकोंके समान इस संसारमें अपनी इच्छानुसार विचरता भया ॥ जैसे सनकादि अपनी इच्छानुसार ब्रह्मलोक पर्यन्त विचरते हैं. तैसे परमजीवन्मुक्त वामदेवभी ब्रह्मलोकपर्यन्त किसीसे निरोधको न प्राप्त हुआ विचरता भया ॥ इस लोकमें होनेहारे विषयानन्दकी तथा परलोकमें होनेहारे विषयानन्दकी इच्छाको जिस वामदेवने प्रथम जन्ममें ही निवृत्त किया था, ऐसे अपने प्रारब्धको भोगकर क्षय करता हुआ वामदेव ऋषि विदेह कैवल्यको प्राप्त

भया ॥ ऐसे वामदेवके वचनोंको श्रवण करके अधिकारी मुमुक्षु परम आश्चर्यको प्राप्त हुए और परस्परमें कहते भये कि महान् आश्चर्य है कि यह वामदेव किसी पुण्यके प्रभावसे परममोक्षको प्राप्त हुआ, हम लोग खाली रह गये ॥ जैसे गौवोंका समूह कीचमें फंस जाय तिनमेंसे कोई एक गौ अपने भुजाके बलसे तथा पुण्यके प्रभावसे निकस जावै ॥ और जैसे जालमें फंसे हुए पक्षी समूहमेंसे कोई एक पक्षी पुण्यके प्रतापसे निकस जावे, तैसे मोहरूप पंक तथा जालमें फसे जो हम लोग हैं तथा कामक्रोधादि पाशोंमें बंधे जो हम हैं, तिन सबसे वामदेव मुक्त हुआ है ॥ वामदेवका अनुभव समाप्त हुआ ॥ ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ॥

ऐतरेयउपनिषद्सार (भाषा) समाप्त हुआ ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

ऋग्वेदकी कौषीतकी उपनिषद्के भाष्यके अर्थसे ॥ राजा अजातशत्रु तथा बालाकिऋषि संवादसे अन्तःकरणमें आत्माकी स्थिति किस प्रकार है ॥

हे बालाकि ! यद्यपि परमात्मादेव आकाशकी नांई देहके अन्दर तथा बाहर सर्वत्र व्यापक है, तथापि हृदयदेशविषेही परमात्माका अन्तर्यामीपना सिद्ध होता है । अन्यत्र अंतर्यामीपना सिद्ध होता नहीं । इस कारणसे हृदयदेशमेंही परमात्माकी

स्थिति कही है। ऐसे अन्तर्यामी परमात्मा करके साक्षात् प्रकाशित जो मन है। तिस मनविषे (मैं) सम्पूर्ण वाकादिक इन्द्रियोंसे विशेषताको अब निरूपण करते हैं। सुखके उपभोगवास्ते तथा दुःखके उपभोगवास्ते सम्पूर्ण प्राणियोंके शरीर उत्पन्न हुये हैं, क्योंकि शरीरके विना सुखदुःखका भोग होता नहीं। शब्दादिक विषयोंके प्रकाशको उपभोग कहते हैं। सो शब्दादिक विषयोंका प्रकाश श्रोत्रादिक इन्द्रियोंके विना होता नहीं, किन्तु श्रोत्रादिक इन्द्रियोंसेही शब्दादिक विषयोंका प्रकाश होता है, और तिन सम्पूर्ण श्रोत्रादिक इन्द्रियोंका नियामक मन है, क्योंकि अपने अपने शब्दादिक विषयोंके साथ श्रोत्रादिक इन्द्रियोंके सम्बन्ध हुए भी जबतक श्रोत्रादिक इन्द्रियोंके साथ नहीं होता है, तबतक यह श्रोत्रादिक इन्द्रिय अपने शब्दादिक विषयोंको नहीं जानते, किन्तु मनके सम्बन्ध हुएसे अन्तरही श्रोत्रादिक इन्द्रिय शब्दादिक विषयोंको जानतेहैं, इससे यह जाना जाता है, कि सम्पूर्ण श्रोत्रादिक इन्द्रिय मनके अधीन हैं। अब इसी अर्थको लोकप्रसिद्ध दृष्टान्तसे निरूपण करते हैं। जैसे लोकमें काष्ठके बनेहुए दश अश्व एक दीर्घ काष्ठमें स्थित होते हैं, और तिस दीर्घ काष्ठके मध्य छिद्रमें नीचे है मुख जिसका ऐसी एक नलिका होती है, और तिन दश अश्वोंके पादोंमें बंधे हुए दश सूत्र तिस मध्यछिद्र द्वारा नलिकामें पिरोये होते हैं, तिन सूत्रोंको

पिता बालकके हस्तमें देताहै; सो बालक पिताकी गोदमें बैठा हुआ तिन सूत्रोंको आकर्षण करके तिन अश्वोंको नाना-प्रकारकी चेष्टा कराता है । तैसे शरीररूप दीर्घ काष्ठ है, तिसमें वाकादिक इन्द्रियरूप दश अश्व हैं, और प्राण वायुरूप सूत्रसे वाकादिक इन्द्रिय बांधे हुए हैं और नाडीरूप छिद्रद्वारा ते प्राणरूप सूत्र हृदयरूप नलि-कामें पिरोये हैं, और परमेश्वररूप पिता है, और मन रूप बालक है तिस मनरूप बालकको परमेश्वररूप पिता अपने हृदयकमलरूप गोदमें बैठायके प्राणवायुरूप सूत्रोंको ग्रहण करता है; तिस प्राणरूप सूत्रोंको ग्रहण करके सो मन-रूप बालक वाकादिक इन्द्रियरूप अश्वोंको तथा प्राणरूप सूत्रोंको अपने अपने व्यापारमें प्रवृत्त करावा है । इस कारण सर्व वाकादिक इन्द्रियोंसे मन (बुद्धि) में उत्कृष्टता है । अव दूसरी रीतिसे भी वाकादिक इन्द्रियोंसे बुद्धि विषे उत्कृष्टताको दिखाते हैं । जैसे सूर्य्य भगवान्‌का प्रकाश यद्यपि सर्व पदार्थोंमें समान है तथापि उपाधिके वशसे तिस सूर्यके प्रकाशमें भेद देखा जाता है । जैसे ताम्रादिक धातु-ओंसे बना जो पात्रहै, तिसमें सूर्यका तेज अल्प देख पडताहै और तिस पात्रसे स्वच्छ दर्पणमें सूर्यके तेज की प्रभा अधिक दिखाई देती है तिस दर्पणसे कृपाणके धारपर सूर्यके तेजकी प्रभा अधिक पडती है और तिस कृपाणसे भी मणिपर सूर्य के

तेज की प्रभा अधिक देख पडती है और तिन मणियोंसेभी सूर्यकान्त मणिमें सूर्यका तेज अधिक दिखाई देता है क्योंकि धातु पात्रादिक उपाधियोंविषे स्थित हुआ सूर्यका तेज दाहादिक कार्योंको करता नहीं और सूर्यकान्त मणिविषे स्थित-हुआ सूर्यका प्रकाश दाहादिक कार्यकोभी करता है इस कारण धातुपात्रादिक सर्व उपाधियोंसे सूर्यकान्त मणिमें सूर्यके तेजकी अधिक अभिव्यक्ति होती है। इसी प्रकार धातुपात्रके समान स्थूल शरीरमें तथा दर्पणके समान प्राणमें तथा कृपाणके समान कर्मइन्द्रियोंमें मणिके समान ज्ञानइन्द्रियोंमें तथा सूर्यकान्त मणिके समान बुद्धिमें यह आनन्दस्वरूप आत्मा स्वभावसे यद्यपि एकरूप करकेही स्थित होता है तथापि बुद्धिरूप अन्तःकरण अतिस्वच्छ है, याते तिस अन्तःकरणमें स्थित हुआ यह आनन्दस्वरूप आत्मा भोक्ता संज्ञाको प्राप्त होता है । अन्य शरीरादिक उपाधियोंमें स्थित हुआ यह भोक्ता संज्ञाको प्राप्त होता नहीं। जैसे सूर्य भगवान सूर्यकांत मणिमें स्थित होकर दाहादिक कार्यको करते हैं, वैसे यह आनन्दस्वरूप आत्मा अन्तःकरणमें स्थित हुआही कर्तृत्व भोक्तृत्वरूप संसारको तथा लोकान्तरमें गमनागमनको प्राप्त होता है। यद्यपि अल्प अन्तःकरणमें व्यापक आत्माकी स्थितिसम्भव नहीं, तथापि जैसे अल्पदर्पण महान् पर्वतके प्रतिबिम्बको ग्रहण करता है, वैसे अल्प अन्तःकर-

णभी अतिस्वच्छ होनेसे आत्माके प्रतिबिम्बको ग्रहण करता है। यही अन्तःकरणविषे आत्माकी स्थिति है। किंवा सो अन्तःकरण सर्वदा हृदयकमलरूप गृहमेंही निवास करता है और कदाचित् जाग्रत् अवस्थामें सो अन्तःकरण नेत्रादिक स्थानमेंभी निवास करता है, जिस काल सुषुप्ति होती है, तिस कालमें नेत्रादिक स्थानको छोडकर सो अन्तःकरण हृदय कमलरूप अपने गृहमें आता है॥ तिस अन्तःकरणके आगमनसे विज्ञानमय भोक्ताभी हृदयदेशको प्राप्त होता है॥ तात्पर्य यह है कि चैतन्य में स्वभावसे तो गमन तथा आगमन रूप क्रिया है नहीं॥ किन्तु उपाधिके गमन तथा आगमनसे चैतन्य आत्मामें गमन तथा आगमन होता है, सो अन्तःकरण जाग्रत् अवस्थामें दक्षिण नेत्रादिक स्थानोंमें रहता है, इस कारण विज्ञानमय भोक्ता भी वहां रहता है॥ और सुषुप्ति कालमें नेत्रादिक स्थानों को छोड़कर सो अन्तःकरण हृदयकमलरूप अपने गृह में आता है इससे विज्ञानमय आत्माभी हृदयकमलको प्राप्त होता है किंवा ॥ जैसे पशु तथा मनुष्य अपने गृहको छोडकर अन्य देशमें जाते हैं, वहां हानि तथा लाभको प्राप्त होते हैं॥ वहां हानिको लाभके समान मानकर सो पशु तथा मनुष्य पुनः अपने अपने गृह में आते हैं॥ तैसे बुद्धिरूप अन्तःकरणभी अपने हृदयदेश रूप गृहको परित्याग

करके नेत्रादिक देशमें जाता है वहां हानि तथा लाभको प्राप्त होता है, तिस हानि कोभी लाभके समान मानकर सो अन्तःकरण नेत्रादिक देशसे पुनः अपने हृदयकमलरूप गृहमें आता है ॥ जैसे विदेशसे अपने गृहमें आये हुए जीवोंको लाभ विचारकर सुखकी प्राप्ति होतीहै और हानिका विचार करके दुःखकी प्राप्ति होती है, तैसे नेत्रादिकरूप विदेशको छोड़कर हृदयकमलरूप अपने गृहको प्राप्त हुई बुद्धि लाभके विचारको करके सुखका अनुभव करती है, और हानिका विचार करके दुःखका अनुभव करती है ॥ एक हृदय कमलको छोड़कर नखसे शिखापर्यन्त सम्पूर्ण शरीर तथा नेत्रादिक इन्द्रियों सहित सम्पूर्ण गोलक तथा पुरीतत्(आंत) तथा शिर यह सम्पूर्ण स्थान बुद्धिका परदेश है एक हृदयकमलही बुद्धिका अपना देश है ॥ किंवा ॥ जाग्रत तथा स्वप्नके भोगदेनेहारे कर्मोंका जब क्षय होता है तब हृदयकमलके मध्यवर्ती दहराकाश रूप परमात्मामें प्राप्त हुई सो बुद्धि अपने कारण अज्ञानविषे मूर्छाको प्राप्त होती है और जैसे अत्यन्त मूर्छाको प्राप्त हुआ जो पुरुष है, तिसको लोकमें मृतक हुआ कहते हैं, तैसे सुषुप्तिमें अपने कारणसे मूर्छाको प्राप्त हुई बुद्धिमें लय व्यवहार होता है, और जैसे आकाशमें प्राप्त हुआ जो सूक्ष्म तूल (रुई) है तिस तूलका

आकाशमें लय लोग कथन करते हैं तैसे हृदयकमलके अन्तर परमात्मारूप आकाशमें प्राप्त हुई बुद्धिको लयनाम करके वेद कथन करता है ॥ और जैसे पटके संकोच कियेसे पटमें स्थित चित्र लय भावको प्राप्त होते हैं, तैसे पित्त धातु करके हृदयकमलके संकोचरूप हेतुसे भी बुद्धिविषे लय व्यवहार होता है ॥ इसकारण हे वालाकि ! सो विज्ञानमय भोक्ता पुरुष सुषुप्ति अवस्थामें अन्तःकरणरूप उपाधिके लय हुए परमात्माके साथ अभेदरूपशयनको अनुभव करके पुनः सो विज्ञानमय आत्मा जाग्रत भोग देनेहारे कर्मोंके उदय हुए जाग्रत अवस्थाको प्राप्त होता है और जैसे ऊर्णनाभि जन्तु (मकरी) अन्य साधनोंकी अपेक्षाके विनाही अनन्त तन्तुओंको अपनेसे उत्पन्न करता है वैसे शयनसे उठाहुआ यह परमात्मा देव प्राणादिक अनन्त सृष्टिको उत्पन्न करता है। और जैसे प्रज्वलित महान् अग्नि अपने समान रूपवाले अल्प कणोंको उत्पन्न करता है, तैसे शयनसे उठा हुआ यह आत्मा देवभी प्राणोंको तथा अन्तःकरणको तथा ज्ञानकर्मइन्द्रियोंको तथा तिन इन्द्रियोंके नानाव्यापारोंको उत्पन्न करता है, तिन वाकादिक इन्द्रियोंसे अग्नि आदिक देवता उत्पन्न होते हैं, और तिन अग्नि आदिक देवताओंसे शब्दादिक विषय तथा सम्पूर्ण लोक उत्पन्न होता है, इस प्रकार जाग्रत अवस्थामें नित्यही वाकादिक इन्द्रियोंकी उत्पत्ति होती है तथा अग्नि आदिक

देवताओं तथा नामादिक विषयोंकी उत्पत्ति होती है, और सुषुप्ति अवस्थामें तिसमेंही तिन वाकादिक इन्द्रियों तथा अग्नि आदिक देवताओं तथा नामादिक विषयोंका लय होता है।
॥ इति ॥ कौषीतकी उपनिषद्सार (भाषा) समाप्त हुआ ॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

गर्भ उपनिषद्में वर्णित ऋग्वेदकी कौषीतकी शाखाके भाष्यके अर्थसे मृत्युके चिह्ननिरूपण।

मरणके चिह्नोंके ज्ञानसे अधिकारी पुरुषको वैराग्यकी प्राप्ति होती है, इस कारण मरण चिह्नोंको अवश्य जानना चाहिये ॥ इस सूर्यमंडलमें तथा पुरुषोंके दक्षिण नेत्रमें एकही अन्तर्यामी पुरुष दो स्वरूपसे स्थित है तिन दोनों स्वरूपोंका नाडीरूपकरणद्वारा परस्पर सम्बन्ध श्रुतिनें कथन कियाहै। जब इस पुरुषका मरणकाल समीप आता है तब दोनों स्वरूपोंका परस्पर सम्बन्ध निवृत्त होजाताहै, तिस कालमें तिस समीप मृत्युवाले पुरुषको पूर्वकी नाईं सूर्य भगवान् नहीं प्रतीत होते, किन्तु चन्द्रमाकी नाईं शीतल प्रतीत होते हैं, अथवा मध्याह्नकालमें सन्ध्याकालकी नाईं सूर्य भगवान किरणसे रहित प्रतीत होतेहैं, अथवा छिद्रवाला या रक्तवर्णवाले आकाशमें स्थित हुआ सूर्य प्रतीत होते हैं, इस

प्रकार तिस सूर्य भगवानको विपरीत देखनेवाला पुरुष थोडे कालमें मृत्युको प्राप्त होता है ॥ जो पुरुष आठों दिशा तथा अकाश, तारागण तथा अन्तरिक्ष लोकको सर्वदा रक्तवर्णवाला देखै, सो भी थोडे कालमें मरे । मलके त्याग कालमें पायुइन्द्री संकोचसे रहित होती है. उसी प्रकार जिसकी पायुइन्द्री सदा संकोच (सिकुरना) से रहित रहै, सो भी थोडे कालमें मृत्युको प्राप्त होवै । जिसका मस्तक अंडायुक्त काकपक्षीके गृह (घोंसला) की भांति दुर्गंध करै वहभी थोडे कालमें मरे । जो पुरुष अपनी छायामें छिद्र देखै तथा जल और दर्पणमें स्थित जो अपना प्रतिबिम्ब है अथवा भूमिपर स्थित जो अपनी छाया है, उनमें जो अपने शिरका संशय देखै अर्थात् शिर न देख पडै सोभी थोडे कालमें मरे ॥ जो पुरुष दूसरे पुरुषके नेत्रकी कनीनिका (पुतली) में अपने प्रतिबिम्बके पादको ऊपर देखै और मस्तक नीचे देखै अथवा जिस पुरुषको दर्पणादिकोंमें स्थित अपने प्रतिबिम्बमें इस प्रकारका संशय होवै कि इस प्रतिबिम्बका मस्तक ऊपर अथवा नीचे है सोभी थोडे कालमें मरे । अंगुलीसे नेत्र मलनेमें किरणयुक्त तेज विशेष प्रतीत होता है सो तेजविशेष नेत्र मलनेसे न प्रतीति होवै सो पुरुषभी थोडे काल (दिन) में मरे । अंगुलियोंसे दोनों कर्णछिद्र बन्द करनेसे अपने प्राणोंके ध्वनि शब्दको न सुनै सोभी थोडे काल (दिन) में

मरे जो पुरुष मयूरके कंठसमान अग्निको नीलवर्ण देखै तथा मेघ विना आकाशमें विद्युत देखै तथा मेघोंके विद्यमान रहनेमें विद्युतको न देखै अथवा जो पुरुष वर्षावाले मेघोंमें सूर्यकी किरणोंको देखै तथा अग्निसे रहित भूमिकोभी अग्निसे प्रज्व-लित देखै ऐसे सर्व पुरुषभी थोडे काल (दिन) में मरैं ॥ ऋग्वेदकी कौषीतकी शाखामें वर्णित संक्षेप मृत्युचिह्न समाप्त हुआ ॥

अथवा वाशिष्ठसंहितामें वर्णित मृत्युचिह्न ।

जो पुरुष सायंकाल तथा प्रातःकालमें पांच दिनतक अपने मस्तकसे धूम निकलते देखै वह तीन वर्षपीछे मृत्युको प्राप्तहोगा । जो चार दिन मस्तकसे धूम निकलते देखै वह दो वर्ष तथा जो तीन दिन मस्तकके धूमको देखै वह एक वर्ष पीछे मृत्युको प्राप्त होगा । जो पुरुष अपने कर्णोंके छिद्रोंको अंगुलियोंसे बन्द करनेमें कर्णोंके अन्दर प्राणोंके ध्वनि शब्दको न सुनै तो एक वर्ष पीछे शरीर छूटैगा । जिस पुरुषका शरीर स्थूल हो और बिना कारण कृश होजाय और जिसका शरीर कृश हो और विना निमित्त स्थूल हो-जाय तो उसका शरीर एक वर्ष पीछे छूटैगा । जो पुरुष पूर्वमें शान्तस्वभाव और अकस्मात् क्रोधीस्वभाव होजाय अथवा पूर्व क्रोधी स्वभाव हो और अकस्मात् शान्त स्वभाव

होजाय वह भी एक वर्ष पीछे शरीर छोडेगा। जिस दिन इस पुरुषका विष्ठामूत्र दोनों एकही कालमें परित्याग हों अथवा क्षुधा, पिपासा यह दोनों एकही कालमें लगैं और व्यामोह (विकलता) हो जिस दिन ऐसा हो उसी दिनसे एक वर्ष पीछे उसका शरीर छूटैगा। जो पुरुष अकस्मात् किसी वृक्षकी चोटीपर गंधर्वनगर देखै अपने शरीरको काला तथा पीला देखै सोभी एक वर्ष पीछे शरीर छोडैगा। गृध्र, गोमायु, काक, सारस, इत्यादिक मांसभक्षण करनेहारे पक्षी तथा गधा. ऊंट तथा दाँतोंसे रहित जो वृश्चिकादिक जीवहैं, तथा राक्षस पिशाच भूत इनसे आदि लेकर जितने कि मांस भक्षण करनेहारे दुष्ट जीव हैं, तिनमें से कोई एक जीव अथवा बहुत जीव मांसभक्षण करनेवास्ते जिस पुरुषकी तरफ दौडैं सो पुरुष एक वर्ष पीछे मरै। इस प्रकार स्वप्नमें जो पुरुष तिन गृध्रादिकोंको देखै, सोभी एक वर्ष पीछे शरीर छोडेगा। जब अरुन्धती, ध्रुव तारा तथा चन्द्रमाके मध्यकी श्यामता न देख पडै तोभी एक वर्ष पीछे शरीर छूटै। जिस तिथिको ऐसे निमित्तोंको देखै वर्षके अन्तर पुनः उस तिथिको न प्राप्त हो। जो पुरुष अपने श्याम वस्त्रको श्वेत तथा श्वेतको श्याम देखै वह छ महीने पीछे-शरीर छोडै। जो पुरुष सूर्य अथवा चन्द्रमाको आकाशसे नीचे पतन होते देखै अथवा भूमिमें स्थित पदार्थोंको आकाशमें तथा आकाश-

स्थित पदार्थोंको भूमिमें स्थित देखै वहभी छ महीने पीछे शरीर छोडै । रोगादिक कारणोंके विनाही जिस पुरुपके ओष्ठ तथा तालु शुष्क होता जावै अथवा जिसका शरीर चक्रकी नाईं घूमै अथवा जो पुरुप पर्वतादिक स्थावर पदार्थोंको घूमते देखै और चलते पदार्थोंको स्थिर देखै सो पुरुपभी छ महीनेमें मृत्यु पावै । जो पुरुप घंटाके शब्दको न सुनै अथवा कीचड़ व रजवाली भूमिमें जिस पुरुपके पादचिह्न खंडित होवैं, सो पुरुपभी छ महीनेके भीतरही शरीर छोडै । अंगुलीसे नेत्रोंको मींजनेसे तेजके सूक्ष्मकण देख पड़ते हैं, सो तेजके सूक्ष्मकण जिस पुरुपको नेत्रोंके मींजनेके विनाही प्रतीति होवैं सो पुरुप तीन मासके अनंतर मृत्यु पावै । जिस पुरुपके नेत्रादिक इन्द्रियरूपादिक विपयोंको पूर्वकी नाईं यथार्थ न ग्रहण करैं, सो पुरुप एक मासपीछे शरीर छोडै । जिन देवतादिकोंका शरीर हम लोगोंको प्रत्यक्ष नहीं प्रतीत होता ऐसे देवतादिक जिस पुरुपके श्रवण करने योग्य बचनोंको कथन करते हैं, सो पुरुपभी एक मासपीछे शरीर छोडै । जिस पुरुपका मस्तक अग्निकी ज्वालाकी भांति जलै वहभी एक मासपीछे मरै । जो पुरुप दिनमें उल्कापात देखै अथवा रात्रिमें इन्द्रधनुप देखै अथवा मेघरहित आकाशमें विद्युत् देखै अथवा मेघवाले आकाशमें विद्युतको न देखै सो पुरुषभी एक मासपीछे शरीर छोडै । जो पुरुष दर्पणादिकोंमें

अपना प्रतिबिम्ब न देखै, अथवा काक, मयूर और हंसके मैथुनको देखैं सोभी एक मासके पीछे शरीर छोडै । जो पुरुष रूक्ष पदार्थोंको स्निग्ध देखे और शीतल पदार्थोंको उष्ण देखै और उष्ण पदार्थोंको शीतल देखै सो पुरुषभी एक मासपीछे शरीर छोडै । स्नान करनेके पीछे जिसके दूसरे सर्व अंग तो गीले रहैं और हृदय, पाद यह दोनों अंग शीघ्रही शुष्क होजावें सो पुरुषभी एक मास पीछे शरीर छोडै । जो पुरुष अकस्मात्से भूमिमें छिद्र देखै अथवा जो पुरुष तिस भूमिके छिद्रसे उत्पन्न हुए शब्दोंको सुनै वह पन्द्रह दिन पीछे शरीर छोडै । जिस पुरुषको सूर्यकी किरणैं शीतल प्रतीत होवैं अथवा चंद्रमाकी किरणें उष्णप्रतीति होवैं अथवा जिस पुरुषका मुखलाल कमलकी नाईं रक्तवर्ण होजावै अथवा जिसकी जिह्वा प्रज्वलित अग्निके समान वर्णवाली होजाय अथवा जिस पुरुषके दोनोंकर्ण अश्वके कर्ण समान स्तब्ध हो जायँ अथवा जिसके हृदय, नाभि तथा तालुमें कंप होवै, सो पुरुषभी अर्द्ध मास पीछे मृत्यु पावै ॥ जिस पुरुषके शरीरमें अकस्मात्से अग्निकी ज्वाला प्रगट हो सो पुरुष सात दिन पीछे मरे ॥ तारा मंडल में स्थित जो सप्त ऋषि हैं, तथा आदित्यसे आदि लेकर केतुपर्यन्त जो नवग्रह हैं, तिनको जो पुरुष न देखे, सो पुरुष भी सात दिन पीछे मरै । जो पुरुष अपने नासिका तथा जिह्वाको न देखै अथवा जो पुरुष किसी कार्यको

करके तुरत भूल जाय अथवा जिस पुरुषके शरीर का पूर्व अर्द्ध तो उष्ण रहै और अपर अर्द्ध शीतल रहै, अथवा जिस पुरुष के नेत्र अत्यन्त विकास करके मंडलाकार होजायँ अथवा जिस पुरुष के दोनों कर्ण शिथिलतासे अपने स्थानसे च्युत होजायँ अथवा जिसका नासिका वक्र होजाय, सो पुरुषभी सात दिन पीछे मरै ॥ दक्षिणमें सूर्यके स्थित हुए पुरुषकी छाया नियम करके उत्तरदिशामेंही स्थित होती है, जब पुरुष अपनी छायाको दक्षिणकी ओर देखै, सो पुरुष उसी दिन शस्त्रसे मारा जाय ॥ जिस पुरुषने अपने भोजन करनेके अर्थ अन्नको बनाया है और तिस अन्नको किसी अपूर्व स्त्री को भोजन करते देखै, सो पुरुषभी तिसी दिन मरै ॥ वृषभ अथवा महिषके ऊपर चढा हुआ तथा हस्तमें दंड लिये ऐसे किसी भयानक पुरुष अथवा खुले हुए लाल रंगके केशवाली तथा हाथमें पाश लिये हुए किसी भयानक स्त्रीको जो पुरुष अन्नके भोजन कालमें देखै, सो पुरुष भी तिसी दिन मृत्यु पावै ॥ इस प्रकार तीन वर्ष, दो वर्ष, एक वर्ष षट मास, एक मास, एक पक्ष, सप्त दिन, एक दिनके जितने मृत्युके चिह्न पूर्वकथन किया है, तिन चिह्नोंमेंसे किसी एक चिह्नको अथवा दो तीन चिह्नोंको अथवा बहुतसे चिह्नोंको जो पुरुष जिस तिथि तथा दिनमें देखै सो पुरुष तिस तीन वर्षादिक कालसे अनन्तर तिस तिथि

तथा दिनको पुनः न प्राप्त होवै, किन्तु तिस तीन वर्षादिक कालके भीतरही मृत्युको प्राप्त होवै ॥ इति ॥ वाशिष्ठ संहितामें वर्णित मृत्युचिह्न समाप्त हुआ ॥ ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ॥

श्रीशिवस्वरोदयके कालप्रकरणसे ॥

मासादौ चैव पक्षादौ वत्सरादौ यथाक्रमम् ॥
क्षयकालं परीक्षेत वायुचारवशात्सुधीः ॥ १ ॥

मास, पक्ष और वर्ष इन तीनोंकी क्रमसे आदिमें विद्वान् मनुष्य वायुके प्रचारवशसे क्षय (मरण) के समयकी परीक्षा करै ॥

पंचभूतात्मकं दीपं शिवस्नेहेन सिंचितम् ॥
रक्षयेत् सूर्यवातेन प्राणीजीवः स्थिरोभवेत् ॥२॥

यह पंचभूतात्मक दीप (देह) को शिवरूप स्नेह (तेल) से सींचकर सूर्यरूप पवनसे जो प्राणी रक्षा करता है उसका जीव स्थिर होता है ॥ २ ॥

मारुतं बंधयित्वा तु सूर्यं बंधयते यदि ॥
अभ्यासाज्जीवते जीवः सूर्यकालेऽपि वंचिते॥३॥

जो मनुष्य प्राणवायुको बांधकर दिनभर सूर्यस्वरका बन्धन करताहै इस प्रकार अभ्यासके बलसे सूर्यकालका वंचन करके वह जीव जी सकता है ॥ ३ ॥ तात्पर्य यह है कि

दिन मे सूर्यस्वर (पिंगला) जिसका संचार नासिकाके दहिने छिद्रसे होता है न चलनेदे अर्थात् रोंकै रोकनेकी विधि ५ श्लोकके अर्थमें लिखा है ॥

गगनात्स्रवते चन्द्रः कायपद्मानि सिंचयेत् ॥
कर्मयोगसदाभ्यासैरमरः शशिसंश्रयात् ॥ ४ ॥

आकाशमें गमन करनेसे चन्द्रमाकी किरण नीचे गिरकर देहरूपी कमलोंको सींचती है, इस प्रकार कर्मके योगसे योगी चन्द्रमाका आश्रय लेनेसे अभ्यासके द्वारा अमर होजाता है ॥ ४ ॥

शशांकं वारयेद्रात्रौ दिवावार्यो दिवाकरः ॥
इत्यभ्यासरतो नित्यं स योगी नात्र संशयः ॥ ५ ॥

जो रात्रिमें चन्द्रस्वर (अर्थात् इडा जिसका संचार नासिकाके वाम छिद्रमें होता है) का और दिनमें सूर्यस्वर (पिंगला जिसका संचार नासिकाके दहिने छिद्रसे होताहै) का निवारण करता है इस प्रकार अभ्यास में तत्पर जो योगी है वही योगी है इसमें सन्देह नहीं है ॥ ५ ॥ चरणदासके स्वरोदयसे ॥ दिनमें चन्द्रस्वर चलावे, रात्रिमें सूर्यस्वर तो पूरी उमर पावै ॥ ऊपरसे ॥ स्वरके बदलनेकी यह रीतिहैः— जब बायांस्वर बन्द हो और उसको चलाना चाहे तो दहिने करवट ऐसे ढंगसे लेटै कि दहिनी छाती और बगल अच्छी

चरह दवजाय चार पांच मिटनमें दहिने स्वरसे बायां स्वर चलने लगैगा इसी प्रकार जब बायें स्वरसे दहिना स्वर चलाना चाहे तो बायेंकरवट उक्त ढंगसे लेटजाय थोडीदेरमें दहिना स्वर चलने लगैगा ॥ जितना बांयास्वर चलताहै उतनाही दहिना, दोनोंके बीच सुषुमन केवल दश स्वासा चलता है ॥ शरीरके निरोग रहनेका उपाय ॥ बायें करवट सोवै बायें स्वरमें जल पीवै दहिने स्वरमें भोजन करै ॥ जो दश दिन बायें स्वरमें भोजन करै और दहिने स्वरमें जल पीवै तो शरीरमें रोग हो ॥ दहिने स्वरमें टट्टी (दिसा) जाय बायें स्वरमें लघुशंका करै ऐसे साधनसे निरोग्यताकी प्राप्ति होती है ॥ यदि आठ पहर बराबर दहिना स्वर चलै तो तीन बरस शरीर रहै ॥ यदि सोलह पहर बराबर दहिना स्वर चलै तो दो बरस और यदि तीन दिन और तीन रात्रि दहिना स्वर बराबर चले तो सालभर शरीर रहै । सोलह दिन निशि दिन दहिना स्वर चलै तो एक मासमें शरीर छूटै ॥ एक मास यदि रैन दिन दहिना स्वर चलै तो दो दिन शरीर रहै ॥ पांच घडीतक सुषुमन अर्थात् बीचका स्वर बराबर चलै तो उसी समय मृत्यु होय॥ जब चन्द्र (बायांस्वर) सूर्य (दहिनास्वर) और सुषुमन यह तीनों स्वर न चलैं और केवल मुखसे स्वास चलै तो चार घडीमें मरै ॥ रात्रिको चन्द्र और दिनको सूर्य स्वर बराबर एक महीनेतक चले तो छठे महीने शरीर छूटै इति ॥

अहोरात्रे यदैकत्र वहते यस्य मारुतः ॥
तदा तस्य भवेन्मृत्युः संपूर्णे वत्सरत्रये ॥ ६ ॥

जिस मनुष्यका प्राणवायु (स्वास) अहो रात्र बराबर एक स्थानमेंही वहता रहै, तो उसकी मृत्यु तीन वर्षमें हो जायगी ॥ ६ ॥

अहोरात्रद्वयं यस्य पिंगलायां सदा गतिः ॥
तस्य वर्षद्वयं प्रोक्तं जीवितं तत्त्ववेदिभिः ॥ ७ ॥

जिस मनुष्यके श्वासकी गति अहोरात्र पिंगलामें रहै, तत्त्वके ज्ञाताओंने उस मनुष्यका जीवन दो वर्षका कहाहै॥७॥

त्रिरात्रे वहते यस्य वायुरेकपुटे स्थितः ॥
तदा संवत्सरायुष्यं प्रवदंति मनीषिणः ॥ ८ ॥

जिस मनुष्यका प्राणवायु तीन रात्रि तक एकही नासिकाके पुटमें स्थित होकर चलै तो विद्वान् मनुष्य उसकी अवस्था एक वर्षकी कहते हैं ॥ ८ ॥

रात्रौ चन्द्रो दिवा सूर्यो वहेद्यस्य निरन्तरम् ॥
जानीयात्तस्य वै मृत्युः षण्मासाभ्यंतरे भवेत्॥९॥

जिस मनुष्यका रात्रिमें चन्द्रस्वर और दिनमें सूर्यस्वर निरंतर वहै, उस मनुष्यकी छः महीनेके भीतर मृत्यु होती है ॥ ९ ॥

संपूर्णं वहते सूर्यश्चन्द्रमा नैव दृश्यते ॥
पक्षेण जायते मृत्युः कालज्ञानेन भाषितम् ॥१०॥

जिस मनुष्यका निरंतर सूर्य स्वरही वहता रहै और चन्द्र स्वर कभी भी न दीखै, तो उस मनुष्यकी मृत्यु पन्द्रह दिनके भीतर होजायगी ॥ १० ॥

मूत्रं पुरीषं वायुश्च समकालं प्रवर्त्तते ॥
तदाऽसौ चलितो ज्ञेयो दशाहे म्रियते ध्रुवम् ॥११॥

जिस मनुष्यके मूत्र, मल, वायु एकवारही निकसे उसको चलाचलीपर जानै वह दश दिनमें अवश्य मर जावैगा ११॥

सम्पूर्णं वहते चन्द्रः सूर्यो नैव च दृश्यते ॥
मासेन जायते मृत्युः कालज्ञेनानुभाषितम्॥ १२ ॥

जिस मनुष्यका बराबर चन्द्रस्वर बहता है, और सूर्य स्वर एक बार भी न दीखै, वह मनुष्य एकमासमें मर जायगा, कालके ज्ञानियोंने ऐसा कहा है ॥ १२ ॥

अरुंधतीं ध्रुवं चैव विष्णोस्त्रीणि पदानि च ॥
आयुर्हीना न पश्यंति चतुर्थं मातृमंडलम् ॥ १३ ॥

अरुंधती, ध्रुव, विष्णुके तीन पद चौथा मातृमंडल इनको जो न देखै वह आयुसे अपनेको हीन समझै ॥ १३ ॥

अरुंधती भवेज्जिह्वा ध्रुवो नासाग्रमेव च ॥
भ्रुवौ विष्णुपदं ज्ञेयं तारकं मातृमंडलम् ॥ १४ ॥

जिह्वा (जीभ) को अरुन्धती, नासिकाके अग्रभागको ध्रुव, भृकुटियोंको विष्णुपद और तारकाओंको मातृमंडल कहते हैं ॥ १४ ॥

नवभ्रुवं सप्तघोषं पंचतारां त्रिनासिकाम् ॥
जिह्वामेकदिनंप्रोक्तं म्रियते मानवो ध्रुवम् ॥१५॥

जो भृकुटीको न देखै तो ९ दिनमें, कानोंका शब्द न सुनै तो सात दिनमें, तारा न दीखै तो पांच दिनमें, नासिका न दीखै तो तीन दिनमें, जिह्वा न दीखै तो एक दिनमें मनुष्यका निश्चयसे मरण कहा है ॥ १५ ॥

कोणावक्ष्णोरंगुलिभ्यां किंचित्पीड्य निरीक्षयेत् ॥
यदा न दृश्यते बिन्दुर्दशाहेन भवेन्मृतः ॥ १६ ॥

नेत्रोंके कोनोंको अंगुलियोंसे कुछ दबाकर देखै यदि दबानेसे जलकी बिन्दु न निकले तो जानलो कि दशदिनमें मर जायगा ॥ १६ ॥

तीर्थे स्नानेन दानेन तपसा सुकृतेन च ॥
जपैर्ध्यानेन योगेन जायते कालवंचना ॥ १७ ॥

तीर्थोंके स्नान, दान, तप, सुकृत, जप ध्यान, योग, इनसे कालकी वंचना हो जाती है अर्थात् आया हुआ काल टल जाता है ॥ १७ ॥

इति श्रीशिवस्वरोदयसार (भाषा) समाप्त हुआ ॥
ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ॥

यजुर्वेदीय श्वेताश्वतर उपनिषद्के भाष्यके अर्थसे श्वेताश्वतर ऋषि तथा संन्यासियोंके संवादसे अविद्याकी तीनशक्तियां तथा उनके दूर करनेका उपाय तथा फल निरूपण ।

हे संन्यासियो ! जगत्‌विषे प्रथम सत्य बुद्धि कराइके पश्चात् तिस जगतमें आसक्ति करावनेहारी जो अविद्याकी शक्ति है सो अविद्याकी शक्ति अभिध्यानरूप ज्ञानसे नाश होती है । यह सम्पूर्ण जगत् हमारा आत्मा स्वरूप है,इस प्रकारके चिन्तनका नाम अभिध्यान है ॥ तिस अभिध्यानके उत्पत्तिसे पहिले इस अधिकारी पुरुषकी जैसे पदार्थोंमें आसक्ति होती है, तैसी आसक्ति तिस अभिध्यानकी उत्पत्तिके अनन्तर इस अधिकारी पुरुषकी नहीं होती ॥ इससे जाना जाता है, कि तिस अभिध्यान करके इस अधिकारी पुरुषकी कुछ अविद्याकी शक्ति निवृत्त हुई है जिस अविद्याशक्तिके नाश हुए यह विद्वान् पुरुष संसारमें आसक्त अज्ञानी जीवोंसे विलक्षण होता है, तथा रागद्वेषादिकोंसे रहित हुआ सो विद्वान् पुरुष शान्ति आदिक गुणवाला होता है ॥ हे संन्यासियो ! इस अर्थमें तुम संन्यासीही दृष्टान्त हो । काहेते सर्वात्मभावका चिन्तनरूप अभिध्यानसे पहिले जैसी तुम्हारी अनात्मपदार्थोंमें आसक्ति थी, तैसी आसक्ति अब तुम्हारे विषे (में) नहीं है॥हे संन्यासियो ॥ इन जीवोंका परस्पर भेद है, तथा जीव ईश्वरका परस्पर भेद है । इस प्रका-

रकी भेद प्रतीति करावनेहारी जो दूसरी अविद्याकी शक्ति है। सो दूसरी शक्ति योजनासे निवृत्त होती है ॥ जीव ईश्वरके अभेद चिन्तनका नाम योजना है॥ जैसे संसारमें लोग अपने ब्राह्मणत्व, क्षत्रियत्वादिक जातियोंमें संशय विपर्ययसे रहित होते हैं, तिस तिस योजना करके तिस अविद्याशक्तिके निवृत्त हुए यह विद्वान् पुरुष अपने आत्माके ब्रह्मरूपता विषे (में) संशय विपर्ययसे रहित होता है। और हे संन्यासियो॥ अनात्मपदार्थोंको विषय करनेहारे जो ज्ञान कर्म वासना हैं, तिनको उत्पन्न करनेहारी जो तीसरी अविद्याकी शक्ति है। सो तीसरी शक्ति तत्वभावसे नाश होती है ॥ निरन्तर अद्वितीय आत्माका चिन्तनरूप जो आत्मनिष्ठा है॥ तिस निष्ठाका नाम तत्वभाव है ॥ तिस तत्वभाव करके ता अविद्याशक्तिके नाश हुए, यह विद्वान् पुरुष जीवित अवस्थामें भी विदेह मुक्त पुरुषके समान होता है ॥ हे संन्यासियो! इस तत्वभाव अवस्थको प्राप्त हुए विद्वान् पुरुषोंकी शुभ अशुभ संस्कार सहित सर्व प्रकारकी अविद्या नाश होती है। जैसे स्वप्नसे जगाहुआ पुरुष स्वप्नके प्रपंचको देखता नहीं। तैसे स्वप्रकाश आनन्दस्वरूप आत्माके निष्ठाको प्राप्त हुआ विद्वान् पुरुष शरीरादिक प्रपंचको देखता नहीं॥ और हे संन्यासियो! समाधि अवस्थामें यद्यपि विद्वान् पुरुषको प्रपंचका भान होता नहीं। तथापि तिस समाधिसे

उत्थान कालमें तिस विद्वान् पुरुषकोभी जगतका भान हो-
ता है ॥ याते तिस विद्वान् पुरुषकोभी जगत की प्रतीति
करावनेहारी जो चतुर्थ अविद्याकी शक्ति है ॥ सो शक्ति
प्रारब्ध कर्मके नाशसे अनन्तरही नाश होती है ॥ इस
प्रकार ज्ञानकी अवस्था विशेषोंसे तिस अविद्याकी शक्तियों-
का नाश होता है ॥ हे संन्यासियो । जब यह अधिकारी
पुरुष सर्वात्मभावका चिन्तनरूप अभिध्यानसे आत्माको
साक्षात्कार करता है, तब काम क्रोधादिक पाशोंसे मुक्त
होजाता है ॥ जिन कामक्रोधादिक पाशोंसे बंधा हुआ
अज्ञानी पुरुष नानाप्रकारके ऊंच नीच शरीरोंको पाता
है और उन ऊंचनीच शरीरोंमें अध्यात्म, अधिदैव, अधिभूत
इन तीन प्रकारके दुःखोंको भोगता है ॥ ऐसे
कामक्रोधादिक पाश तभी निवृत्त होते हैं, जब यह
अधिकारी पुरुष गुरु शास्त्रके उपदेशसे इस सम्पूर्ण
जगतको अपना आत्मरूपकरके जानता है ॥ हे संन्यासियो !
जैसे घटाकाश महाकाशसे अभिन्न है । तैसे यह हमारा
आत्मा अद्वितीय ब्रह्मस्वरूप है ॥ इस प्रकार जीव ब्रह्मके
अभेदचिन्तनरूप योजनासे जब अधिकारी पुरुषको अद्वि-
तीय ब्रह्मका ज्ञान होता है तब इस अधिकारी पुरुषके
आत्म अनात्मका अध्यासरूप हृदय ग्रन्थीका भेदन होता
है, तथा अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश इन

पंच क्लेशोंकी निवृत्ति होती है, तथा सम्पूर्ण शुभ अशुभ कर्मोंका क्षय होता है। और सम्पूर्ण संशयोंकी निवृत्ति होती है॥ यथा श्रुति॥ भिद्यते हृदयग्रंथिः छिद्यंते सर्वसंशयाः॥ क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे॥ अर्थयह॥ अद्वितीय परमात्माके साक्षात्कार हुए इस अधिकारी पुरुषकी अध्यासरूप हृदयग्रंथि भेदनको प्राप्त होती है॥ तथा आत्माको विषय करने हारे सम्पूर्ण संशय छेदनको प्राप्त होते हैं। तथा प्रारब्धकर्मके अतिरिक्त सम्पूर्ण कर्म क्षयको प्राप्त होते हैं॥१॥ इस प्रकार आत्मसाक्षात्कार करके जब इस अधिकारी पुरुषको अज्ञानकी निवृत्ति होती है। तब सर्व दुःखोंका कारण अज्ञानके निवृत्त हुए यह अधिकारी पुरुष अनुकूल प्रतिकूल पदार्थोंकी प्राप्तिमें सुखी दुःखी नहीं होता॥ जैसे इस लोकमें जो पुरुष अपने शरीरसे भिन्न दूसरे शरीरोंके अभिमानसे रहित हैं॥ सो पुरुष तिन दूसरे शरीरोंके सुखे दुःख करके (से) अपनेको सुखी दुःखी नहीं मानते।वैसे यह विद्वान् पुरुष अपने शरीरको भी दूसरे शरीरकी नाईं जानताहै। इस कारण वह विद्वान् पुरुष इस शरीरके सुख दुःखसे अपने आत्माको सुखी दुःखी नहीं मानता॥ किन्तु यह बुद्धि देहादिक संघातही पूर्वले पुण्यपापकर्मसे सुखदुःखको प्राप्त होते हैं। मैं आत्मा तिस बुद्धि आदिक संघातसे भिन्न हूँ। इस प्रकारका विचार करके सो विद्वान् पुरुष बुद्धि आदिक

संघातहीमें सुख दुःख धर्म मानता है । अपने आत्माके धर्म नहीं मानता ॥ इस प्रकार आत्मसाक्षात्कारके प्रभावसे सुख दुःखोंसे रहित हुआ यह विद्वान् पुरुष अपने प्रारब्ध कर्मके समाप्तिकी इच्छा करता हुआ संसारमें विचरताहै इति॥

अथ अष्टांग योगका निरूपण ॥

हे संन्यासियो ॥ यम १ नियम २ आसन ३ प्राणायाम ४ प्रत्याहार ५ धारणा ६ ध्यान ७ समाधि ८ यह योगके अष्ट अंग हैं ॥ तहां अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह यह पांच प्रकारके यम हैं । तहां शरीर, मन, वाणीसे किसी जीवको पीडा न पहुँचाना, इसका नाम अहिंसा है ॥ परजीवोंके हितवास्ते यथार्थ वचन कहना, इसका नाम सत्य है ॥ बलत्कारसे तथा छलसे परधनादिकोंका नहीं हरण करना, इसका नाम अस्तेय है ॥ नेत्रादिक इन्द्रियोंके निरोधपूर्वक जो उपस्थ (लिंग) इन्द्रियका निरोध है, इसका नाम ब्रह्मचर्य है ॥ शरीरके निर्वाहसे अधिक भोगके साधनोंका संग्रह न करना, इसका नाम अपरिग्रह है ॥१॥ तहां शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान यह पांच प्रकारके नियम हैं । तहां शौच दो प्रकारका होता है ॥ एक बाह्य शौच, दूसरा आन्तर शौच ॥ तहां जलमृत्तिकादिकोंसे शरीरको शुद्ध रखना, यह बाह्य शौच है, मैत्री, करुणा, मुदिता इत्यादिक धर्मोंकरके अपने चित्तको द्वेषादिक

विकारोंसे रहित करना, इसका नाम आन्तर शौचहै ॥ प्रारब्धयोगसे जो अन्नवस्त्रादिक पदार्थ प्राप्त हों उनसे अपने प्राणोंकी रक्षा करनी, अधिक पदार्थोंकी तृष्णा न करनी, इसका नाम सन्तोष है, शीत उष्णादिकोंको सहन करना, तथा कृच्छ्र चान्द्रायणादिक व्रतोंको करना, इसका नाम तप है ॥ प्रणवादिक मंत्रोंका अभ्यास करना, इसका नाम जप है ॥ यह जीव जानकर अथवा अजानकर जिन शुभ अशुभ कर्मोंको करता है, तिन सर्व कर्मोंका ईश्वर विषे अर्पण करना, इसका नाम ईश्वरप्रणिधान है ॥ २ ॥

आसन दो प्रकारके होते हैं ॥ एक वो बाह्य आसन दूसरा शारीरक आसन होताहै ॥ तहां प्रथम कुशासनी बिछाना उसके ऊपर मृगचर्म तिस्के ऊपर वस्त्र विछाना, इसका नाम बाह्य आसन है ॥ पद्मासन, स्वस्तिकासन, भद्रासन, इनसे आदि लेकर अनेक प्रकारके आसन हैं ॥ तिन आसनोंका नाम शारीरक आसन है ॥ तहां वामपादको दक्षिण जंघके ऊरूऊपर रखना तिस बाम पादके अंगुष्ठको अपने पृष्ठदेशसे पीछे बाम हस्तको लाकर ग्रहण करना और दक्षिण पादको बाम जंघके ऊरूऊपर रखना तथा तिस दक्षिण पादके अंगुष्ठको अपने दक्षिण हस्तको अपने पृष्ठ देशसे पीछे लाकर ग्रहण करना तथा अपने शरीरको दण्डकी नाई सीधा रखना। इसका नाम पद्मासन है ॥

वाम पादको दक्षिणजंघके ऊरूके अन्तर राखिके दक्षिण पादको वाम जंघके ऊरूके अन्तर रखना तथा शरीरको दण्डकी नाईं सीधा रखना इसका नाम स्वस्तिक आसन है ॥ दोनों पादोंके दोनों तलोंको वृषणके समीप इकट्ठा करके तिनके ऊपर दोनों हस्त इकट्ठा करके कूर्माकार रखना तथा शरीरको दण्डकी नाईसीधा रखना इसका नाम भद्रासनहै॥ ३ पूरक, कुम्भक रेचक, यह तीन प्रकारके प्राणायाम हैं ॥ तहां दहिने हाथके अंगूठेसे दहिनी नासिकाको बन्द करके वाम नासिकाद्वारा बाहिरले वायुको धीरे धीरे खैंचके शरीरके भीतर स्थित करना, इसका नाम पूरक है ॥ दहिनो नासिकापर दहिने हाथका अंगूठा वैसेही रक्खा रहने दे, अन्तके दो अंगुलियोंको वाम नासिकापर रखकर नथनेको बन्द करले इस प्रकार पूरक रेचक भावसे रहित तिस वायुको शरीरके भीतर निरोध करना इसका नाम कुम्भक है ॥ अनन्तर अंगूठेको दहिने नथने परसे उठाले और दोनों अंगुली बांये नथनेपर रहने दे और स्वासको धीरे धीरे दहिनी नासिका द्वारा शरीरसे बाहर निकालना; इसका नाम रेचक है ॥ प्राणायामविधि गुरुमुखसे जानना चाहिये ॥ ४ ॥ रूपादिक विषयोंमें दोष दर्शनसे अनन्तर चित्तके अन्तर्मुख हुए जो नेत्र आदिक इन्द्रियोंको तिन रूपादिक विषयोंसे निरोध है, इसका नाम प्रत्याहार है ॥ ५ ॥ नाभिचक्र, हृदय, नासिकाग्र,

इत्यादिक स्थानोंमें परमात्मा देवविषे अपने मनको जोडना इसका नाम धारणा है ॥ ६ ॥ विजातीय वृत्तियोंका परित्याग करके तिस परमात्मादेवमें जो सजातीय वृत्तियोंका निरंतर प्रवाह है, इसका नाम ध्यान है ॥ ७ ॥ समाधि दो प्रकारकी होतीहैं, एक सविकल्प समाधि, दूसरी निर्विकल्प समाधि, है। तहां ज्ञाता, ज्ञेय, ज्ञान, इस त्रिपुटीके भान पूर्वक जो अन्तः करणकी वृत्तिकी अद्वितीय ब्रह्ममें स्थिति है, इसका नाम सविकल्प समाधि है, और तिस त्रिपुटीके भानसे रहित जो अन्तःकरणके वृत्तिकी अद्वितीय ब्रह्मविषे स्थिति है, इसका नाम निर्विकल्प समाधि है ॥ इन दोनों समाधियोंमें प्रथम सविकल्प समाधि साधनरूप है ॥ दूसरी निर्विकल्प समाधि फलरूपाहै ॥ यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार यह पांच तिस योगके बहिरंग साधन हैं। और धारण, ध्यान, समाधि यह तीनों अन्तरंग साधन हैं ॥ हे संन्यासियो! इस प्रकार, अद्वितीय ब्रह्मके साक्षात्कार हुए इस अधिकारी पुरुषकी अविद्या नाशको प्राप्तहोती है, और ब्रह्मसाक्षात्कारसे एक वार नाशको प्राप्त हुई सो अविद्या पुनः कदाचित् भी उत्पन्न होती नहीं ॥ इति ॥

प्रणव (ॐ) के ध्यानका प्रकार ॥

हे संन्यासियो ॥ इस अधिकारी पुरुषको जब किसी प्रतिबन्धके वशसे तत्वमस्यादिक वेद वाक्योंसे कार्य्यसहित

अविद्यासे भिन्नरूप करके ब्रह्मात्माका साक्षात्कार न प्राप्त होवे, तब सर्व अर्थका जानने हारा महात्मा गुरु तिस अधिकारी मुमुक्षुको ॐकाररूप प्रणवके ध्यानका उपदेश करके आत्मसाक्षात्कार करावै ॥ तिस प्रणवके ध्यानका प्रकार यह है ॥ जैसे लोकमें काष्ठरूप दो अरणियोंके मंथनसे लोग अग्निको प्रगट करते हैं ॥ तैसे यह हमारा शरीर नीचेकी अरणी है, और ब्रह्म का वाचक प्रणव मंत्र ऊपरकी अरणी है, । और यह ॐकाररूप प्रणव, मुझ ब्रह्म रूप आत्माकाही नाम है । इस प्रकार जो चित्तकी वृत्तियोंका निरन्तर प्रवाह है, सो तिन दोनों अरणियोंका मथन है ॥ इस प्रकारका मथन जब अधिकारी पुरुष निरन्तर करेगा तो इस संघात (शरीर) में शीघ्रही आत्मरूप अग्निका साक्षात्कार होगा इस कारण प्रणवका ध्यानभी आतम साक्षात्कारका उपाय है ॥ इति ॥ श्वेताश्वतरउपनिषद्सार (भाषा) समाप्त हुआ ॥ ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ॥

ॐतत्सद्ब्रह्मणे नमः ।

यजुर्वेदीय बृहदारण्यक उपनिषदके उद्दालक तथा याज्ञवल्क्यसंवाद ।

सूत्रात्माका स्वरूप ।

हे उद्दालक, जो तुमने सर्व जगतके बन्धनका कारण सूत्र पूछा है, सो सूत्र प्राणवायु है । जैसे मालामें सर्व पुष्पों तथा

मणियोंको सूत्र धारण किये रहता है तथा जैसे पटको तन्तु (तागा) धारण करता है। तैसे यह सूत्र आत्मा अर्थात् प्राणरूप वायु समस्त व्यष्टि, समष्टि शरीरोंको धारण किये है। यही कारण है कि मरणकालमें जब प्राणोंका लोकान्तर गमन होता है, तो सर्व हस्त, पादादि सम्पूर्ण अवयव शिथिल होजाते हैं, जैसे सूत्रके निर्गमन हुए सर्व पुष्प तथा मणियां शिथिल तथा विलग विलग हो जाती हैं। इस लोक प्रसिद्ध युक्ति करकेभी प्राणकोही सूत्ररूपता सम्भव है, यहां प्राणवायुसे समष्टि, व्यष्टि सूक्ष्म शरीरोंका ग्रहणकरना॥इति॥

अन्तर्यामीका स्वरूप।

हे उद्दालक! जिस सर्वज्ञ परमात्मा देवको पृथिवी, जल, अग्नि, भुवर्लोक, वायु, स्वर्ग, आदित्य, दिशा, चन्द्र, तारक, आकाश, अन्धकार, तेज इन त्रयोदश अधिदैवोंमें व्यापक श्रुतिने कथन किया है। और जिस परमात्मादेवको स्थावर जंगमरूप सर्वअधिभूतोंमें व्यापक श्रुतिने कथन किया है। तथा जिस सर्वज्ञ परमात्मादेवको श्रुतिने प्राण, वाक, चक्षु, श्रोत्र, मन, त्वक्, बुद्धि, उपस्थ इन्द्रिय, इन अष्ट प्रकारके अध्यात्मोंमें व्यापक कथन किया है। और जो परमात्मादेव पृथिवी आदिक उक्त इक्कीस स्थानोंमें स्थित हुआ भी तिन पृथिवी आदिक स्थानोंसे भिन्नही रहता है जैसे गृहवाला पुरुष

अपने गृहसे भिन्नही रहता है ॥ जिन पृथिवी आदिकोंके अन्दर स्थित जो परमात्मादेव है, वह पृथिवी आदिकभी उस परमात्मा देवको नहीं जानसकते वही परमात्मादेव पृथिवी आदिकोंको नियमपूर्वक अपने अपने कार्यमें प्रवृत्त करनेवास्ते अन्य शरीर ग्रहण करता, किन्तु जैसे अस्मदादिक जीवोंका शुक्र शोणितका विकाररूप यह शरीर है। तैसे तिस परमात्मादेवके पृथिवी आदिकही शरीर हैं। और जैसे राजा अपने भृत्योंको नानाप्रकारके व्यापारोंमें नियमपूर्वक प्रवृत्त करता है। तैसे यह परमात्मादेव पृथिवी आदिकोंके अभिमानी चेतनरूप लिंग शरीरोंको अपने अपने व्यापारोंमें नियम करके प्रवृत्त करता है। सो मायाका अधिपति यह परमात्मा देवही अन्तर्यामी है, यही अन्तर्यामी परमात्मादेव सर्वजीवोंका आत्मारूप है,जो जन्म,मरण, क्षुधा, पिपासा, शोक, मोह, इन षट् ऊर्मियोंसे रहित है॥

तात्पर्य यह है कि पृथिवी जलादिकोंमें जो परमात्मादेव विराजमान होकर उनको अपने अपने कार्योंमें प्रवृत्त कररहा है। परन्तु पृथिवी आदिक उस परमात्मादेवको जानते नहीं, तथा यह अन्तर्यामी परमात्मादेव ज्ञानवान पुरुषोंके नेत्रोंसे भी देखा नहीं जाता है और श्रवणसे सुना नहीं जाता तथा मनसे चिन्तन नहीं किया जा सकता, और शुद्ध बुद्धिसे निश्चय नहीं किया जासकता, इसी प्रकार किसी

इन्द्रीकाभी यह परमात्मादेव विषय नहीं है ॥ इस कारण यह परमात्मादेव अदृष्ट, अश्रुतत्वआदि धर्मवाला है, और यह दृष्टि,श्रुति, मति, विज्ञाति इन प्रकारकी बुद्धि वृत्तियोंको प्रकाश करता है इसी कारणसे अन्तर्यामी परमात्माको द्रष्टा श्रोता, मन्ता, विज्ञाता इत्यादिक नामों करके श्रुति कथन करती है, यह अन्तर्यामी परमात्मा सम्पूर्ण अन्तर और बाह्य व्यापारोंको जानता है। यातें हे उद्दालक यह अन्तर्यामी परमात्मा देवही सबका आत्मा है, अन्तर्यामीसे भिन्न कोई आत्मा नहीं है ॥ इति ॥

गार्गी,तथा याज्ञवल्क्य प्रश्नोत्तर
सूत्रात्मा तथा अव्याकृतका स्वरूप।

गार्गी उवाच ॥ हे याज्ञवल्क्य! जिस सूत्र आत्माका स्वरूपशास्त्रवेत्ता पुरुषोंने ब्रह्माण्डके ऊपरले कपालसे ऊपर स्थित कथन किया है। तथा जिस सूत्र आत्माका स्वरूप शास्त्रवेत्ता पुरुषोंने ब्रह्मांडके नीचले कपालसे भी नीचे स्थित कहा है, और जिस सूत्रआत्माका स्वरूप दोनों ब्रह्मांड कपालोंके मध्यमें कथन किया है, और जिस सूत्रआत्माका स्वरूप शास्त्रवेत्ता पुरुषोंने भूत, भविष्यत, वर्तमान स्वरूप सकल प्रपंचरूप कथन किया है। सो सूत्रआत्मा किस कारण विषे ओतप्रोत हुआ वर्तता है ॥ यज्ञवल्क्य उवाच ॥ हे गार्गी! जो तुमने सूत्रआत्मारूप कार्यका कथन किया सो

सूत्रआत्मारूप कार्य, आवरण विक्षेप शक्तिवाले अव्याकृत-रूप आकाशमें ओत प्रोत होकर रहता है । अर्थात् सूत्र आत्माका आधार अव्याकृतरूप आकाश है क्योंकि सूत्रआत्मा रूप कार्य अव्याकृत रूप आकाशके बिना अन्य किसीके आश्रित रहता नहीं जैसे मेघ केवल भूताकाशके आश्रित रहता है ॥ गार्गी उवाच ॥ हे याज्ञवल्क्य, सो अव्याकृतरूप आकाश किस विषे ओत-प्रोत होकर रहता है ॥ याज्ञवल्क्य उवाच ॥ हे गार्गी सर्वलोकोंके बुद्धि आदिकोंका साक्षी तथा नित्यही अपरोक्ष जो आत्मारूप अक्षर है । तिस अक्षर विषे यह अव्याकृतरूप आकाश ओत प्रोत होकर रहता है ॥ यहां अव्याकृत आकाशशब्दसे मूल अज्ञानका ग्रहण करना । सो मूल अज्ञान जीवके तथा ईश्वरके आश्रित रहता नहीं, किन्तु जीव ईश्वर विभागसे रहित जो शुद्ध चैतन्य है, तिसके आश्रित मूल-अज्ञान रहता है, और सो शुद्ध चैतन्यरूप आत्मा सर्वत्र व्यापक है तथा उत्पत्ति नाशसे रहित है याते शुद्ध आत्माही अक्षर है ॥ इति ॥

राजा जनक तथा याज्ञवल्क्यसम्वाद अग्नि आदिक चार पादों करके छ प्रकारकी सगुण ब्रह्मकी उपासनाका वर्णन ।

(१) अधिदैवरूप अग्नि प्रथम पाद है, अध्यात्मरूप वाक इन्द्रिय द्वितीय पाद है, अव्याकृतरूप आकाश तृतीय पाद है, और प्रज्ञानाम चतुर्थ पाद है ॥ (२) अधिदैव रूप वायु प्रथम पाद है, अध्यात्मरूप घ्राण इन्द्रिय द्वितीय पाद है, अव्याकृतरूप आकाश तृतीय पाद है, और प्रियनाम चतुर्थ पाद है, ॥ (३) अधिदैवरूप सूर्य प्रथम पाद है, अध्यात्मरूप चक्षु इन्द्रिय द्वितीय पाद है, अव्याकृत रूप आकाश तृतीय पाद है, और सत्यनाम चतुर्थ पाद है, ॥ (४) अधिदैवरूप दिशा प्रथम पाद है, अध्यात्मरूप श्रोत्रइन्द्रिय द्वितीय पाद है, अव्याकृतरूप आकाश तृतीय पाद है, और अनन्त नाम चतुर्थ पाद है ॥ (५) अधिदैव रूप चन्द्रमा प्रथम पाद है, अध्यात्मरूप मन द्वितीय पाद है, अव्याकृतरूप आकाश तृतीय पाद है, और आनन्दनाम चतुर्थ पाद है, ॥ (६) अधिदैवरूप प्रजापति प्रथम पाद है, हृदय द्वितीय पाद है ,अव्याकृतरूप आकाश तृतीय पाद है, और स्थितिनाम चतुर्थ पाद है ॥

सगुण ब्रह्मकी उपासनाका फल।

अग्नि आदिक चार चार पादोंविषे, प्रथम पादके चिन्तन करनेसे हिरण्यगर्भकी स्मृति होती है । दूसरे पादके चिन्तन करनेसे विराट भगवानकी स्मृति होती है । तृतीय

पादके चिन्तन करनेसे अन्तर्यामी ईश्वरकी स्मृति होती है। और चतुर्थ पादके चिंतन करनेसे तुरीय (ब्रह्म) की स्मृति होती है ॥ इति ॥

हिरण्यगर्भ तथा मनका अभेदनिरूपण ॥

हे जनक, जिस प्रकार समष्टि अज्ञान विशिष्ट ईश्वरका हिरण्यगर्भरूप सूत्रआत्मा सूक्ष्म शरीर है, तैसे व्यष्टि अज्ञान विशिष्ट जीवोंका मनही सूक्ष्म शरीर है। यहांपर मन शब्द करके पंच ज्ञान इन्द्रिय, पंच कर्म इंद्रिय पंच प्राण, मन, बुद्धि इन सत्रहोंका ग्रहण करना। हे जनक जैसे समष्टि माया विशिष्ट ईश्वर हिरण्यगर्भरूप सूत्रसे स्थूल जगतरूप पटको रचता है, तैसे स्वप्न अवस्थामें यह जीवात्मा मन रूप सूत्रसे जगतरूप पटको रचता है । हे जनक! जैसे प्रज्वलित महान अग्निसे अनेक विस्फुलिंग (चिनगारियां) उत्पन्न होती हैं, तैसे सूत्र आत्मारूप हिरण्यगर्भसे अनेक मन उत्पन्न होते हैं। जैसे प्रज्वलित महान अग्निमें दाह, प्रकाश आदि शक्ति हैं, तैसे चिनगारियोंमें भी हैं, केवल न्यूनाधिकका भेद है ॥ इसी प्रकार जैसे हिरण्यगर्भ रूप सूत्रआत्मा जगतकी उत्पत्ति, स्थिति, लय करता है, तैसे स्वप्न अवस्थामें सर्व देहधारी जीवोंका मनभी जगतकी उत्पत्ति, स्थिति, लय करता है ॥ इस प्रकार समष्टि सूक्ष्म सूत्रआत्मामें तथा जीवोंके व्यष्टि सूक्ष्म मनमें सूक्ष्मता तथा समान धर्मता दिखाई । अब

दोनोंके अभेदका निरूपण करते हैं, प्रज्वलित महान अग्नि तथा विस्फुलिंग यह दोनों तेजरूपसे समानही हैं, यातें तिनोंका अभेद है, किन्तु काष्ठरूप उपाधि करके तिनका भेद है । तैसेही समष्टि सूत्र आत्मामें तथा व्यष्टि मनमें वास्तवसे भेद नहीं है, किन्तु समष्टि स्थूल विराट शरीररूप उपाधि करके सूत्र आत्मामें भेद है, तथा व्यष्टि स्थूल शरीररूप उपाधि करके मनमें भेद है । इस प्रकार समष्टि व्यष्टि उपाधियों करके भेद दिखाया ॥

हिरण्यगर्भ तथा मन, समष्टि स्थूल तथा व्यष्टि स्थूल शरीरोंके आधार हैं, तथा उनके प्रकाशक ईश्वर साक्षी और जीवसाक्षी हैं और इन दोनोंका अभेद निरूपण ॥

हे जनक, जैसे लोकमें चित्रकार पुरुष भीतपर नाना प्रकारके चित्रोंको लिखता है, तैसें स्वप्नअवस्थामें यह स्वयं ज्योति आत्मा मनरूपी भीतपर जगतरूप चित्रोंको लिखता है । इस कारणसे यह स्वयं ज्योति आत्मा जगतका कर्ता ईश्वर रूप है । और हे जनक, जैसे सृष्टिके आदिकालमें मायाविशिष्ट परमात्मा देव देशकालादिक कारणोंको रचिकर सम्पूर्ण जगतको रचता है, तैसे स्वप्न अवस्थाविषे यह स्वयं ज्योति आत्माभी देशकालादिक कारणोंको रचिकर रथादिक पदार्थोंको

रचता है ॥ हे जनक, जैसे लोकमें भीत नानाप्रकारके चित्रोंका आधार है, वैसे समष्टि सूक्ष्मरूप सूत्रआत्मा (हिरण्यगर्भ) समष्टि स्थूलरूप चित्रों (विराट) का आधार है। इसी प्रकार व्यष्टि सूक्ष्ममनरूपी भीतभी व्यष्टि स्थूल शरीररूप चित्रोंका आधार है। हे जनक जैसे दीपक प्रथम भीतको प्रकाश करता है, फिर भीतद्वारा तिन चित्रोंको प्रकाश करता है, तैसे समष्टि अज्ञानउपहित ईश्वर साक्षी प्रथम सूत्रआत्मारूप भीतकोही प्रकाश करता है, फिर तिस सूत्रआत्माद्वारा समष्टि स्थूल विराट रूप चित्रोंको प्रकाश करता है । इसी प्रकार व्यष्टि अज्ञान उपहित जीवसाक्षी प्रथम व्यष्टि सूक्ष्मशरीररूप भीतको प्रकाश करता है, फिर तिस सूक्ष्मशरीर (मन) द्वारा व्यष्टि स्थूल शरीररूप चित्रोंको प्रकाश करता है, ॥ जैसे भीत (दीवार) तथा चित्र दीपकको प्रकाश करसकते नहीं, तैसे समष्टिव्यष्टि सूक्ष्म स्थूलरूप उपाधि साक्षी आत्माको प्रकाश करसकते नहीं, इतने करके "तत्त्वमसि" इस श्रुतिविषे, तत् शब्दका लक्ष्यार्थ जो ईश्वर साक्षी है, और त्वं शब्दका लक्ष्यार्थ जो जीवसाक्षी है, तिन दोनोंके अभेदताकी योग्यता दिखाई ॥

समष्टिविषे तथा कारण अज्ञानविषे मनका लय निरूपण।

अब मनके विद्यमान रहे आत्मामें जगतकी प्रतीति और मनके लय हुए आत्मामें जगतकी अप्रतीति इस प्रकारके

अर्थ बोधन करनेवास्ते, समष्टि विषे (में) मनका लय, तथा कारण अज्ञान विषे (में) मनका, लय तथा अधिष्ठानविषेमें मनका लय, यह तीनप्रकारका मनका लयरूप व्यतिरेक निरूपण करते हैं ॥ तहां प्रथम समष्टिविषेमें मनका लयरूप व्यतिरेक निरूपण करते हैं ॥ हे जनक! जैसे काष्ठोंके अभाव हुए अग्नि सामान्य तेजमें लय होता है, तैसे हिरण्यगर्भकी उपासनासे अधिकारी पुरुष अध्यात्म परिच्छिन्नभावकी निवृत्ति रूप मोक्षको प्राप्त होता है, तथा हिरण्यगर्भ भावकी प्राप्तिरूप अतिमोक्षको प्राप्त होता है, ऐसे उपासक पुरुषोंका मन सूत्र-आत्मारूप हिरण्यगर्भ विषेमें लय होता है, तिस कालमें तिन उपासक पुरुषोंको अध्यात्म परिच्छेदरूप संसारकी निवृत्ति होती है ॥ कारण अज्ञानविषेमें अब मनका लयरूप व्यतिरेक निरूपण करते हैं ॥ जैसे भस्मसे आच्छादित अग्नि दाहरूप कार्य तथा प्रकाशरूप कार्यको नहीं कर सकता है, और भस्मके निवृत्ति हुए सो अग्निदाह और प्रकाश दोनों कार्योंको करता है, तैसे सुषुप्ति अवस्था तथा मरण अवस्थामें जीवोंका मनरूप अग्नि भोगप्रद कर्मोंके अभावरूप भस्मसे आच्छादित रहता है, इस कारणसे सुषुप्ति तथा मरण अवस्थामें जीवोंका मन जगतकी उत्पत्ति, स्थिति, लयरूप कार्योंको नहीं करता है। जब सुख दुःखरूप फल देनेवाले पुण्यपापरूप प्रारब्धकर्मोंका उद्भव होता है, तब

सोई मन जाग्रत,स्वप्नमें जगतकी उत्पत्ति, स्थिति तथा लय रूप कार्योंको करता है ॥

अधिष्ठान ब्रह्ममें मनका लयरूप व्यतिरेक निरूपण ।

हे जनक ! जैसे सर्व काष्ठोंको भस्म करके जो अग्नि नाशको प्राप्त होता है, सो अग्नि पुनः कदाचित्भी उत्पन्न होता नहीं ॥ दो काष्ठोंके मथनसे जो अग्नि उत्पन्न होता है, सो दूसरा ही अग्नि उत्पन्न होता है । पहिलेका नष्ट हुआ अग्नि पुनः उत्पन्न होता नहीं । तैसे श्रवणादिक साधनों करके युक्त जो शुद्ध मन है सो मन अधिष्ठान ब्रह्म अर्थात् आत्मसाक्षात्काररूपी अग्निसे अज्ञानको तथा अज्ञानके कार्य जगतको दग्ध करता है, तथा सो मनभी अज्ञानका कार्यहै, इससे अज्ञानरूप कारणके दग्ध होनेके अनन्तर सो मनभी दग्ध हो जाता है ॥ एकवार आत्मज्ञानसे नाश हुआ मन पुनः कदाचित् उत्पन्न होता नहीं । इस कारण अज्ञानी जीवोंकी नाईं मुक्त पुरुषका वारवार जन्म होता नहीं । इस प्रकार मनके अभाव हुए संसारका अभाव सिद्ध हुआ ॥

मनके विद्यमान हुए संसारकी विद्यमानता निरूपण ।

हे जनक! जैसे ग्रीष्म ऋतुके रात्रिकालमें प्रकाशसे रहित जो उष्णता रूप तेज है सो तेज काष्ठादि ईंधनके विनाही संतापरूप कार्यको करता है, तैसे स्वप्नअवस्थामें

मन विशिष्ट आत्मा, देशकाल आदिक लौकिक सामग्रीके बिनाही सूक्ष्म रथादिक पदार्थोंको उत्पन्न करता है और हे जनक, जैसे शीतकालमें अग्नि काष्ठरूप इंधनोंको आश्रयण करकेही जीवोंके शीतकी निवृत्तिरूप कार्यको करता है, तैसे जाग्रत अवस्थामें यह मन विशिष्ट आत्मा देश कालआदिक लौकिक साधनोंको आश्रयण करकेही स्थूल पदार्थोंको उत्पन्न करता है ॥ अब जाग्रत स्वप्नकी समानताको निरूपण करते हैं ॥ हे जनक! जैसे स्वप्न अवस्थामें यह मनही स्थूलसूक्ष्म जगतभावको प्राप्त होता है याते सम्पूर्ण स्वप्नके पदार्थ मनोमात्र हैं ॥ तैसे जाग्रत अवस्थामेंभी यह मनही सर्व जगतभावको प्राप्त होता है, यातें जाग्रतके पदार्थ भी मनोमात्र हैं ॥ जैसे स्वप्नअवस्थामें मनके निरोध हुए द्वैत प्रपंच प्रतीति होता नहीं। तैसे जाग्रत अवस्थामेंभी मनके निरोध हुए द्वैत प्रपंच प्रतीति होता नहीं॥ जैसे स्वप्न अवस्थामें मनही शत्रु, मित्र तथा उदासीन पुरुषको उत्पन्न करके शत्रुसे द्वेष, मित्रसे राग और उदासीनसे उपेक्षा बुद्धि करता है, तैसे जाग्रत अवस्थामें भी यह मनही शत्रू मित्र तथा उदासीन पुरुषको उत्पन्न करके शत्रुसे द्वेष, मित्रसे राग और उदासीन पुरुषसे उपेक्षा बुद्धि करता है। यातें स्वप्न तथा जाग्रतके सुख दुःखके देनेहारे पदार्थ मनके विद्यमान रहनेसे समान है यही संसारकी विद्यमानता है ॥

स्वयंप्रकाशरूप आत्माको किसी दूसरे प्रकाशकी अपेक्षा नहीं है ।

हे जनक ! स्वम अवस्थामें सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, वायु इन चार प्रकाशोंमेंसे कोई प्रकाश नहीं रहता, यह चारों ज्योति लयभावको प्राप्त होते हैं, और आत्मारूप ज्योति किसी काल (अवस्था) में लयभावको प्राप्त होती नहीं, किन्तु सर्व अवस्थामें साक्षीरूपसे विद्यमान रहती है, यातें स्वमकालमें गमनागमनरूप सर्व व्यवहारोंकी सिद्धि आत्मारूप ज्योति करकेही होती है, इस संघात (शरीर) का तीनों अवस्थामें आत्माही ज्योति है जो संघातोंसे भिन्न स्वयं प्रकाश सर्व संघातोंका अधिष्ठान तथा साक्षी है ॥

स्वम अवस्था अर्थात् लोक परलोककी संधि ।

हे जनक ! जैसे संध्याकालमें गत दिन तथा आगामी रात्रिका ज्ञान होताहै ॥ इसी प्रकार लोक (जाग्रत अवस्था) परलोक(सुषुप्ति अवस्था) की संधि स्वम अवस्था है। जैसे संध्यामें दिन रात्रि दोनों नहीं है, किन्तु दोनोंकी संधिहै इस संधिरूप स्वम अवस्थाको जिस काल यह आत्मादेव प्राप्त होताहै,वो जैसे देहरीपर खडा हुआ पुरुष गृहके बाहर और भीतरके सर्व पदार्थ देखता है, तैसे स्वम अवस्थामें इस शरीरसे अनुभव कियेहुए पदार्थों तथा पूर्वके शरीरोंसे अनुभव करे पदार्थों को इसी प्रकार पापपुण्य कर्मोंके अनुसार भावी शरीरोंमें जो

जो पदार्थ अनुभव करने हैं, तिन सर्व पदार्थोंको यह जीवात्मा स्वप्नमें देखता है। इस प्रकार स्वप्न अवस्थामें पुण्य पापके वशसे सुख दुःखरूप फलको भोगता हुआ यह आत्मादेव इस लोकके पदार्थोंको तथा परलोकके पदार्थोंको देखता है॥

हे जनक! जब यह आनन्द स्वरूप आत्मा इस स्थूल शरीर रूप लोकका परित्याग करके दोनों लोकके दर्शनके वास्ते स्वप्नरूप सांध्यस्थानको प्राप्त होता है, तो स्थूल शरीरके सम्बन्धी जो नेत्रादिक इन्द्रियां हैं तथा रूपादिक जो विषय हैं, तिनके सूक्ष्म वासनाओंको तथा तिन वासनाओंका आधार जो मन है, इन सर्वको साथ लेकरही यह आत्मा देव स्वप्न अवस्थाको प्राप्त होताहै। जैसे महाराजा अपने अनुचरोंको साथ लेकर जाता है॥ हे जनक! जैसे बालक रेतमें क्रीडा करता हुआ क्रीडाके साधन नानाप्रकारके गृहादिक पदार्थ रेतका बनाता है, क्षण पीछे वह बालक तिन रेतमय सर्व पदार्थोंको नाश कर देता है। इसी प्रकार यह स्वयंप्रकाश आनन्द स्वरूप आत्मादेव स्वप्न अवस्थामें नानाप्रकारके रथादिक पदार्थोंको मनोमय उत्पन्न करके तथा तिन पदार्थोंका नाश करके निरन्तर क्रीडा करता है॥

जब यह स्वयं ज्योति पुरुष इस स्थूल शरीरका परित्याग करके स्वप्न तथा सुषुप्ति अवस्थाको प्राप्त होता है, तब

इस शरीरकी रक्षाके वास्ते प्राणको स्थापन करके जाता है । और जब मरण अवस्थाको प्राप्त होता है, तो प्राणको साथ लेकर परलोक जाता है ॥

हे जनक ! यह स्वयं ज्योति आत्मा यद्यपि वास्तवमें सुख दुःखका भोक्ता नहीं है, तथापि स्वप्न अवस्थाविषे अपनेमें भोक्तापनेकी सिद्धताके वास्ते अन्तःकरणकी वृत्तिरूप भोगकी कल्पना करता है, तथा अपने शुभ और अशुभ कर्मोंके अनुसार देवता मनुष्यादि शरीरोंके भोगने योग्य नानाप्रकारके भोग्य पदार्थोंकी कल्पना करता है । और नानाप्रकारके भोग स्वप्नकालमें भोगता है ॥

हे जनक! जिन सकाम पुरुषोंको जब केवल पुण्यकर्मोंका भोग है, तब वह स्वप्नकालमें नन्दनवन तथा स्वर्गके नानाप्रकारके भोग्य पदार्थोंको देखता और आनन्द उठाता है । जब पुण्यपापमिश्रित कर्मोंका भोग है, तो जाग्रत अवस्थाकी भांति सुख तथा दुःख जनक नानाप्रकारके स्वप्नोंको देखता है, और सुख दुःख भोगता है । जब केवल पापकर्मोंका भोग होता है, तो नानाप्रकारके भयानक तथा दुःखदाई स्वप्नोंको स्वप्न अवस्थामें देखता और केवल दुःख भोगताहै ॥

हे जनक! स्वप्न अवस्थामें सुखदुःख देनेहारे जो पुण्यपाप रूप कर्म हैं, तिन कर्मोंका जब नाश होता है, और जाग्रत अवस्थाके भोग देनेहारे कर्मोंका प्रादुर्भाव होता है, त

यह जीवात्मा स्वप्न अवस्थाका परित्याग करके जाग्रत अवस्थाको प्राप्त होता है और पुण्यपाप कर्मोंके अनुसार सुख दुःख भोगता है। पूर्वोक्त दोनों अवस्थाओंके पुण्यपाप कर्मोंका जब सुखदुःख भोगने के पश्चात् क्षय होता है, तब सुषुप्ति अवस्थाकी प्राप्ति होती है, तिसी प्रकार इस स्थूल शरीरविषे सुख दुःख रूप भोग देनेहारे पुण्यपापरूप जो कर्म हैं तिनका जब क्षय होता है, तथा जन्मान्तरमें सुखदुःख भोग देनेहारे कर्मोंका जब प्रादुर्भाव होता है, तब यह जीवात्मा इस स्थूल शरीरका परित्याग करके अपने पुण्यपापकर्मोंके अनुसार दूसरा शरीर धारण करता है॥

मरणकालमें जीवात्माका परलोकगमन।

हे जनक! जिस प्रकार सुषुप्ति अवस्थामें चक्षु आदि सब ज्ञान तथा कर्म इन्द्रिय तथा मन बुद्धि अपने अपने व्यापारोंसे रहित होकर हृदयदेशमें जाकर एकत्र होते हैं। इसी प्रकार मरणकालमें भी सर्व इन्द्रियोंके व्यापारका अभाव तथा हृदयदेशमें सर्व इन्द्रियोंकी एकता सिद्ध होती है। जिस मरणकालमें यह जीवात्मा पुरुष हृदयदेशमें परमात्माके साथ तादात्म्यभावको प्राप्त होता है, तिसकालमें यद्यपि दूसरे सम्पूर्ण विशेष ज्ञानोंका अभाव होता है। तथापि परलोकगमनके अनुकूल जो ज्ञान है, तिसका

अभाव नहीं होता, किन्तु परलोकके मार्ग दिखावनेवास्ते चिदाभासयुक्त वृत्ति करके हृदयका अग्रभाग प्रकाशमान होता है । दृष्टांत । जैसे महाराजाके जानेके मार्गमें प्रकाश आदि किया जाता है, वैसे जीवात्मारूप महाराजा जब इस स्थूल शरीररूप पुरीको परित्याग करके परलोक जाने की इच्छा करता है, तो हृदयका अग्रभागरूप जो राजमार्ग है, तिसको चिदाभास युक्त वृत्तिरूप दीपक प्रकाश करताहै । तिस कालमें इस स्थूल शरीररूप पुरीसे जीवात्मारूप महाराजा एकादश द्वारोंमेंसे किसी एक द्वारसे गमन करता है । दो चक्षु, दो श्रोत्र दो नासिकाके छिद्र, मुख, मूर्द्ध द्वार, नाभि उपस्थ, पायु ॥ जब जीवात्मा पायु इन्द्रियसे निकलता है, तो नरकको प्राप्त होता है, जब उपस्थ इन्द्रियसे जीवात्मा निकलता है, तो अत्यन्त कामातुर कपोतादि योनिको प्राप्त होता है, जब नाभिद्वारसे निकलता है, तो प्रेतयोनिको प्राप्त होता है, जब मुखद्वारसे निकलता है, तो अन्न विषे अति आसक्त जो प्राणी हैं, तिनके शरीरको पाता है, जब नासिकाद्वारसे निकलता है, तो गंधमें आसक्त जो प्राणी हैं, तिनका शरीर पाता है । श्रोत्रद्वारसे जब बाहर जीवात्मा निकलता है, तो गंधर्वलोकको प्राप्त होता है । जब चक्षुद्वारसे बाहर निकलता है, तो सूर्यलोकको प्राप्त होता है तथा चन्द्रलोकको जाता है । जब मूर्द्धद्वारसे निकलता है, तो ब्रह्मलोकको

प्राप्त होता है। इस प्रकार जीवात्मा अपने पुण्य पापकर्मके अनुसार तिस तिस द्वारसे बाहर निकलकर तिस तिस शरीर या लोकको प्राप्त होता है। जब बुद्धिरूप ज्ञानशक्ति वाला यह जीवात्मा पुरुष इस स्थूल शरीरका परित्याग करके बाहर निकलता है, तो क्रियाशक्तिवाला प्राणभी तिस जीवात्माके साथ जाता है, प्राणके साथ सर्व इन्द्रियां आदि भी जाती हैं॥ हे जनक! जैसे सुषुप्ति अवस्थामें यह जीवात्मा (चेतनके प्रतिबिम्बयुक्त बुद्धि अर्थात् विज्ञानमय कोष) हृदयमें परमात्माके साथ तादात्म्यभावको प्राप्त होता है और सर्व विशेष ज्ञानोंसे रहित होता है, तैसे मरणकालमें भी यह जीवात्मा हृदयदेशमें परमात्माके साथ तादात्म्यभावको प्राप्त होकर सर्व विशेष ज्ञानोंसे रहित होता है, परन्तु दो प्रकारका ज्ञान उस काल इस जीवको होता है, एक हृदयका अग्रभागरूप जो मार्ग है, उसका ज्ञान, दूसरा इस शरीरके त्यागनेके अनन्तर जो भावी शरीर प्राप्त होनेवाला है, तिसको विषय करनेवाला ज्ञान रहता है। शेष सर्व ज्ञानोंका अभाव हो जाता है। सुषुप्ति और मरणकालमें इतनाही भेद है॥ पापपुण्यका फल दुःख सुख भोगनेवाला यह जीवात्मा जब शरीरसे बाहर निकलता है, तब पूर्व शरीरोंमें अनुभव करे हुए जो पदार्थ हैं, उनका संस्कार तथा पुण्यपापरूप कर्म अपने साथ ले जाता है, तहां पुण्य-

अभाव नहीं होता, किन्तु परलोकके मार्ग दिखावनेवास्ते चिदाभासयुक्त वृत्ति करके हृदयका अग्रभाग प्रकाशमान होता है । दृष्टांत । जैसे महाराजाके जानेके मार्गमें प्रकाश आदि किया जाता है, तैसे जीवात्मारूप महाराजा जब इस स्थूल शरीररूप पुरीको परित्याग करके परलोक जाने की इच्छा करता है, तो हृदयका अग्रभागरूप जो राजमार्ग है, तिसको चिदाभास युक्त वृत्तिरूप दीपक प्रकाश करताहै। तिस कालमें इस स्थूल शरीररूप पुरीसे जीवात्मारूप महाराजा एकादश द्वारोंमेंसे किसी एक द्वारसे गमन करता है । दो चक्षु, दो श्रोत्र दो नासिकाके छिद्र, मुख, मूर्द्ध द्वार, नाभि उपस्थ, पायु ॥ जब जीवात्मा पायु इन्द्रियसे निकलता है, तो नरकको प्राप्त होता है, जब उपस्थ इन्द्रियसे जीवात्मा निकलता है, तो अत्यन्त कामातुर कपोतादि योनिको प्राप्त होता है, जब नाभिद्वारसे निकलता है, तो प्रेतयोनिको प्राप्त होता है, जब मुखद्वारसे निकलता है, तो अन्न विषे अति आसक्त जो प्राणी हैं, तिनके शरीरको पाता है, जब नासिकाद्वारसे निकलता है, तो गंधमें आसक्त जो प्राणी हैं, तिनका शरीर पाता है । श्रोत्रद्वारसे जब बाहर जीवात्मा नि[illegible] है, तो गंधर्वलोकको प्राप्त होता है । जब चक्षुद्वारसे [illegible] निकलता है, तो सूर्यलोकको प्राप्त होता है तथा च[illegible] को जाता है । जब मूर्द्धद्वारसे निकलता है, तो ब्र[illegible]

प्राप्त होता है। इस प्रकार जीवात्मा अपने पुण्य पापकर्मके अनुसार तिस तिस द्वारसे बाहर निकलकर तिस तिस शरीर या लोकको प्राप्त होता है। जब बुद्धिरूप ज्ञानशक्तिवाला यह जीवात्मा पुरुष इस स्थूल शरीरका परित्याग करके बाहर निकलता है, तो क्रियाशक्तिवाला प्राणभी तिस जीवात्माके साथ जाता है, प्राणके साथ सर्व इन्द्रियां आदि भी जाती हैं॥ हे जनक! जैसे सुषुप्ति अवस्थामें यह जीवात्मा (चेतनके प्रतिबिम्बयुक्त बुद्धि अर्थात् विज्ञानमय कोष) हृदयमें परमात्माके साथ तादात्म्यभावको प्राप्त होता है और सर्व विशेष ज्ञानोंसे रहित होता है, तैसे मरणकालमें भी यह जीवात्मा हृदयदेशमें परमात्माके साथ तादात्म्यभावको प्राप्त होकर सर्व विशेष ज्ञानोंसे रहित होता है, परन्तु दो प्रकारका ज्ञान उस काल इस जीवको होता है, एक हृदयका अग्रभागरूप जो मार्ग है, उसका ज्ञान, दूसरा इस शरीरके त्यागनेके अनन्तर जो भावी शरीर प्राप्त होनेवाला है, तिसको विषय करनेवाला ज्ञान रहता है। शेष सर्व ज्ञानोंका अभाव हो जाता है। सुषुप्ति और मरणकालमें इतनाही भेद है॥ पापपुण्यका फल दुःख सुख भोगनेवाला यह जीवात्मा जब शरीरसे बाहर निकलता है, तब पूर्व शरीरोंमें अनुभव करे हुए जो पदार्थ हैं, उनका संस्कार तथा पुण्यपापरूप कर्म अपने साथ ले जाता है, तहां पुण्य-

पापरूप कर्म इस जीवको सुख दुःख भोगनेके अनुकूल शरीरकी प्राप्ति करता है, और पूर्वले संस्कार इस जीवको तिस तिस जातिवाले शरीरके व्यवहारोंमें प्रवृत्त करते हैं। बिना शरीररूप आधारके यह जीवात्मा पुण्यपापका फल सुख दुःख नहीं भोग सकता, अतः राजाके भृत्य जैसे राजाके रहनेके वास्ते दूसरा नवीन गृह बनाते हैं, तैसे जीवात्माके पुण्यपाप कर्मरूप भृत्य पंचभूतोंसे उसके भावी शरीरको रचते हैं। तात्पर्य यह है कि यह जीवात्मा दूसरे शरीरका आलम्बन करकेही इस स्थूल शरीरका परित्याग करता है॥

इस जीवात्मा (बुद्धि उपहित चेतन) को दूसरे शरीरकी प्राप्ति कौन कराता है।

हे जनक, जैसे इस लोकमें एक दीर्घ काष्ठके साथ सूत्रसे बांधे हुए जो काष्ठके मर्कट हैं, तिन मर्कटोंके साथ बालक क्रीड़ा करता है, तहांपर सो बालक जिस मर्कटको क्रीड़ा करावनेकी इच्छा करता है, तिस मर्कटके सूत्रको आकर्षण करता है, तिस सूत्रके आकर्षणसे सो मर्कट नाना-प्रकारकी क्रीड़ा करता है, तिसी प्रकार यह अनादि संसार दीर्घ काष्ठके समान है, और स्थावर जंगमरूप सर्व प्राणी मर्कटके समान हैं, और जीवोंके पुण्यपापरूप कर्म सूत्रके समान हैं, और माया विशिष्ट अन्तर्यामी परमात्मा बालकके समान है, यातें सो परमात्मारूप बालक क्रीड

करने वास्ते जिस जिस प्राणीरूप मर्कटके पुण्यपाप कर्मरूप सूत्रको आकर्षण करता है, सो सो जीवरूप मर्कट इस संसारमें नानाप्रकारकी चेष्टा करता है॥ तात्पर्य यह है कि इस जीवने पूर्व जन्मोमें अनेक पुण्यपापरूप जो कर्म किये हैं, तिन कर्मोंका ज्ञान इस अल्पज्ञ जीवको नहीं है, किन्तु सर्वज्ञ परमात्माकोही जीवोंके पुण्यपापका ज्ञान है । यह जीव जिस काल में इस स्थूल शरीरका परित्याग करता है तिस कालमें सो परमात्मादेव तिस जीवके जिस पुण्यपाप रूप कर्मोंको सुख दुःख रूप फल देनेवास्ते सन्मुख करता है तिसी पुण्यपापरूप कर्मके अनुसार यह पराधीन जीव दूसरे जन्मको प्राप्त होता है, यातें पुण्यपापरूप कर्म करने तथा उनके फल सुख दुःख भोगने तथा दूसरे शरीरकी प्राप्तिमें यह जीव स्वतंत्र नहीं है, किन्तु अन्तर्यामी परमात्माही तिसमें कारण हैं, यथा चौपाई ॥ "नट मर्कट इव सबहि नचावत, रामखगेश वेद अस गावत ॥" यातें यह सिद्ध हुआ कि जैसे पिशाचों और मेघोंका वायुके अधीन गमनागमन होता है, तैसे,ब्रह्मलोकमें, स्वर्गमें, नरकमें तथा भूमिलोकमें इस जीवका जो गमन होता है, वह स्वतन्त्र नहीं होता, वरन जीवोंके पुण्यपापरूप कर्मोंके फल देनेके वास्ते ईश्वर अन्तर्यामीकी प्रेरणासे होता है ॥

आत्माके साक्षात्कारसे संसार (जन्ममरण) रूप वृक्षका नाश निरूपण।

हे जनक! जैसे अज्ञानका विषय हुआ शुद्ध आकाश गंधर्वनगररूप वृक्षके उत्पत्तिका क्षेत्र होता है, तैसे अज्ञानका विषय हुआ यह आत्मादेव कामरूप बीजसहित इस संसाररूप वृक्षके उत्पत्तिका क्षेत्र होता है, और जैसे आकाशरूप अधिष्ठानके वास्तव ज्ञानसे तिस कल्पित गन्धर्वनगरकी निवृत्ति होजाती है, तैसे अधिष्ठानरूप शुद्ध आत्माके साक्षात्कार करनेसे इस संसाररूप वृक्षका नाश होजाता है, तात्पर्य यह है, कि आत्माके अज्ञानसे इच्छारूप कामकी उत्पत्ति होती है और तिस इच्छारूप कामसे सम्पूर्ण जगत्की उत्पत्ति होती हैं, यातें अज्ञानविशिष्ट आत्मा इस संसाररूप वृक्षकी उत्पत्तिका क्षेत्र है, और इच्छारूप काम इस संसाररूप वृक्षका बीज है, आत्मसाक्षात्कार रूप अग्निसे जब अज्ञानका नाश होता है तब अज्ञानविशिष्ट आत्मारूप क्षेत्रकाभी नाश हो जाता है, यद्यपि आत्मा नित्य है, यातें आत्माका नाश सम्भवे नहीं, तथापि शुद्ध आत्माविषे तिस संसाररूप वृक्षकी क्षेत्ररूपता नहीं है, किन्तु अज्ञानविशिष्ट आत्मामें क्षेत्ररूपता है, तिस अज्ञानरूप विशेषणके नाशहुए आत्मा विषे संसाररूपवृक्षकी क्षेत्ररूपता रहे नहीं और तिस क्षेत्रके नाश हुए काम रूप बीजकाभी नाश हो जाता है और तिस कामरूप बीज-

के नाश हुए संसाररूप वृक्षकाभी नाश हो जाता है, इसप्रकार आत्म साक्षात्कारसे नाशको प्राप्त हुआ सो संसाररूप वृक्ष पुनः उत्पन्न होता नहीं । अब इसी अर्थको स्पष्ट करके निरूपण करते हैं। हे जनक! पुत्रईषणा, वित्तईषणा लोकईषणा यह तीन प्रकारकी ईषणा जब इस पुरुषकी निवृत्त होती है, तब यह पुरुष इसी शरीरमें अद्वितीय ब्रह्मको प्राप्त होकर मोक्ष पाता है ॥

शरीरमें अवस्थाके अनुसार, इन्द्राणीसहित परमात्मारूप इन्द्रका निवासस्थान निरूपण ॥

हे जनक! इन्द्राणीसहित परमात्मारूप इन्द्र जाग्रत अवस्थामें वामदक्षिणनेत्रमें स्थित होकर शब्द स्पर्शादिक स्थूल विषयोंको भोगता है, इस कारण तिस परमात्मा देवरूप इन्द्रको विद्वान् पुरुष स्थूलभुक कथन करते हैं और व्यष्टि स्थूल शरीरके अभिमानसे तिस परमात्मारूप इन्द्रको विश्वनामा कहते हैं और सोही परमात्मा रूप इन्द्र जाग्रत अवस्थाका परित्याग करके स्वप्न अवस्थामें हिता नाडीरूप स्थानमें स्थित होकर मनोमय सूक्ष्म विषयोंको भोगता है, इस कारणसे तिस परमात्मारूप इन्द्रको विद्वान् सूक्ष्मभुक् कहते हैं, और व्यष्टि सूक्ष्म शरीरके अभिमानसे तिस परमात्मादेवरूप इन्द्रको तैजस कहते हैं, और इन्द्राणीसहित सो परमात्मारूप इन्द्र स्वप्न अवस्थाका परित्याग करके सुषुप्ति

अवस्थामें हृदयाकाश (दहराकाश) में प्राप्त होता है, तहां वासनामय अत्यन्त सूक्ष्म भोगोंको भोगता है, इस कारणसे तिस परमात्मारूप इन्द्रको विद्वान पुरुष अत्यन्त सूक्ष्मभुक् कहते हैं । और सुषुप्ति अवस्थामें यह आत्मारूप इन्द्र आनन्दस्वरूप अन्तर्यामीके साथ अभेदभावको प्राप्त होता है, इस कारणसे तिसको आनन्दभुक् कहते हैं, और व्यष्टिकारण शरीरके अभिमानसे तिसको प्राज्ञ कहते हैं; हे जनक ! यदि विचार करके देखिये तो सुषुप्ति अवस्थामें सो परमात्मारूप इन्द्र अभोक्ताही है क्योंकि सुख दुःखके ज्ञानका नाम भोग है, सो सुख दुःखका ज्ञान सुषुप्तिमें बुद्धिके लय हुए सम्भवै नहीं इस कारण सुषुप्ति अवस्थामें आत्मा अभोक्ता है ॥

अथ तुरीय शुद्ध आत्माका निरूपण ।

हे जनक ! पूर्वमें जो तुमने हमसे गंतव्य स्थान पूछा था, तिस गंतव्य स्थानको तु श्रवण कर ॥ जो परमात्मा देव जाग्रत अवस्थामें दक्षिण नेत्रमें स्थित होकर अपने स्वप्रकाश रूपसे सूर्यादिक सकल जगतको प्रकाश करता है, और, जो परमात्मादेव स्वप्नके सर्व पदार्थोंको प्रकाश करता है, और जो परामात्मादेव, सुषुप्ति अवस्थामें हृदयाकाशमें स्थित होकर दिशादिक सर्व जगत्के साथ अभेदभावको प्राप्त होता है तथा सर्व भूतभौतिक प्रपंचको उत्पन्न करता है, सो परमात्मा देवही तुम्हारा तथा अन्य अधिकारी पुरुषोंका गंतव्य स्थान है ।

हे जनक! सो परमात्मादेवही तुम्हारा तथा हमारा तथा अन्य प्राणियोंका आत्मा है। शंका हे भगवन्! जो एकही परमात्मादेव सर्वत्र अनुगत है, तो विश्व तैजस, प्राज्ञ इत्यादिक रूपसे तथा मैं तू अन्य इत्यादिक रूपसे भिन्न भिन्न किस वास्ते प्रतीत होवा है॥ समाधान॥ हे जनक! जैसे एकही महाकाश घटमठादि रूप उपाधियोंके भेदसे घटाकाश मठाकाश इत्यादिक भेदको प्राप्त होता है, तैसेही एकही परमात्मादेव शरीरादिक उपाधियोंके भेदसे भिन्न भिन्न प्रतीति होता है, और जैसे उपाधिकृत भेदसे आकाशके वास्तवस्वरूप एकपना निवृत्त होता नहीं, तैसे उपाधिकृत भेदसे आत्माकाभी वास्तव स्वरूपका एकपना निवृत्त होवा नहीं॥ हे जनक! जिन पुरुषोंको इस संसाररूपी घोर दुःखदाई वनसे भय होता है, ऐसे अधिकारी पुरुषोंको यह अद्वितीय आत्माही मानने योग्य है और इस अद्वितीय आत्माका जो साक्षात्कार है, सोईही गंतव्य आत्माके प्राप्तिका राजमार्ग है, हे जनक! ऐसे आत्मज्ञानरूपी राजमार्गमें जभी तुम अधिकारी चलोगे, तभी तुमको आत्मारूप गंतव्यस्थानकी ति होवेगी। हे जनक! यह अद्वितीय आत्मा मन वाणीका अविषय है, यातें इस अद्वितीय आत्माको हम साक्षात् कथन करनेमें समर्थ नहीं हैं, और तू भी साक्षात् जाननेमें समर्थ नहीं है, यातें अनात्म पदार्थोंके निषेधद्वारा

अथ शरीरमें ईश्वर जीवकी स्थिति ।

हे नचिकेता ! जैसे लोकप्रसिद्ध पिप्पलादि वृक्षपर पक्षी रहते हैं । तैसे इस शरीर रूप वृक्षविषेभी दो पक्षी रहते हैं । एक वो तत् पदका अर्थ अन्तर्यामी ईश्वररूप पक्षी है दूसरा त्वं पदका अर्थ जीवरूप पक्षी है ॥ तहां जीवरूप पक्षी तो इस शरीररूपी वृक्षमें पुण्यपापरूप कर्मोंके सुखदुःखरूप फलको भोगता है । दूसरा अन्तर्यामी अभोक्ता ईश्वररूप पक्षी जीवरूप पक्षीको सो सुखदुःखरूप फलको भोगता है ॥ यह दोनों पक्षी बुद्धिरूप उत्कृष्ट स्थानमें इकट्ठे रहते हैं ॥ भोक्ता, अभोक्ता, अल्पज्ञता, सर्वज्ञतारूप करके परस्पर विरुद्ध धर्मवाले हैं ॥ तत्त्वं पदार्थके शोधनपूर्वक जिस अधिकारी पुरुषने तिस शुद्ध आत्माको जाना है, वह निदिध्यासनपूर्वक ब्रह्माकार वृत्तिद्वारा मोक्षको प्राप्त होता है ॥ उसका प्रकारः—

अथ शरीररूपी रथनिरूपण ।

श्रुति । आत्मानꣳरथिनं विद्धि शरीरꣳ रथमेवतु ।
बुद्धिन्तु सारथिं विद्धि, मनः प्रग्रहमेवच ॥ १ ॥
इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयाꣳस्तेषु गोचरान् ।
आत्मेन्द्रिय मनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ॥ २ ॥
विज्ञान सारथिर्यस्तु मनः प्रग्रहवान्नरः ।
सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमम्पदम् ॥ ३ ॥

अर्थ यह है ॥ जीवात्मा, शरीररूप रथका सवार है, बुद्धि सारथी है, मन रज्जु (बागडोर) है। १। नेत्रादिक दश इन्द्रिय अश्व हैं, शब्दस्पर्शादिक विषयरूप मार्ग हैं, वास्तवमें अकर्ता,अभोक्ता, परमशान्त, अचल, एकरस, निर्विकार आत्माको शरीर, इन्द्रिय,मन आदि उपाधिसहित होनेसे भोक्ता ऐसा मननशील बुद्धिवान जन कहते हैं ॥ इस प्रकार यह जीवात्मा संसाररूपी ग्राममें गमनागमन करता है ॥ २ ॥ जिस अधिकारी पुरुषके बुद्धिरूप सारथीने विषयोंसे वैराग्यरूप कवचको धारण किया है, वह बुद्धिरूप सारथी द्वारा मन रूप दृढ रज्जुसे इन्द्रियरूप अश्वोंको अपने वश करके परमात्मारूप देशको प्राप्त होता है ॥३॥ तात्पर्य यह है कि जब अधिकारी पुरुष अन्तःकरण और नेत्रादिक इन्द्रियोंसे परे आत्माको साक्षात्कार करै तब संसारबन्धनसे निर्मुक्त हो, तिसका परंपरा कारण जिस प्रकार श्रुतिमें कथन है, वह यह हैः—श्रुति ॥ इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः। मनसश्च परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान्परः ॥ १ ॥ महतः परमव्यक्तमव्यक्तात् पुरुषः परः। पुरुषान्न परं किञ्चित्सा काष्ठा सा परा गतिः ॥ २ ॥ एप सर्वेषु भूतेषु गूढोत्मा न प्रकाशते ॥ दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः३॥

यच्छेद्वाङ्मनसी प्राज्ञस्तद्यच्छेज्ज्ञानआत्मनि। ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेत्तद्यच्छेच्छान्त आत्मनि ॥ ४ ॥

इस आत्माको विद्वान् पुरुष कथन करते हैं ॥ अब निषेध मुखद्वारा आत्माका निरूपण करते हैं ॥ हे जनक! यह आनन्दस्वरूप आत्मा, भावत्व, अभावत्व, धर्मसे रहित है। यातें इस आत्माको घटादिक पदार्थोंकी नाईं भाव रूप करके (से) तथा घटाभावकी नाईं अभाव रूपसे (करके) तुम न जानना ॥ दृष्टान्त ॥ जैसे आकाश, मेघ, विद्युतादिक भाव पदार्थ रूप नहीं, तथा मेघ विद्युतादिकोंका अभावरूपभी नहीं वैसे यह आनन्दस्वरूप आत्मा प्रपंचरूप नहीं, तथा प्रपंचका अभावरूपभी नहीं। किन्तु भाव अभाव पदार्थोंसे विलक्षण है। हे जनक! जैसे रज्जुरूप अधिष्ठानके अज्ञानसे तिस रज्जुमें सर्प प्रतीति होता है, और जब रज्जुरूप अधिष्ठानका ज्ञान होता है, तब कारण अज्ञानसहित सो सर्प रज्जुरूप अधिष्ठानमें लय होता है, तैसे आत्मारूप अधिष्ठानके अज्ञानसे यह भाव अभावरूप जगत प्रतीति होता है, और जब अधिष्ठान आत्माका साक्षात्कार होता है, तब सम्पूर्ण जगत् आत्मारूप अधिष्ठानमें लयभावको प्राप्त होता है, यही आत्माका साक्षात्कार करना है ऐसे आत्मस्वरूपको जानकर अधिकारी पुरुष जन्ममरणसे रहित होकर परमानन्द ब्रह्मस्वरूप हो जाता है ॥ इति ॥ बृहदारण्यक उपनिषद-सार (भाषा) समाप्त हुआ ॥ ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ॥

तत्त्वमसि महावाक्यनिरूपण यमनचि- केता संवाद ।

हे नचिकेता। तत्त्वमसि, इस महावाक्य में स्थित जो तत् त्वं, यह दो पद हैं तिन दोनों पदोंमें, सर्वत्र परिपूर्ण माया विशिष्ट सर्वज्ञ ईश्वर तत् पद का अर्थ है॥ और अज्ञान विशिष्ट अल्पज्ञ जीवात्मा त्वं पदका अर्थ है॥ तहां जो अधिकारी पुरुप गुरुके मुखसे तिस तत् त्वं पदार्थका श्रवण करके तिस तत् पदार्थके माया सर्वज्ञतादिरूप वाच्य भागका परित्याग करके एक चेतनमात्र लक्ष्य भागका ग्रहण करता है। इसी प्रकार त्वं पदार्थके अविद्या अल्पज्ञत्वादि रूप वाच्य भागका परित्याग करके, एक चेतन मात्र लक्ष्य भागका ग्रहण करता है॥ इसप्रकार चेतनरूप लक्ष्यभागका ग्रहण करके जो अधिकारी पुरुप, मैं अद्वितीय ब्रह्मरूप हूँ। इस प्रकार अपनेको ब्रह्मरूप करके जानता है सो अधिकारी पुरुप ब्रह्मानन्दरूप मोक्षको प्राप्त होता है तथा सर्वदा प्रसन्न रहता है॥ कैसा है सो ब्रह्मानन्द, सर्वप्राणियोंको आनन्दकी प्राप्ति करनेहारा है॥ तहां श्रुति॥ एप ह्येवानंदयति॥ अर्थ॥ यह आनन्दस्वरूप ब्रह्मही सर्व प्राणियोंको आनन्द की प्राप्ति करता है॥ इति॥

अर्थ यह है ॥ श्रोत्रादिक इन्द्रियोंसे शब्दादिक अर्थ परे हैं, तिन शब्दादिक अर्थोंसे मन परे है, तिस मनसे व्यष्टि बुद्धि परे है, तिस व्यष्टि-बुद्धिसे महत्तत्त्वरूप समष्टि बुद्धि (सूत्रात्मा) परे है, और तिस महात्तत्त्वरूप समष्टि बुद्धिसे अव्यक्त परे है, और तिस अव्यक्तसे चेतन पुरुष परे है, तिस चेतनपुरुषसे परे कोई वस्तु नहीं है, किन्तु सो चेतन पुरुषही काष्ठारूप है, तथा परमगतिरूप है ॥ २ ॥ सर्व भूतोंसे गुप्त होके रहताहुआ यह आत्मादेव यद्यपि विचार-हीन पुरुषोंको स्पष्ट प्रतीत नहीं होता, तथापि गुरुके उप-देशसे उत्पन्न भई जो ब्रह्माकार सूक्ष्म बुद्धि है, तिस बुद्धिसे सूक्ष्मदर्शी अधिकारी पुरुष यह आत्मा प्रत्यक्ष (स्पष्ट) देखता है ॥ ३ ॥ बुद्धिवान पुरुष वागादिक सर्व इन्द्रियोंको मनमें लय करै,मनको वैराग्य युक्त निश्चयात्मक बुद्धिमें लय करै तिस बुद्धिको समष्टिबुद्धि रूप हिरण्यगर्भ सूत्रात्मामें लय करै, तिस समष्टि बुद्धिको परमात्मारूप साक्षी आत्मामें लय करै ॥ ४ ॥

हे नचिकेता ! जिस अधिकारी पुरुषको आत्माके साक्षा-त्कारकी इच्छा होवै, वह प्रथम इन चार अवस्थावाले लयचिन्तनरूप योगको करैः—

लयचिंतनरूपयोगकी प्रथम अवस्था ।

जो मन सुखके प्राप्तिकी कामनासे श्रोत्रादिक पंच ज्ञानइन्द्रियोंको तथा वागादिक पंच कर्मइन्द्रियोंको अपने

अपने व्यापारमें प्रवृत्त कर्ता है। तिस मनमें यह अधिकारी पुरुष तिन श्रोतादिक इन्द्रियोंको लय करै ॥ तहां दृष्टान्त ॥ जैसे लोकमें अश्वोंको शिक्षा करनेहारा पुरुष तिन दुष्ट अश्वोंको बाह्यभूमिरूप देशसे लाकर अश्वशालामें बांधता है। तो तिन दुष्ट अश्वोंका जो बाह्यभूमिमें नानाप्रकारका व्यापार था तिन सर्व व्यापारोंका निरोध होता है । केवल तिस अश्वके शरीरमात्रका चलनरूप व्यापार शेष (बाकी) रहता है ॥ तैसे यह अधिकारी पुरुष जब तिन श्रोत्रादिक इन्द्रियोंको अन्तर मन लय करता है, तब तिस मनका पहिले श्रोत्रादिक इन्द्रियेंरूप अश्वोंकरके जो बाहर नाना-प्रकारका व्यापार था, सो सम्पूर्ण व्यापार निरोधको प्राप्त होता है और तिस मनका केवल शरीरके अन्तरही व्यापार रहता है ॥

लयचिंतनरूपयोगकी द्वितीय अवस्था।

हे नचिकेता ! सो मन कैसा है, यह वस्तु हमको प्राप्त हो, यह वस्तु हमको न प्राप्त हो इसप्रकार मन इच्छारूप तथा गर्व-युक्त है। इस कारणसे प्रमत्त हस्तीकी नाई सो मन बला-त्कारसे सर्वदा प्रमाद करनेमेंही उद्यम करता है । जैसे महावत प्रमत्त हस्तीको लोहके तीक्ष्ण अंकुशसे अपने वश करता है यह अधिकारी पुरुषभी तिस मनरूप प्रमत्त हस्तीको

वैराग्ययुक्त निश्चयात्मक बुद्धिरूप अंकुशसे अपने वश करै ॥ तात्पर्य यह है कि तिस इच्छारूप मनको निश्चयात्मकरूप बुद्धिमें लय करै.

लयचिन्तनरूप योगकी तृतीय व चतुर्थ अवस्था ॥

हे नचिकेता ! तिस निश्चयरूप व्यष्टि बुद्धिको यह अधिकारी पुरुष हिरण्यगर्भकी महा तत्त्वरूप समष्टि बुद्धिमें लय करै ॥ कैसी है सो महत्तत्त्वरूप समष्टि बुद्धि ॥ " अहं अस्मि" यह सामान्य ज्ञानरूप है ॥ तथा सामान्य रूपसे सर्व जगत्को विषय करनेहारी है ॥ इस कारणसेही विशेष रूपसे जगतको विषय करनेहारी जो व्यष्टि बुद्धियां हैं, तिन सर्व बुद्धियोंका सो समष्टि बुद्धि कारणरूप है ॥ और तिस सामान्य ज्ञानरूप समष्टि बुद्धिको यह अधिकारी पुरुष, आनन्दस्वरूप आत्मामें लय करै ॥ इस प्रकारके योगरूप उपायसे सर्व जगत्का लय चिन्तन करके योगी पुरुष आत्मसाक्षात्कारके प्रभावसे मुक्तिको प्राप्त होता है ॥ लयचिन्तन रूप योग समाप्त हुआ ॥

देहरूपी पुरमें आत्मारूपी राजाका विलास ॥

हे नचिकेता ! यह जो हस्तपादादिक युक्त शरीर हैं सो पुर (नगर) वत् है अरु (जैसे. प्रसिद्ध पुर, द्वार अरु द्वारपालादि सर्व सामग्री करके सम्पन्न होता है) तैसे "" शरीररूपी पुरमें एकादश द्वार हैं, तिनमें इन्द्रि-

याधिष्ठाता देवता द्वारपाल हैं। मस्तक, कंठ, हृदय यह तीन इस देह विषे राजा स्थानीय महाराज आत्माके सभा करनेके स्थान हैं। तहां मस्तकरूपी स्थानमें नेत्ररूपी सिंहासनपर- बैठकर जाग्रतरूपी मुख्य सभा (आम दरबार) को करता है। अरु कंठरूपी स्थानमें हितानाम्नी नाडी सिंहासनपर बैठ कर स्वप्नरूपी निज सभा (खास दरबार) को करता है, और हृदयरूपी बंगलेमें सर्व सभा सामग्रीसे पृथक् होकर अपनी आनन्दाकार वृत्तिरूपी रानीको साथ लेकर शयन करता है ॥ अन्तःकरण चतुष्टय (मन, बुद्धि, चित्त, अहं- कार,) रूपी इसके श्रेष्ठ मंत्री हैं । इन्द्रियरूपी श्रेष्ठ कार्या- ध्यक्ष सर्व पदार्थोंके लेआने लेजानेवाले हैं । नानाप्रकारकी वृत्तियां और युक्तियां उस महाराजाकी सेना हैं । चिदाभास (बुद्धिमें चेतनका प्रतिबिम्ब) उनका सेनापति है। और अन्त- र्यामी उसका पुरपालक है। हे सौम्य। इत्यादि सामग्री सहित जो शरीररूपी पुर है सो अपनेसे अमिलित (पृथक्) धर्मवान् आत्मारूपी महाराजाधिराजका होना योग्य है ॥ सत्यं ज्ञान मनन्तम्ब्रह्म ॥ श्रुति ॥ ॐ पुरमेकादशद्वारमजस्यावक्र- चेतसः । अनुष्ठाय न शोचंति विमुक्तश्च विमुच्यते ॥ एतद्वै- तत् ॥ १ ॥ अर्थ हे नचिकेता । यह एकादश द्वारवाला पुर अवक्र, चैतन्य, अज, आत्माका है ॥ अर्थात् पुरके वृद्धि क्षयादि धर्मसे विलक्षण वक्रता रहित जैसे सूर्य भगवान्क

प्रकाश सर्वओरसे सर्वको नित्य सीधाही है। तैसेही नित्यही स्थित एकरस ज्ञानस्वरूप, जन्मादि विकाररहित अज परमात्मासे अभिन्न आत्मरूप राजाका यह उक्त पुर है। हे सौम्य! जिस राजाका यह पुर है तिसके समानही सर्व शरीररूपी पुरमें स्थित पुरके स्वामी एक अद्वैत, सर्वगत परमात्माको अनुष्ठान करके शोचता नहीं अर्थात् पुरके स्वामी सर्वान्तर प्रत्यगात्माको सम्यक् ज्ञानपूर्वक ध्यान मनन निदिध्यासन करके लोकादि सर्व ईषणासे रहित हुआ पुरुष शोकको नहीं प्राप्त होता "तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः" "तरति शोकमात्मवित्" ॥ और जो पुरुष सर्वान्तर एक प्रत्यगात्माके मनन निदिध्यासनादिरूप अनुष्ठान करके शोकसे रहित होता है, सो यहां जीवन्मुक्त दशाविषेही अविद्या और तिसके किये काम कर्मादिकोंसे मुक्त हुआ भी मुक्तिको पाता है अर्थात् वारंवारके जन्ममरणसे रहित होता है। एतदर्थही शोकको नहीं प्राप्त होता॥ वार्ते। "एतद्वै तत्" ॥ (यही सो ब्रह्म है) अर्थात् उक्त पुरके स्वामी आत्मासे इतर ब्रह्म नहीं ॥ १ ॥ इति ॥

अथ ज्ञानयोगनिरूपण।

श्रुतिः ॥ यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह। बुद्धिश्च न विचेष्टते तामाहुः परमां गतिम् ॥ १ ॥

हे नचिकेता ! जिस कालमें इस अधिकारी पुरुषके श्रोत्रादिक पंच ज्ञानइन्द्रिय तथा मन, बुद्धि अपनी चंचलताको छोड़कर निश्चल भावको प्राप्त होते हैं तिस कालमें तिनकी निश्चलताको विद्वान पुरुष परमगति इस,नामसे कथन करते हैं ॥ हे नचिकेता ! मन बुद्धि इन्द्रियोंकी जो निरन्तर एकाग्रता है। तिस एकाग्रता रूप अवस्थाकी प्राप्तिके समान कोई दूसरी अधिक गति नहीं है। किन्तु तिस एकाग्रता रूप अवस्था द्वारा इस अधिकारी पुरुषको स्वयंज्योति आत्माका साक्षात्कार होता है। जिस आत्माके साक्षात्कार होनेसे यह अधिकारी पुरुष किंचित्मात्रभी संसारदुःखको प्राप्त होता नहीं ॥ इस कारणसे सो मनबुद्धि इन्द्रियोंकी एकाग्रताही परमगति रूप है ॥ हे नचिकेता ! नानाप्रकारके विघ्नोंसेभी नहीं चलायमान हुई जो मनबुद्धि इन्द्रियोंकी एकाग्रता रूप धारणा है, तिस धारणाको विवेकी पुरुष योग इस नामसे कथन करते हैं। सो योगही ब्रह्मभावकी प्राप्तिद्वारा इस जगतकी उत्पत्ति संहार करनेकी सामर्थ्यरूप ऐश्वर्यके प्राप्तिका कारण है इससे तिस योगकी प्राप्ति वास्ते तू प्रमादसे रहित होकर सावधान हो ॥ हे नचिकेता ! "मैं ब्रह्मरूप हूँ" इस प्रकारका जो जीव ब्रह्मका अभेद ज्ञानरूप योग है। सो योग तिन इन्द्रियोंकी एकाग्रता रूप धारणाके विना होता नहीं। तथा काम संकल्पादिक चित्तके वृत्तियोंकी उत्पत्तिरूप

प्रमादके विद्यमान हुए भी सो योग प्राप्त होता नहीं । इस कारण जो अधिकारी पुरुष मनबुद्धिसहित सर्व इन्द्रियोंको निरोध करके तथा प्रमादसे रहित होकर तिस अभेद ज्ञानरूप योगको प्राप्त होता है । सो अधिकारी पुरुष परमेश्वरकी नांई इस जगतके उत्पत्ति संहार करनेमें समर्थ होता है। हे नचिकेता! तिस योगरूप उपायके विना यह आत्मादेव मन, वाणी तथा श्रोत्रादि इन्द्रियों करके प्राप्त हो सकता नहीं किन्तु तिस एक योगरूप उपायसेही यह आत्मादेव प्राप्त होता है ॥

अथ प्रणवकी प्रतीक तथा आलम्बन उपासना ।

हे नचिकेता ! अधिकारी पुरुषको यह प्रणवरूप अक्षरही हिरण्यगर्भरूपसे तथा परब्रह्मरूपसे ध्यान करने योग्य है । इस प्रकार जो अधिकारी पुरुष तिस प्रणवरूप अक्षर को ब्रह्मरूपसे ध्यान करता है । सो अधिकारी पुरुष हिरण्यगर्भ भावकी प्राप्ति तथा परब्रह्मभावकी प्राप्ति इन दोनों फलोंमें जिस फलकी इच्छा करै तिस फलको प्राप्त होता है इस कारण अधिकारी पुरुषको तिस प्रणवरूप अक्षरकी प्रतीक उपासना अवश्य करनी चाहिये ॥ हे नचिकेता ! ॐकार रूप प्रणवमें अकार, उकार, मकार, अर्द्धमात्रा, यह चार मात्रा होती हैं । तिन अकारादिक चार मात्राओंके यथाक्रमसे स्थूल, सूक्ष्म, कारण, तुरीय, यह चार अवस्था वाच्य अर्थ होते हैं । तिन चार अवस्था उपहित शुद्ध चेतन "मैं हूं" इस प्रकारका

जो निरन्तर चिन्तन है॥ इसका नाम आलम्बन उपासनाहै॥ यह प्रणवरूप आलम्बनही हिरण्यगर्भ तथा परब्रह्मके ध्यानका उपयोगी है। इस प्रकार तिस प्रणवका आलम्बन करके जो अधिकारी पुरुष हिरण्यगर्भ तथा परब्रह्मका ध्यान करता है। सो अधिकारी पुरुष ब्रह्मलोकमें जाकर तहां मोक्ष पाता है ॥ इति ॥

सर्व कठवल्ली उपनिषदके अर्थका संक्षेप निरूपण ॥

हे नचिकेता! यह आत्मा सर्वके हृदयकमलमें स्थित है, तिस आत्माको तीन शरीरोंसे भिन्न जानै, जैसे मूंजरूप बाह्य त्वचासे इसीका रूप मध्यके तृणको भिन्न करते हैं तैसे अन्वय व्यतिरेक करके स्थूल, सूक्ष्म, कारण इन तीन शरीरोंसे आत्माको भिन्न करै ॥ संक्षेपसे अन्वय व्यतिरेकका प्रसंग कहते हैं, स्वप्नअवस्थामें यह स्थूल शरीर प्रतीत होता नहीं, यातें इस स्थूल शरीरका व्यतिरेक है, आत्मा स्वप्न अवस्थामें भी प्रकाश करता है, यह आत्माका स्वप्नमें अन्वय है, सुपुप्तिमें सूक्ष्म शरीरका अभाव है, यह सूक्ष्म शरीरका सुपुप्तिमें व्यतिरेक है, आत्मा सुपुप्तिमें भी अज्ञानको प्रकाश करता है, यह आत्माका सुपुप्तिमें अन्वय है, और अज्ञानरूप कारण शरीर समाधि अवस्थामें रहता नहीं, यह कारण शरीरका व्यतिरेक है, और आत्मा समाधि अवस्थामें भी प्रतीत होता है, यह आत्माका समाधि अवस्थामें अन्वय है ॥ इ

प्रकार धैर्यसे अन्वय व्यतिरेक रूप युक्तिसे तीन शरीरसे अपने साक्षीरूपको पृथक् करै तिसे साक्षीरूप ब्रह्मको निश्चय करके तत्परायण हो, यह ब्रह्मके साक्षात्कार करनेका उपाय है ॥

इति कठवल्ली उपनिषदसार (भाषा) समाप्त हुआ ॥

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ॥

हरिः ॐ तत्सत् ।

यजुर्वेदीय नारायण उपनिषदके भाष्यके अर्थसे अष्टदलहृदयकमलका स्वरूप ।

जैसे लोकमें अष्टदलवाला तथा रक्त वर्णवाला तथा किंचित् विकासको प्राप्त हुआ कोई कमल होता है । तैसे हृदयदेशके शिरविषे लंबायमान एक अन्तर कमल रहता है जो अत्यन्त रमणीक तथा पंच छिद्रयुक्त है तथा नीचे जिसका मुख है, तथा नाभिसे द्वादश अंगुल ऊपरले देशमें स्थित है । तिस हृदयकमलका पूर्व छिद्र तो चक्षुरूप है । दक्षिण छिद्र श्रोत्ररूप है । पश्चिम छिद्र वाक्रूप है उत्तर छिद्र मनरूप है । और मध्यका छिद्र घ्राणरूप है । और जिह्वा तिस कमलका मूलस्थान है । वक्षस्थलसे गलपर्यन्तका जो अन्तर देश है, सो तिस कमलकी भूमि है । यह हृदयकमल मनके रहनेका स्थान है । इस कारण शास्त्रवेत्ता पुरुष तिस हृदयकमलको मानस नामसे कथन करते हैं ।

सो हृदयकमल गळसे द्वादश अंगुल नीचे देशमें स्थित है, और तिस हृदयकमलका तेज, सूर्य, चंद्रमा, अग्नि, नक्षत्र, विद्युतके समान है। उज्ज्वल वर्णवाली तथा रुधिरमांसादिक धातुओंसे युक्त (लिप्त) हुई नानाप्रकारकी नाडियोंसे यह हृदय कमल चारोंसे वेष्टित है और जैसे लोकमें महाराजाके गृहमें महाराजाके क्रीड़ा करनेके अर्थ जलका सरोवर होता है. वैसे हृदयका मध्य छिद्र तिस हृदयकमलका सरोवर है ऐसे हृदय कमलमें सो परमात्मादेव निवास करता है जो परमात्मादेव, अद्वितीय आनन्दस्वरूप है, तथा अग्निके समान प्रकाशमान है, तथा स्वयं ज्योतिरूप है जिस परमात्मादेवकी चिदाभासरूप ज्वाला बुद्धि आदिक सर्व जगतमें स्थित है, तथा बुद्धि आदिक सर्व संघातसे अत्यन्त समीप है। सो परमात्मादेवही बुद्धिरूप उपाधिको अंगीकार करके सर्व विषयजन्य सुखोंको भोगता है, और सो परमात्मादेवही प्राण जठराग्निरूपसे भोजन किये अन्नके स्थूल, मध्यम सूक्ष्म, इन तीन प्रकारके विभागोंको करताहुआ सर्व जीवोंके उदरमें स्थित है। तिस जठराग्निरूप परमात्मादेवकी क्षुधा, तृषा क्रोधादि रूप किरणें नीचे ऊपर मध्यमें तेज करके व्याप्त हैं। ऐसे क्षुधा तृषादि रूप किरणों करके सो जठराग्निरूप परमात्मादेव पादसे मस्तकपर्यन्त इन सम्पूर्ण शरीरोंको तपायमान करता है। ऐसे परमात्मादेवका अधिकारी पुरुष तिस हृदयकमलमें ध्यान करै। तिस ध्यानके

प्रभावसे परमात्मदेवका साक्षात्कार प्राप्त होता है । यह परमात्मादेवही उपाधिके सम्बन्धसे ईश्वर, हिरण्यगर्भ विराट प्रजापति आदित्यादि अनेक रूप हैं, ऐसा श्रुति कथन करती है । जैसे एकही आकाश उपाधिके भेदसे अनेक होता है यथा घटाकाश, मठाकाश, मेघाकाश इत्यादि ॥ यदि अधिकारी पुरुषको सो परमात्मादेव सत्चित् आनन्दरूपसे प्रतीति न होवै तो दूसरे प्रकारसे तिस परमात्मादेवका ध्यान करै । तिस हृदयकमलके मध्यमें एक दीपकी शिखा स्थित है, जो अत्यन्त सूक्ष्म तथा ऊर्ध्व देश प्रज्वलित तथा निश्चल है, तथा नील मेघमें स्थित विद्युत रेखके समान प्रकाशमान है, तथा सुवर्णके समान पीतवर्ण वाली है, तथा सूक्ष्म हुई भी प्रकाशवाली है, ऐसी दीपकी शिखाके मध्यमें तिस परमात्मादेवको जो ब्रह्मा, शिव, हरिरूप है, तथा सर्वसे सनातन है, तथा अक्षररूप तथा सर्व जगत्का प्रभु और अपने स्वप्रकाश रूपसे विराजमान है । यह अधिकारी पुरुष ध्यान करै तो तिस ध्यानसे व्यापक, सत्चित् आनन्द स्वरूप परमात्माका साक्षात्कार होगा अर्थात् मोक्षपद मिलैगा ॥ इति ॥

अथ नारायण नामका एकादश अर्थ निरूपण ।

अपनी समीपता मात्रसे जो चेतन सर्व पदार्थको अपने अपने कार्यमें प्रवृत्त करता है, तिस चेतनदेवका नाम नर है,

ऐसे चेतन आत्मारूप नरका यह माया दश्यरूपसे सम्बन्धी है, इस कारण तिस मायाको नारा इस नामसे कथन करते हैं, और यह प्रपंच तिस मायाका कार्य है, इस कारणसे सूक्ष्म प्रपंचको नार इस नामसे कहते हैं, ऐसी मायारूप नारामें, तथा सूक्ष्म प्रपंचरूप नारमें यह परमात्मादेव प्रतिबिम्ब रूपसे वर्त्तता है, इस कारणसे तिस माया विशिष्टपरमात्मादेवको तथा सूक्ष्म प्रपंचविशिष्ट हिरण्यगर्भको श्रुति भगवती नारायण इस नामसे कथन करती है ॥ १ ॥ अथवा परमात्मा रूप नरसे उत्पन्न भया जो जलहै, तिस जलका नाम नारा है, वह नारारूप जल इस विराट्‌रूप परमात्मादेवका आधार है इस कारण श्रुति भगवती तिस विराट्‌रूप परमात्मादेवको नारायण इस नामसे कथन करती है ॥२॥ अथवा जैसे प्रसिद्ध नदियोंका जल नौकाका आधार होता है, तैसे इस भूमिरूप नौकाका आधार जो जलहै सो जल परमात्मादेवहीसे उत्पन्न हुआ है, इस कारण तिस जलका नाम नारा है, ऐसे नारारूप जलको यह परमात्मादेवही सूत्रात्मारूप प्राणरूपसे धारण करता है, इस कारण श्रुति भगवती तिस परमात्मादेवको नारायण कथन करती है ॥३॥ अथवा स्थूल प्रपंच है शरीर जिसका ऐसा जो विराट है, तथा सूक्ष्म प्रपंच है शरीर जिसका ऐसा जो हिरण्यगर्भहै, तिन दोनोंका नाम नर है, तिन दोनों नरोंकी स्थिति तिस परमात्मारूप कारणमही होती है याते तिस

परमात्मादेवको श्रुति भगवती नारायण इस नामसे कथन करती है ॥४॥ अथवा तिस परमात्मादेवके प्रतिबिम्बरूप जो यह जीव हैं, तिन जीवोंका नाम नर है, तिन प्रतिबिम्बभूत नरोंका निरूपण तिस बिम्बरूप परमात्मादेवहीसे हुआ है, इस कारण श्रुति भगवती तिस परमात्माको नारायण इस नामसे कथन करती है, ॥ ५ ॥ अथवा इन जीवोंमें स्वभावसे सिद्ध जो कामक्रोधादिक दोष हैं, तिन दोषोंका नाम अर है और तिन कामक्रोधादिक रूप अरोंसे उत्पन्न हुए जो दुःख, तिन दुःखोंका नाम आर है और तिन दुःखरूप आरोंका आश्रयरूप जो यह अज्ञानादिक जडप्रपंच है, तिस जडप्रपंचका नाम आरायण है, सो जड प्रपंचरूप आरायण, तिस स्वयंज्योति आनन्दस्वरूप परमात्मादेवमें तीनों कालमें नहीं है इस कारण श्रुति भगवती तिस परमात्मादेवको नारायण इस नामसे कहती है ॥ ६ ॥ अथवा अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश, यह पंच क्लेश तथा पुण्य पापरूप कर्म तथा सुख दुःखरूप फल तथा तिनकी वासना यह सम्पूर्ण अविद्यादिक इस संसाररूप चक्रका अरा है, और तिन क्लेशादिरूप अरोंका यह माया परिणामी उपादान कारणरूपसे आश्रय है, इस कारण मायाका नाम आरायण है, और आरायण रूप मायासे यह कूटस्थ परमात्मादेव भिन्न है, इस कारण श्रुति भगवती परमात्मादेवको नारायण इस नामसे कथन

करती है ॥ ७ ॥ अथवा कल्पित तादात्म्य अध्यासरूप सम्बन्धसे मायारूप नारीकी स्थिति परमात्मादेवमेंही है, इस कारण श्रुति भगवती परमात्मादेवको नारायण इस नामसे कथन करती है ॥ ८ ॥ अथवा परमेश्वररूप नरकी सम्बन्धी जो यह लक्ष्मी है, इस लक्ष्मीका नाम नारी है, कैसी है सो लक्ष्मी सर्व देहधारी जीवोंको प्रिय है, तथा अनेक कलावोंसे युक्त है, तथा, अनेक रूपोंवाली है, तथा अत्यन्त मनोरम है, तथा पुण्यवान् पुरुषोंको सर्वदा सुख देनेहारी है, तथा पापी जीवोंको प्राप्त नहीं होती, कदाचित् प्राप्त हुई वो अपने नाशसे उन जीवोंको सर्वदा दुःखदायिनी है, ऐसी लक्ष्मीरूप नारी परमात्मादेवहीमें निश्चल स्थित होती है, इस कारण श्रुति भगवती इस परमात्मादेवको नारायण इस नामसे कथन करती है ॥ ९ ॥ अथवा इस आनन्दस्वरूपद्रष्टा आत्माके प्रति नानाप्रकारके पदार्थोंको दिखानेहारी जो यह सर्व जीवोंकी बुद्धि है, तिस बुद्धिका नाम नारी है, उस नारीरूप जड बुद्धिको यह स्वयंज्योति आत्मादेवही प्रकाश करता है कारण श्रुति भगवती इस स्वयंज्योति द्रष्टा आत्माको नारायण इस नामसे कथन करती है, ॥ १० ॥ अथवा जिस परमात्मादेवसे भिन्न किंचितमात्रभी वस्तु नहीं है, इस कारण श्रुति भगवती तिस परमात्मादेवको नारायण इस नामसे निरूपण करती है ॥ ११ ॥ इस प्रकार नारायण

शब्दके एकादश प्रकारका अर्थ शास्त्रवेत्ता पुरुष कथन करते हैं॥ यह नारायणदेवही स्वयंज्योतिरूप है, तथा अक्षररूप है तथा परमपदरूप है तथा सर्व विश्वसे परे है, तथा सर्वविश्वरूपहै, तथा सनातनहै॥ ऐसे नारायणरूप परमात्मादेवका जो अधिकारी पुरुष श्रद्धाभक्ति पूर्वक स्मरण तथा कीर्तन करते हैं तिन अधिकारी पुरुषोंके अविद्यादिक पंच क्लेशोंको तथा सर्वपापकर्मोंको यह परमात्मादेवही नाश करता है, इस कारण श्रुति भगवती तिस परमात्मादेवको "हरि" इस नामसे निरूपण करती हैं ॥ इति नारायण उपनिषदूसार (भाषा) समाप्त हुआ ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः । ॐ तत्सत् ॥

हरिः ॐ तत्सत् ।

आत्मप्रबोध उपनिषद्के भाष्यके अर्थसे आत्मसाक्षात्काररूप फलकी प्राप्तिवास्ते दो प्रकारके उपायका निरूपण गुरु तथा शिष्यसंवाद ।

इस आत्मप्रबोधनामा उपनिषदमें प्रथम आत्मसाक्षात्काररूप फलकी प्राप्तिवास्ते दो प्रकारके उपाय कथन करते हैं ॥ तहां प्रथम प्रणव मंत्ररूप उपाय है॥दूसरा अष्टाक्षर मंत्ररूप उपाय है तहां जिस अद्वितीय आनन्द स्वरूप आत्माका वाचक प्रणव मंत्र है, तिसी आनंदस्वरूप आत्माका वाचक अष्टाक्षर मंत्रभी है ॥ मंत्ररूप वाचकका तथा आत्मारूप वाच्यका श्रुतिने अभेदरूपसे ध्यान कथन किया है, इस कारण अधिकारी पुरुषोंको तिस वाच्यवाचकका अभेद ही चिन्तन

करना चाहिये ॥ अकार उकार मकार इन तीन वर्णोंका समुदाय रूप जो ॐकार है, तिस ॐकारका नाम प्रणव मंत्र है। और तिस प्रणवसहित जो "नमोनारायणाय" यह मंत्र है, तिसका नाम अष्टाक्षर मंत्र है ॥ यह दोनों मंत्र अधिकारी पुरुषोंको मनवांछित फलकी प्राप्ति करनेहारे हैं ॥ हे शिष्य! जो अधिकारी पुरुष इन दोनों मंत्रोंका जप करता है तथा जो अधिकारी पुरुष इन दोनों मंत्रोंके अकारादिक मात्राओंके साथ विश्वादिक पादोंका अभेद चिन्तनरूप उपासना करताहै, तिस अधिकारी पुरुषको संशय विपर्ययसे रहित ब्रह्मका निश्चय होताहै, तिसके अनन्तर तिस अद्वितीय ब्रह्मको अपना आत्मारूप जानकर सो अधिकारी पुरुष इस जन्ममरणरूप संसारबन्धनसे मुक्त होता है ॥ हे शिष्य! इन दोनों मंत्रोंका वाच्य अर्थ रूप जो ब्रह्म है, तिस ब्रह्मका जो वास्तव निर्गुण स्वरूप है तथा जो निर्गुण स्वरूप इस कार्यसहित अविद्याका ध्वंसरूप मोक्षका अधिष्ठान है, तथा अद्वितीय रूप है, ऐसे निर्गुण ब्रह्मको जबतक यह अधिकारी पुरुष अपना आत्मा रूप करके साक्षात्कार न कर सकै, तबतक यह अधिकारी पुरुष तिस ब्रह्मके सगुण रूपका ध्यान करै, तिस सगुण ब्रह्मके ध्यानके प्रभावसे इस अधिकारी पुरुषको सुखपूर्वक तिस निर्गुण ब्रह्मका साक्षात्कार होता है ॥ हे शिष्य! यद्यपि श्रुति, स्मृति आदिक शास्त्रोंमें तिस सगुण ब्रह्मका

स्वरूप ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, सूर्य इत्यादिक भेदसे अनेक प्रकारका वर्णन किया है, तथापि नारदादिक मुनियोंने अत्यन्त आदरपूर्वक जिस सगुण स्वरूपका कथन किया है, तिसको तू श्रवण कर। हे शिष्य! जैसे काष्ठरूप अरणि, अग्निको प्रगट करती है तैसे इस पृथिवीविषे (पर) सर्व ब्राह्मणोंकी रक्षा करनेवास्ते तथा तपादिक धर्मोंकी रक्षावास्ते जो परमात्मादेव ज्योति, देवकी वसुदेवसे अपनेको कृष्ण रूपसे प्रगट करता भया है; और जिस कृष्ण भगवानको अंगिरस गोत्रवाला घोरनामा ब्राह्मण सम्पूर्ण विद्या देता भया है, तथा जिस कृष्ण भगवानने अर्जुनके प्रति तथा यशोदा माताके प्रति अपना विश्वरूप दिखाया है, सो कृष्ण भगवानही सर्वसे श्रेष्ठ है॥ और सो कृष्ण भगवान अपने स्मरणमात्रसे इन जीवोंके सर्व पापकर्मोंको हरण करता है; इस कारणसे श्रुति भगवती तिस कृष्ण भगवानको हरि इस नामसे वाचन करती है॥ हे शिष्य! भारतादिक ग्रंथोंमें वेदव्यासनेभी इसी कृष्ण भगवान्का प्रभाववर्णन किया है तथा भागवत पुराणमें शुकदेव मुनिने कृष्ण भगवान्का प्रभाव वर्णन किया है तथा दूसरे पुराणों और आगमोंमें नारदादिक मुनियोंनेभी इसी कृष्ण भगवान्का प्रभाव वर्णन किया है, यातें यह कृष्ण भगवान् सर्वसे श्रेष्ठ है॥ अब ध्यान करनेवास्ते तिस कृष्ण भगवानका स्वरूप वर्णन करते हैं॥ हे

शिष्य ! सो कृष्ण भगवान् द्वारकापुरीमें तथा मथुरापुरीमें निवास करता है तथा गोपबालकका रूपसे सो कृष्ण भगवान् गोकुलादिक स्थानोंमें निवास करता है जिस कृष्ण भगवान्का स्वरूप जलयुक्त नीलमेघकी भांति श्यामवर्ण है, तथा नीलमणिके समान वर्णवाला अत्यन्त शोभायुक्त है तथा सो कृष्ण भगवान् कोटि सूर्य्यके प्रभाके समान प्रकाशमान है, और जिस कृष्ण भगवान्की दोनों भुजा जानुपर्य्यंत दीर्घ हैं, ग्रीवा शंखकी नाईं तीन रेखावाली है, हनु (हुट्टी) महान है, गंडस्थल ऊंचे हैं, नेत्र कर्णपर्यंत विस्तारवाले हैं, नासिका ऊंची और नोकीली है, ओष्ठ रक्तवर्णवाले हैं तथा मंद मंद हास्ययुक्त हैं, ललाट दोनों कपोल तथा दोनों कर्ण अत्यन्त शोभायमान हैं, केश अत्यन्त नीलवर्णवाले हैं और जिस कृष्ण भगवान्ने अपने नखदंतोंकी प्रभासे चन्द्रमाकी प्रभाकोभी जीतलिया है, जिस कृष्ण भगवान्का वक्षस्थल विशाल तथा ऊंचा है, और भृगुब्राह्मणके पादचिह्नसे सुशोभित है और जिस कृष्ण भगवानके दोनों हस्त, दोनों पाद मंडलाकार (गोल) तथा ऊंचे हैं, ऐसे हस्तपादरूप कमलोंसे शोभायमान हैं, तथा गुल्फ, जानु, अंस (कंधा) इत्यादिक स्थान अत्यन्त पुष्ट हैं, उदर कृश है, हस्तपादादिक अंग पुष्ट हैं तात्पर्य यह है कि, कृष्ण भगवानके सर्व अंगोंकी रचना वज्रके समान सघन है, तथा जो कृष्णभगवान षोडश वर्षकी अवस्थावाला

है ॥ जैसे वृक्षशाखावोंसे शोभायमान होते हैं, तैसे दो हस्तों तथा दो पादोंमें स्थित जो वर्तुलाकार तथा दीर्घ अंगुली हैं तिन अंगुलियोंसे कृष्ण भगवान शोभायमान हैं, तथा चार भुजावोंसे शोभायमान है तथा सो कृष्ण भगवान रेशमके पीताम्बरको धारण किये हैं तथा कटिमें कांची भूषणके घंटिकावोंको जिनका मधुर स्वर है धारण किये हैं, तथा अनेक प्रकारके रत्नोंसे जडित कंकण हस्तोंमें तथा अनेक प्रकारके रत्नोंसे जडित अंगद (बिजायट या पहुंची) भुजावोंमें पहिने हैं तथा अनेक रत्नोंसे जडित नूपुर पादोंमें तथा अनेक प्रकारके रत्नोंसे जडित जो अंगुलीभूषण हैं सो भूषण जिस कृष्ण भगवानके हस्तपादकी अंगुलियोंमें विराजमान हैं तथा ग्रीवामें स्थित भूषणसहित कौस्तुभमणिको जिस कृष्ण भगवानने कंठमें धारण किया है और मुक्तामणिके हारको तथा पत्रपुष्पमय वनमालाको जिस कृष्ण भगवानने वक्षस्थलमें धारण किया है, कर्णोंमें मकराकार कुंडलीको धारण किया है और मयूरके पक्षोंयुक्त सुवर्ण रत्नमय मुकुट अपने मस्तकपर धारण किया है, ललाटमें केसरका तिलक, मूर्द्धामें अनेक प्रकारके रत्नोंसे जडित तथा अनेक प्रकारके पुष्पोंसे युक्त सुवर्णमय विचित्र रक्षा जिस भगवानने धारण किया है, जिसमे केशको बांधते हैं उसको रक्षा कहते हैं । जो कृष्ण भगवान तीनों लोककी स्त्रियोंके मनको तथा नेत्रोंको आनंदकी प्राप्ति करने हारा है

और अपने चार हस्तोंमें प्रदक्षिणा क्रमसे शंख, गदा, पद्म,चक्र धारण करता है, तहां दक्षिण भागके निचले हस्तमें शंख ऊपरले गदा और वामभागके ऊपरले हस्तमें पद्म और नीचले हस्तमें चक्रको धारण किया है और जो कृष्ण भगवान गौवों, पृथिवी तथा ब्राह्मणोंकी पीडाको नाश करनेहारा है और दैत्योंकी भांति यज्ञादिक धर्मों तथा देवतावोंसे द्रोह करनेहारे जो अधर्मी राजा हैं तिनको जो कृष्ण भगवान् सर्वदा दुःखको प्राप्त करता है और जब जब धर्मका लोप होता है तथा अधर्म की वृद्धि होती है । तब तब इस पृथिवीपर यह देवकीका पुत्र कृष्ण भगवान धर्मात्मा पुरुषोंकी रक्षा तथा दुःष्ट जनोंके नाश करनेवास्ते अवतारको धारण करता है, यह वार्ता गीतामें श्रीकृष्ण भगवानने स्वयं कथन की है ॥ श्लोक ॥ परित्राणाय साधूनां, विनाशाय च दुष्कृताम्; धर्मसंस्थापनार्थाय, संभवामि युगेयुगे॥ अर्थ ॥ धर्मात्मा पुरुषोंकी रक्षा तथा पापात्मा जीवोंके नाश करनेवास्ते मैं कृष्ण भगवान युगयुगमें अवतारको धारण करता हूँ ॥ १ ॥ यह कृष्ण भगवानही साक्षात् नारायणरूप है। तथा सर्वदेवतावोंका आत्मारूप है सो प्रणव मंत्र तथा अष्टाक्षर मंत्रभी इस कृष्ण भगवानके स्वरूपकोही प्रतिपादन करते हैं, यातें यह कृष्ण भगवान् सर्वसगुण रूपोंसे श्रेष्ठ है ॥ हे शिष्य ! इस अधिकारी पुरुषको जबतक तिस निर्गुण ब्रह्मका साक्षात्कार न हो, तबतक पूर्वोक्त वस्त्र भूषणादिकों सहित तिस कृष्ण भगवानका ध्यान करै

हे शिष्य ! हृदयकमलमें स्थित, तथा सूर्यमंडलमें स्थित, तथा गोकुलादिक स्थानोंमें स्थित, तथा पूर्वउक्त लीलादिक गुणोंसे युक्त जो कृष्ण भगवानहै सो कृष्ण भगवान् जब इस अधिकारी पुरुषके चित्तमें प्रयत्नसे विनाही सर्वदा प्रतीति होवै, तब जैसे दीपक घरादिक पदार्थोंके प्रकाशका हेतु होता है, तैसे सो कृष्ण भगवानभी अपने निर्गुण स्वरूपके-साक्षात्कारमें हेतु (कारण) होता है ॥ हे शिष्य ! यह अधिकारी पुरुष तिस कृष्ण भगवानके ध्यानसे शुद्ध अन्तःकरण वाला होकर जिस निर्गुण ब्रह्मको अपने आत्मारूपसे साक्षात्कार करता है, सो निर्गुण ब्रह्म कैसा है, सर्व भूतोंके अन्तर स्थित है, तथा सर्व जगतका कारण है, तथा उत्पत्ति, नाश, शोक मोहादिकोंसे रहित है, ऐसे ब्रह्मको अपना आत्मा जानकर यह विद्वान पुरुषभी तिसी प्रकारका होजाता है, इस कारण श्रीकृष्ण भगवानका ध्यान करने हारा योगी पुरुष पुनः संसारके दुःखोंको नहीं प्राप्त होता है, यह श्रुतिमें वर्णित वचन यथार्थही है, आत्मप्रबोध उपनिषदसार समाप्त हुआ ॐ शान्तिः शांतिः शांतिः ॥

ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः ।

जाबालउपनिषदके भाष्यके अर्थसे गुरु शिष्य संवाद अथ अव्यक्त परमहंस संन्यासनिरूपण।

हे शिष्य ! संवर्तक १ उद्दालक २ श्वेतकेतु ३ दुर्वासा ४ ऋभु ५ निदाघ ६ जडभरत ७ दत्तात्रेय ८ रैवत ९ भारद्वाज

१० इन दशसे आदि लेकर दूसरेभी शुक वामदेवादिक अनेक ब्राह्मण परमहंस सन्यासको धारण करते भये । ते सम्पूर्ण परमहंस संन्यासी "मैं ब्रह्मरूप हूँ" इस प्रकारके आत्म-साक्षात्कार करके सर्व बन्धनोंसे रहित होते भये ॥ हे शिष्य ! ते संवर्तकादिक संन्यासी नियम करके मुण्डितभी नहीं हुए तथा निर्ममसे जटाधारीभी नहीं हुए नियमसे एक दण्ड अथवा तीन दण्डको भी नहीं धारण किये तथा नियमसे श्वेत और रक्त वस्त्रोंकोभी नहीं धारण किये। हे शिष्य । तिन ब्रह्मवेत्ता संन्यासियोंका जैसा चिह्न अव्यक्त (गुप्त) था तैसा तिनका आचारभी अव्यक्तही था। ते अव्यक्त आचारवाले महात्मा पुरुष इस प्रकार लोकमें विचरते हैं। तिन महात्मा पुरुषों की मति तथा आकृति तथा चिह्नभी अव्यक्तही होता है। कभी तो ऐसे महात्मा पुरुष सर्व पदार्थोंकी इच्छासे रहित होते हैं । कभी आसक्त पुरुषकी नांई सर्व पदार्थोंकी इच्छा करते हुए प्रतीत होते हैं। कभी सर्वज्ञ पुरुषकी नांई सर्व अर्थके ज्ञाता प्रतीत होते हैं कभी अज्ञानी पुरुषकी नांई अज्ञाता प्रतीत होते हैं ॥ कभी शास्त्रवेत्ता पुरुषकी नांई पंडित प्रतीत होते हैं ! कभी शास्त्र रहित पुरुषकी नांई मूढ प्रतीत होते हैं। कभी ते महात्मा पुरुष वाचाल पुरुषकी नांई नानाप्रकारके शब्दोंको करते हुए देख पडते हैं। कभी मूवा पुरुषकी नांई मौनको धारण किये

देख पडते हैं । कभी ते महात्मा पुरुष बुद्धिमान पुरुषकी नांई नानाप्रकारकी चेष्टा करते हुए प्रतीत होते हैं । कभी जड पुरुषकी नांई सर्व चेष्टासे रहित देख पडते हैं । कभी ते महात्मा पुरुष रागमें अन्ध पामर पुरुषकी नांई अत्यन्त रागवान देख पडते हैं, कभी विरक्त पुरुषकी नांई सर्व रागसे रहित देख पडते हैं । कभी श्रेष्ठ पुरुषोंकी नांई शास्त्रविहित आचारको करते हैं, कभी अश्रेष्ठ पुरुषोंकी नांई शास्त्रनिषिद्ध आचारको करते हैं ॥ इस प्रकारसे परमहंस संन्यासी अव्यक्त चिह्न तथा अव्यक्त आचारको धारण करके इस लोकमें विचरते हैं । ऐसे परमहंस संन्यासियोंकी श्रेष्ठतादिको कोई पुरुष नहीं जान सकता है । यह वार्ता स्मृतिमेंभी कथन किया है ॥ तहां श्लोक ॥ यं न सन्तं नचाऽसन्तं, नाश्रुतं न बहु श्रुतम् । न सुवृत्तं न दुर्वृत्तं वेद कश्चित्सब्राह्मणः ॥ १ ॥ अर्थ यह ॥ इस लोकमें जिस विद्वान पुरुषको श्रेष्ठ, अश्रेष्ठ मूर्ख, पंडित, शास्त्र विहित आचार शास्त्रनिषिद्ध आचार इत्यादिक रूपोंसे कोई भी मनुष्य नहीं जान सकता है, सो विद्वान पुरुषही ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण है ॥१॥ हे शिष्य ! ते ब्रह्मवेत्ता संन्यासी कभी नग्न रहते कभी उत्तम वस्त्रोंको धारण करते, कभी विष्ठा मूत्रसे लिप्त रहते, कभी चन्दनादि सुगन्धसे लिप्त रहते । कभी हंसते, कभी रुदन करते, कभी शीघ्र चलते, कभी पिशाचोंकी भांति अपने अंगों-

को पीटते, कभी बालकोंके साथ नानाप्रकारके क्रीड़ा करते, कभी दुष्टोंके मारने और बांधनेसे परम आनन्दको प्राप्त होते हैं और मेघोंकी भांति गर्जते हैं । तहां श्रुति ॥ सुहृदः साधुकृत्यां, द्विषन्तः पापकृत्यां ॥ अर्थ ॥ ब्रह्मवेत्ता संन्यासीके पुण्य कर्म सेवक भक्तजन ले जाते हैं और पापकर्म द्वेष करनेवाले दुष्टजन ले जाते हैं । अतः ब्रह्मवेत्ता पुरुष दुःष्टजनोंपरभी प्रसन्नही रहते हैं ॥ जिस अभिप्रायसे महात्मा पुरुष इस प्रकार का आचरण धारण करते हैं सो यह हैं ॥ तहां श्लोक ॥ अभिमानं सुरापानं गौरवं घोररौरवम् । प्रतिष्ठा शूकरी विष्टा त्रीणि त्यक्त्वा सुखी भवेत् ॥ १ ॥ अर्थ ॥ अभिमान सुरापानके समान, गौरव (ऐश्वर्य) घोर रौरव नरक समान, प्रतिष्ठालोकमें सूकरीके विष्टाके समान जानकर तिन तीनों को विद्वान पुरुष परित्याग करके सुखको प्राप्त होता है ॥ १ ॥ महात्मा पुरुषोंकी प्रतिष्ठा संसारमें अवश्य होती है, अतः लोगोंके आनेजानेसे चित्त बहिर्मुख होता है, तिस बहिर्मुख चित्तमें जीवनमुक्तिका सुख नहीं होता, अतः उक्त प्रकारका आचरण ऊपरसे धारण करते हैं, परन्तु अंतःकरणसे ब्रह्मवेत्ता पुरुष सर्व विकारोंसे रहितही रहते हैं ॥ महात्मा पुरुषोंके अभिप्रायको न जानकर जो अज्ञानी पुरुष तिनके ऊपरले आचरणको ग्रहण करके इस लोकमें विचरते हैं वह नरकको प्राप्त होते हैं ॥ इति ॥

ब्रह्मवेत्ता पुरुषोंकी सहजसमाधि तथा उनके अर्थ शास्त्रके विधिनिषेधका अभाव निरूपण ।

हे शिष्य ! ब्रह्मवेत्ता पुरुष जिस कालमें पद्मादिक आसन बांधकर स्थित होता है, तथा जिस काल अपने हस्तपादादिक अंगोंको पसारता है, जिसकाल आसनसे उठता है, जिस काल भोजन करता है, जिस काल जलपान करता है, जिस काल पृथिवीपर विचरता है, तथा जिस काल शयन करता है; तिन सम्पूर्ण कालोंमें वह ब्रह्मवेत्ता पुरुष समाधियुक्तही रहता है हे शिष्य ! यह वार्ता पूर्वके वृद्ध पुरुषोंनेभी कथन किया है ॥ तहां श्लोक ॥ देहाभिमाने गलिते, विज्ञाते परमात्मनि । यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र समाधयः ॥ अर्थ ॥ मैं अद्वितीय ब्रह्मरूपहूँ, इस प्रकार आत्मसाक्षात्कारके प्राप्त हुए जब इस विद्वान् पुरुषका देहाभिमान निवृत्त होता है तब इस विद्वान् पुरुषका मन जिस जिस पदार्थमें जाता है, वहां वहां समाधियांही होती हैं ॥ तात्पर्य यह है कि तिस विद्वान पुरुषका मन सर्व पदार्थोंमें नामरूपअंशका बाध करके अस्ति, भाति, प्रिय, रूप द्वितीय ब्रह्मकोही देखता है ॥ १ ॥ हे शिष्य ! जैसे पांच वर्ष पर्यन्त बालकके ऊपर शास्त्रका विधि निषेध नहीं होता, तैसे तिन ब्रह्मवेत्ता पुरुषोंके ऊपरभी शास्त्रका विधि निषेध नहीं होता, क्योंकि जिन पुरुषोंमें भेद अवरूप अविद्या रहती है, तिन पुरुषोंके ऊपरही शास्त्रका

विधि निषेध होता है। सो भेद दर्शनरूप अविद्या तिन ब्रह्मवेत्ता पुरुषोंमें है नहीं। यातें तिन ब्रह्मवेत्ता विद्वान पुरुषोंके ऊपर शास्त्रका विधि निषेध सम्भवै नहीं ॥ हे शिष्य! ब्रह्मवेत्ता पुरुष अपने शरीर तथा दूसरे जीवोंके शरीरोंमें किंचित भेद देखता नहीं, वरन सर्वको समानही देखता है ॥ हे शिष्य! जैसे यह ब्रह्मवेत्ता पुरुष अपने शरीरके पूजनादिसे हर्षित नहीं होता, तैसे अपने शरीरके छेदन, भेदन, बन्धन, ताडन तथा निरादरमें किंचित मात्रभी खेदको नहीं प्राप्त होता, हे शिष्य! अपने शरीर तथा भक्त जनोंके शरीर तथा दुष्ट जनोंके शरीरमें एक आत्माकोही अनुगत जानता है, इस कारण उभेददर्शी ब्रह्मवेत्ता पुरुषका न कोई मित्र है न कोई शत्रु है तथा न कोई उदासीन है, तथा न कोई पदार्थ अपना पराया है, ऐसा ब्रह्मवेत्ता पुरुष सर्वत्र ब्रह्म दर्शन करके आनन्दमें सदैव मग्न रहता है ॥ इति ॥ जाबालउपनिषदसार (भाषा) समाप्त हुआ ॥ ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ॥

ॐ श्रीपरमात्मने नमः।

हंसोपनिषदके भाष्यके अर्थसे योगाभ्या-सकी सिद्धिवास्ते षटचक्रोंका निरूपण।

इस शरीरमें पायु (गुदा) स्थानसे लेकर भ्रूमध्यस्थान-पर्यन्त, आधार चक्र १ स्वाधिष्ठान चक्र २ मणिपूरक चक्र ३ अनाहत चक्र ४ विशुद्ध चक्र ५ आज्ञा चक्र ६ यह षट

चक्र रहते हैं उनके स्थान यह हैं:-पायुस्थानसे दो अंगुल ऊपर आधार चक्र रहता है जिसके चार दल हैं तथा ला-क्षारसके समान वर्ण (रंग) है, तिन चार दलोंमें प्रदक्षिणा क्रमसे स्थित जो व शं षं सं यह चार अक्षर हैं, तिन चार अक्षरोंसे शोभायमान है, तथा कुंडलिनीरूपी सर्पिणीके पुच्छसे युक्त है, तथा मूषक है वाहन जिसका ऐसा जो गणपति देवता है तिस गणपति देवतासे युक्त है॥ १॥ आधार चक्रसे ऊपर उपस्थ (लिंग)मूल देशमें स्वाधिष्ठान चक्र रहताहै जो पट् दलवाला तथा सुवर्णकी नांई पीतवर्णवाला है, तथा अत्यन्त तेजस्वी है तिसके पट दलोंमें प्रदक्षिणाक्रमसे जो यं रं लं वं भं मं यह पट अक्षर हैं, तिन पट् अक्षरोंसे शोभायमान है, तथा प्रजापति-देवतासे युक्त है ॥ २ ॥ तिस स्वाधिष्ठान चक्रके ऊपर नाभि स्थानमें मणिपूरक चक्र है, जो दश दलोंवाला तथा इन्द्र-नील मणिके समान वर्णवाला है, तथा सूर्य चन्द्रके तेज समान जिसका तेज है, तिन दश दलोंमें प्रदक्षिणा क्रमसे स्थित जो डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं यह दश अक्षर हैं, तिन दश अक्षरोंसे शोभायमान है तथा विष्णु देवतासे युक्त है ॥ ३ ॥ तिस मणिपूरक चक्रके ऊपर हृदयदेशमें अनाहत चक्र है जो गौके क्षीरसमान श्वेत वर्ण वाला है तथा द्वादश दलोंवाला है तथा मननेत्रोंको आनन्द प्राप्त करनेहारा है, तिन द्वादश दलोंमें प्रदक्षिणा क्रमसे स्थित जो कं खं गं घं ङं चं छं जं

झं ञं टं ठं यह द्वादश अक्षर हैं, तिन द्वादश अक्षरोंसे शोभायमान है, तथा रुद्र देवतासे युक्त है ॥ ४ ॥ तिस अनाहत चक्रके ऊपर कंठ देशमें विशुद्ध चक्र है, जो विचित्रवर्णवाला है, तथा षोडश दलोंवाला है और तिन षोडश दलोंमें प्रदक्षिणक्रमसे स्थित जो अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः यह षोडश स्वर हैं, तिन षोडश स्वरोंसे शोभायमान है तथा जीवात्माके रहनेका स्थान है ॥ ५ ॥ तिस विशुद्ध चक्रसे ऊपर दोनों भ्रूके मध्यमें आज्ञा चक्र है जो यत्किंचित रक्तवर्ण वाला है, तथा दो दलोंवाला है और सूर्य चन्द्रमाके समान जो हं क्षं यह दो अक्षर हैं सो दोनों अक्षर जिसके दोनों दलोंमें स्थित हैं तथा परमात्मादेवके रहनेका स्थान है ॥ ६ ॥ इस शरीरके मस्तकमें एक सहस्र दलों वाला पद्म रहता है, कैसा है सो पद्म, अमृतकी वर्षा करनेहारा जो चन्द्रमा है, सो चन्द्रमा जिस पद्मके गर्भमें रहता है, तथा तिस पद्मकी कर्णिका दशमद्वारको प्राप्त भई हैं, तथा तिस पद्मके अमृतसे की हुई तृप्ति तिन षट चक्रोंमें रहती है, तथा यह जीवात्मा तिस पद्मका हंस है ॥ अब तिस जीवात्मामें हंसरूपताका निरूपण करतेहैं॥ इसलोकमें जो पक्षी जिस प्रकारके शब्दको उच्चारण करता है, तिस पक्षीका तिस शब्दके अनुसारही नाम होता है, जैसे काका इस प्रकारके शब्दको उच्चारण करनेहारा जो पक्षी है तिस पक्षीको काक इस

नामसे कथन करते हैं, तैसे यह जीवात्माभी हृदयकमलमें तथा आधार चक्रादिकोंमें प्राणसहित होकर रात्रिदिनमें एकविंशतिसहस्र षट् शत २१६०० श्वास प्रश्वासोंसे हं सः इस मंत्रका उच्चारण करता है ॥ तहां हकार करके तो यह प्राणवायु मुख नासिकाद्वारा इस शरीरसे बाहर जाता है, और सकार करके यह प्राणवायु तिसी मुखनासिकाद्वारा पुनः तिस शरीरमें प्रवेश करता है, इस प्रकार प्राणोंके श्वास प्रश्वाससे यह जीवात्मा सर्वदा हंस मंत्रका उच्चारण करता है ॥ इस कारणसे श्रुति भगवती इस जीवात्माको हंस इस नामसे कथन करती है ॥ अब ध्यान करनेवास्ते तिस जीवरूप हंसको पक्षीरूपसे वर्णन करते हैं ॥ इस लोकमें पक्षीविशेषको हंस कहते हैं, यातें इस जीवात्मामें तिस हं शब्दको अर्थवाला करनेवास्ते सो वेदवेत्ता पुरुष इस जीवात्माको पक्षीरूपसे वर्णन करते हैं ॥ तहां भोक्तारूप अग्नि तथा भोग्यरूप साम यह दोनों तिस जीवरूप हंसके दोनों पक्ष हैं; और ॐकार प्रणव मंत्र तिस जीवरूप हंसका शिरहै और मूलशक्तिका जो क्रियाशक्तिवाला परिणाम विशेष है, सो परिणामरूप बिन्दु तिस जीवरूप हंसका हृदय है, और महादेवका मुख सूर्य, अग्नि, सोमरूप तीन नेत्रोंवाला है, वैसे तिस जीवरूप हंसका मुखभी सूर्य, अग्नि सोम इन तीन नेत्रोंवाला है, और तिस जीवरूप हंसका एक चरण तो रुद्ररूप है और दूसरा चरण रुद्राणी रूप है, और यह त्वंपद-

का अर्थ जीवरूप हंसही तत्पदार्थ परब्रह्मरूप है ॥ तहां निरुपाधिक दृष्टि करके तो सो जीवरूप हंस निर्गुण ब्रह्मरूप है, और सोपाधिक दृष्टि करके सगुण ब्रह्मरूप है, और सो सगुण ब्रह्मभी वाम भागमें तो अग्निरूप है, और दक्षिण भागमें सोम-रूप है, । पुनः कैसा है सो जीवरूप हंस, कोटि सूर्यके समान तेजवाला है, तथा नखसे लेकर शिखापर्यन्त. इस सर्व शरीरमें व्याप करके रहता है ॥ यह जीवरूप हंस यद्यपि सर्व शरीरमें रहता है, तथापि हृदयकमलमें विशेष करके रहता है. तिस हृदयकमलमेंभी अष्ट दलोंके भेदसे तिस जीवरूप हंसकी अष्ट प्रकारकी स्थिति होती है । तिस अष्टप्रकारकी स्थितिके प्रभा-वसेही जाग्रत स्वप्नमें पुण्यबुद्धि आदिक कार्योंकी उत्पत्ति होती है ॥ अब इसी अर्थको स्पष्ट करके निरूपण करतेहैं ॥ पूर्वादिक अष्ट दिशाओंकी और तिस हृदयकमलके यथाक्रमसे अष्ट दल रहते हैं ॥ यथा ॥

अष्टदल हृदयकमलके प्रत्येक दलपर जीवके स्थित होनेका फल निरूपण ।

जब मन युक्त जीवरूप हंस हृदयकमलके पूर्व दलपर स्थित होता है, तो पुण्य करनेकी बुद्धि उत्पन्न होती है ॥ जब अग्नि कोणके दलपर स्थित होता है, तब निद्रा, आलस्यादि विकार उत्पन्न होते हैं ॥ दक्षिण दलपर स्थित होनेसे क्रोधा-दिक विकार उत्पन्न होते हैं नैर्ऋत कोणके दलपर स्थित होनेसे

पापकर्म करनेकी बुद्धि उत्पन्न होती है ॥ पश्चिम दलपर स्थित होनेसे नानाप्रकारके व्यवहार करनेकी प्रीति उत्पन्न होती है ॥ वायु कोणके दलपर स्थित होनेसे किसी देशके गमनकी प्रीति उत्पन्न होती है ॥ उत्तर दलपर स्थित होनेसे स्त्रीसंभोग-की इच्छा उत्पन्न होती है ॥ ईशान कोणके दलपर स्थित होनेसे दान करनेकी प्रीति उत्पन्न होती है ॥ जब अष्ट दलोंके मध्यदेशमें जीवरूप हंस स्थित होता है, तो लोकप्रसिद्ध हंस पक्षी जैसे मिले हुए क्षीरजलको भिन्न भिन्न करता है, तैसे जीवरूप हंसभी सत्य असत्य वस्तुका विचार करके सर्व विषयों-से वैराग्यको प्राप्त होता है ॥ जब जीव हृदयकमलके केसर-विषे स्थित होता है, तब यह जीव जाग्रत् अवस्थाको प्राप्त होता है ॥ जब हृदयकमलकी कर्णिकामें स्थित होता है, तो स्वप्न अवस्थाको प्राप्त होता है ॥ हृदयकमलकी कर्णिका-के मध्यमें रक्तवर्णवाला जो रुधिरका पिंड विशेष है, तिस-विषे जब जीव स्थित होता है, तब सुषुप्ति अवस्थाकी प्राप्ति होती है ॥ सो जीवरूप हंस, मैं ब्रह्मस्वरूप हूँ, इस प्रकारकी पूर्ण दृष्टिको करके जब तिस परिछिन्न हृदय कमलके अभिमानका परित्याग करता है, तब जाग्रत् स्वप्न, सुषुप्तिके परे जो तुरीया अवस्था है, उसको प्राप्त होता है ॥ इस तुरीय अवस्थाको प्राप्त हुआ योगी (ज्ञाता) आत्मारूप ज्ञेय वस्तु-को अपनेसे भिन्न देखता है, क्योंकि सो योगी अपने योगा-

भ्यासके बलसे संप्रज्ञात तथा असंप्रज्ञात समाधिको प्राप्त होता है ॥ ज्ञाता. ज्ञान, ज्ञेय, ध्याता, ध्यान, ध्येय, इस प्रकारकी त्रिपुटी प्रतीति होवे तो तिसको संप्रज्ञात समाधि और जिसमें त्रिपुटी प्रतीति न होवै तो उसको असंप्रज्ञात समाधि कहते हैं। त्रिपुटीके भानपूर्वक ब्रह्माकार वृत्तिको तुरीय अवस्था कहते हैं। जब सो त्रिपुटी अद्वितीय ब्रह्मरूप नादमें लीन होती है, तो उसको तुरीयातीत अवस्था कहते हैं ॥ तात्पर्य यह है कि ॐकारमें, अकार. उकार, मकार, बिन्दु नाद, यह पांच अवयव होते हैं, अकार, उकार, मकार, यथाक्रम से विश्व, तैजस, प्राज्ञ इन तीनोंके वाचक हैं। अर्द्धमात्रा रूप जो बिन्दु नाद है सो बिन्दु, नाद, दोनों ब्रह्मके वाचक हैं। बिन्दु सविशेष ब्रह्मका और नाद निर्विशेष ब्रह्मका वाचक है। ऐसी तुरीयातीत अवस्था सहस्रों विरक्तोंमें किसी एक विरक्तको प्राप्त होती है, इस कारण अत्यन्त दुर्लभ है यह वार्ता गीतामेंभी श्रीकृष्ण भगवानने कथन करी है ॥ श्लोक ॥ मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ॥ यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ॥ अर्थ ॥ अनेक सहस्रमनुष्योंमें कोई एक मनुष्यही मेरी प्राप्तिवास्ते यत्न करता है, और तिन यत्न करने वाले मनुष्योंमेंभी कोई एक मनुष्य मुझ अद्वितीय ब्रह्मको वास्तवस्वरूपसे जानता है ॥ १ ॥

तुरीयातीत भावकी प्राप्तिवास्ते योगरूप उपायका निरूपण ॥

योगी पुरुष पूर्व उक्तरीतिसे इस शरीरमें तिन षट् चक्रों सहित तिस जीवरूप हंसके स्वरूपको जानकर प्रथम अपने स्वरूपका चिन्तन करै, तिसके अनन्तर तिस अद्वितीय ब्रह्मरूप नादका चिन्तन करै ॥ तहां आधार चक्रसे लेकर दशम द्वारपर्यन्त व्यापक रूपसे तथा अत्यन्त श्वेतरूपसे तिस अद्वितीय ब्रह्मका चिन्तन करै, इस प्रकार तिस अद्वितीय ब्रह्ममें मनको एकाग्र करके सो योगी पुरुष अपने पायु, उपस्थ इन दोनों द्वारोंको संकोच करै, तिसके अनन्तर सो योगी पुरुष अपने पादके अंगुष्ठके अग्रभागसे लेकर प्राणवायुको ऊपर आकर्षण करके प्रथम आधारचक्रमें स्थापन करै, तिस आधार चक्रसे अनन्तर सो योगी तिस प्राणवायुको शनैः शनैः करके स्वाधिष्ठान चक्रमें स्थापन करै, तिस स्वाधिष्ठान चक्रके चारों ओरसे तिस प्राणवायुकी तीन प्रदक्षिणा करावै, तिस स्वाधिष्ठान चक्रके अनन्तर सो योगी पुरुष तिस प्राणवायुको मणिपूरक चक्रमें स्थापन करै, तिस मणिपूरक चक्रके अनन्तर सो योगी पुरुष तिस प्राणवायुको अनाहत चक्रमें स्थापन करै। तिस अनाहत चक्रके अनन्तर सो योगी पुरुष तिस प्राणवायुको विशुद्ध चक्रमें स्थापन करै, । तिस विशुद्ध चक्रके अनन्तर सो योगी पुरुष तिस प्राणवायुको

आज्ञा चक्रमें स्थापन करैं, तिस आज्ञा चक्रके अनन्तर सो योगी पुरुष तिस प्राणवायुको दशम द्वारमें स्थापन करै॥ इस प्रकार सो योगी पुरुष जब योगाभ्यासके बलसे तिस प्राणवायुको ऊपर लेजाता है, तथा जीवरूप हंसको ध्याता-रूप करके चिन्तन करता है, तथा ब्रह्मरूप नादको ध्येय रूपसे चिन्तन करता है, तथा ऋषि छंद देवता आदिकोंसे युक्त जो हंस मंत्र है, तिस हंस मंत्रका जब एक कोटि संख्या परिमाण जप करता है, तब तिस योगी पुरुषके शरीरके अन्तरयोग फलकी सिद्धिविषे विश्वास करावनेहारे, चिणिनाद १ चिणिचिणिनाद २ घंटानाद ३ शंखनाद ४ तंत्री नाद ५ तालनाद ६ वेणुनाद ७ भेरीनाद ८ मृदंगनाद ९ मेघनाद १० यह दश प्रकारके नाद उत्पन्न होते हैं॥ तिन दश प्रकारके नादोंमें भी जो दशवाँ मेघनाद है, सो मेघनाद वारंवार अभ्यास किया हुआ तिन योगी पुरुषोंको वैराग्य ज्ञानादिकोंकी प्राप्ति करता है, इस कारणसे यह योगी पुरुष तिन नव नादोंका परित्याग करके तिस मेघनादकाही निरन्तर अभ्यास करै, तिस मेघनादके अभ्यास करनेसे तिन योगी पुरुषोंका मन लयभावको प्राप्त होता है, और तिस मनके लय हुएके अन्तर पुण्य, पाप, संकल्प, विकल्प इनसे आदि लेकर जितने कि मनके धर्म हैं. सो सम्पूर्ण धर्म लय-भावको प्राप्त होते हैं॥ तहां यह वस्तु हमको प्राप्त हो, इस

प्रकारकी अभिलाषाका नाम संकल्प है ॥ और संशयका नाम विकल्प है ॥ सो संकल्पविकल्पादिक विक्षेपही आत्माकी अप्रतीतिमें कारण थे सो संकल्प विकल्पादिक विक्षेप जब लयभावको प्राप्त होते हैं, तब यह आनन्दस्वरूप आत्मा अपने स्वप्रकाश चैतन्यरूपसे सर्वदा तिन योगी पुरुषोंको प्रत्यक्ष होता है ॥ इति हंसउपनिषद्में वर्णित संक्षेप योगनिरूपण समाप्त हुआ ॥ ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ॥

ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः

अमृतनाद उपनिषदके भाष्यके अर्थसे प्राणायाम १ प्रत्याहार २ तर्क ३ धारणा ४ ध्यान ५ समाधि ६ योगके षट् अन्तरंग साधनोंका निरूपण ।

गुरुशिष्य संवाद ।

हे शिष्य! शीत, आतप, वायु इत्यादिक उपद्रवोंसे रहित, मन, नेत्रोंको आनन्दकारी ऐसे एकान्तदेशमें समानभूमिपर अधिकारी पुरुष प्रथम दर्भोंको बिछावे, उसके ऊपर मृगचर्म अथवा व्याघ्रचर्म बिछावे, मृगचर्मपर कोमलवस्त्र बिछावे । ऐसे आसनपर उत्तरमुख स्वस्तिकादिक तीन आसनोंमेंसे किसी एक आसनसे सुखपूर्वक स्थित होकर अपने शरीरके मध्यदेश तथा ग्रीवा तथा शिरको दण्डकी नांई सीधा रखकर अपने नासिकाग्र भागपर दृष्टि रक्खै किसी दूसरी ओर

न देखै । अहिंसा १ सत्य २ अस्तेय ३ ब्रह्मचर्य ४ अपरि-ग्रह ५ इन पांच यमों तथा शौच १ सन्तोप २ तप ३ स्वा-ध्याय ४ ईश्वरप्रणिधान ५ इन पांच नियमोंको सदैव सेवन करता रहै । ऐसे प्राणायामरूप योगमें अनेक प्रकारके विघ्न होते हैं, तिनकी निवृत्तिके निमित्त पूर्वोक्त आसनपर स्थित होकर प्रथम चित्तकी एकाग्रतापूर्वक रुद्र भगवानका ध्यान करै तिस ध्यानका स्वरूप पृष्ठ १३९ में वर्णित है । तदन-न्तर पूरक कुम्भक, रेचक, इन तीन प्राणायामोंमेंसे यथाक्रम प्रत्येक प्राणायाममें यह अधिकारी पुरुष प्रणवसहित सप्त-व्याहृतियांयुक्त तथा शिरयुक्त गायत्रीमंत्रको तीन बार उ-च्चारण करै और संन्यासी तिस गायत्रीमंत्रके तीन बार उच्चारण करनेसे जितने अक्षर होते हैं, तितनेही प्रणवों-का उच्चारण करै इस प्रकार गायत्रीमंत्रसे तथा प्रणवमंत्र-से किया हुआ सो प्राणायाम इस पुरुषके सर्व दोषोंकी नि-वृत्ति करता है ॥ अब पूरक, कुम्भक, रेचक, इन तीनोंका स्वरूप निरूपण करते हैं हे शिष्य ! जैसे कमलकी नाल द्वारा मुखसे जल खींचते हैं । तैसे शरीरसे बाहर स्थित वायुको नासिकाद्वारा शरीरके भीतर खींचना, इसका नाम पूरक है जैसे तप्त पाषाणके ऊपर पड़ा हुआ जलका विन्दु लयभावको प्राप्त होता है, तैसे तिस प्राणवायुके बाहर गति को तथा अन्तर गतिको निरोध करके शरीरके भीतरही

लय करना, इसका नाम कुम्भक है ॥ अपने प्राणवायुकी आधार चक्र (आधार चक्र चतुर्दल, वायुस्थानसे दो अंगुल ऊपर स्थित है) से कुंडलनी मार्गद्वारा ऊपर ले जाकर तिस प्राणवायुको नासिकाद्वारा निकाल कर शरीरके बाह्य आकाशमें लय करै, इसका नाम रेचक है ॥ १ ॥ अब प्रत्याहारका निरूपण करते हैं ॥ हे शिष्य ! शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, इन पांच विषयोंको ग्रहण करनेहारे जो श्रोत्र, त्वक, चक्षु, रसना, घ्राण यह पांच ज्ञान इन्द्रियां हैं, तिन श्रोत्रादिक इन्द्रियोंको अपने अपने विषयोंमें यह मनही प्रवृत्त करता है, तिस चंचल मनको आत्मविचारके बलसे निरोध करके, जो श्रोत्रादिक इन्द्रियोंका निरोध करता है । इसका नाम प्रत्याहार है ॥ तात्पर्य यह॥ जैसे सूर्यकी किरणें सूर्यसे भिन्न नहीं हैं, तैसे यह सम्पूर्ण दृश्य प्रपंचचेतन आत्मासे भिन्न नहीं है,इस प्रकारकी दृष्टि करके जो मनसहित इन्द्रियोंका निरोध करता है इसका नाम प्रत्याहार है इस प्रत्याहारका लक्षण याज्ञवल्क्य मुनिनेभी कहा है । तहां श्लोक । यद्यत्पश्यति तत्सर्वं पश्येदात्मानमात्मनि । प्रत्याहारः सच प्रोक्तो योगविद्भिर्महात्मभिः ॥ अर्थ यह योगी पुरुष जिस जिस पदार्थको देखै है, तिन सर्व पदार्थोंको आत्मरूप करके देखै, योगवेत्ता पुरुषोंने इसीका नाम प्रत्याहार कहा है ॥ २ ॥ अब निरूपण करते हैं ॥ हे शिष्य ! जो मत वेदसे बाह्य-

हैं, तिन मतोंका परित्याग करके सर्व वेदोंके तात्पर्यका विषयरूपसे जो अन्तर आत्मवस्तुका चिन्तन करना है, उसका नाम तर्क है ॥ ३ ॥ अवधारणका निरूपण करते हैं ॥ हे शिष्य ! इस लोकमें जो पुरुष चोरको नहीं देखते हैं, तिन पुरुषोंकोही सो चोर अनर्थोंकी प्राप्ति करते हैं । तैसे जो पुरुष विचारदृष्टिसे इस मनको नहीं देखते हैं, तिन विचार हीन पुरुषोंकोही सो मन संकल्प विकल्परूप अनर्थोंको प्राप्ति करता है ।। इस प्रकारका विचार करके इस मनको अन्तर आनन्दस्वरूप आत्मामें जोडकर जो संकल्प विकल्पसे रहित करनाहै, इसका नाम धारणा है ॥ ४ ॥ अब ध्यानका निरूपण करते हैं । हे शिष्य । जिस आनन्दस्वरूप आत्मामें धारणा की है. तिसी आनन्दस्वरूप आत्मामें अनात्माकार विजातीय वृत्तियोंके व्यवधानसे रहित जो निरन्तर तैलधाराकी नांई सजातीय वृत्तियोंका प्रवाह करना है, इसका नाम ध्यान है ॥ ५ ॥ अब समाधिका निरूपण करते हैं ॥ हे शिष्य ! जिस अवस्थामें अन्तरात्मास्वरूप आनन्दको ग्रहण करके ध्याता, ध्यान, ध्येय इत्यादिक सर्व द्वैत प्रपंचका अभाव होता है, तिस अवस्थाका नाम समाधिहै इस समाधिका स्वरूप गीतामें भगवाननेभी कहा है ॥ तहां श्लोक ॥ यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः॥ अर्थ ॥ यह विद्वान पुरुष जिस आत्मास्वरूप आनन्दको प्राप्त होकर तिससे अधिक किसी दूसरे

लय करना, इसका नाम कुम्भक है ॥ अपने प्राणवायुको आधार चक्र (आधार चक्र चतुर्दल, वायुस्थानसे दो अंगु- ऊपर स्थित है) से कुंडलनी मार्गद्वारा ऊपर ले जाकर तिस प्राणवायुको नासिकाद्वारा निकाल कर शरीरके बाह्य आकाशमें लय करै, इसका नाम रेचक है ॥ १ ॥ अब प्रत्याहारका निरूपण करते हैं ॥ हे शिष्य । शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, इन पांच विषयोंको ग्रहण करनेहारे जो श्रोत्र, त्वक,चक्षु, रसना, घ्राण यह पांच ज्ञान इन्द्रियां हैं, तिन श्रोत्रादिक इन्द्रियोंको अपने अपने विषयोंमें यह मनही प्रवृत्त करता है, तिस चंचल मनको आत्मविचारके बलसे निरोध करके जो श्रोत्रादिक इन्द्रियोंका निरोध करता है । इसका नाम प्रत्याहार है ॥ तात्पर्य यह॥ जैसे सूर्यकी किरणें सूर्यसे भिन्न नहीं हैं, तैसे यह सम्पूर्ण दृश्य प्रपंचचेतन आत्मासे भिन्न नहीं है,इस प्रकारकी दृष्टि करके जो मनसहित इन्द्रियोंका निरोध करता है इसका नाम प्रत्याहार है इस प्रत्याहारका लक्षण याज्ञवल्क्य मुनिनेभी कहा है । तहां श्लोक । यद्यत्पश्यति तत्सर्वं पश्येदात्मानमात्मनि । प्रत्याहारः सच प्रोक्तो योगविद्भिर्महात्मभिः ॥ अर्थ यह योगी पुरुष जिस जिस पदार्थको देखता है, तिन सर्व पदार्थोंको आत्मरूप करके देखै, योगवेत्ता महात्मा पुरुषोंने इसीका नाम प्रत्याहार कहा है ॥ २ ॥ अब तर्कका निरूपण करते हैं ॥ हे शिष्य । जो मत वेदसे बाह्य-

हैं, तिन मतोंका परित्याग करके सर्व वेदोंके तात्पर्यका विषयरूपसे जो अन्तर आत्मवस्तुका चिन्तन करना है, उसका नाम तर्क है ॥ ३ ॥ अवधारणका निरूपण करते हैं ॥ हे शिष्य ! इस लोकमें जो पुरुष चोरको नहीं देखते हैं, तिन पुरुषोंकोही सो चोर अनर्थोंकी प्राप्ति करते हैं। तैसे जो पुरुष विचारदृष्टिसे इस मनको नहीं देखते हैं, तिन विचारहीन पुरुषोंकोही सो मन संकल्प विकल्परूप अनर्थोंको प्राप्ति करता है ॥ इस प्रकारका विचार करके इस मनको अन्तर आनन्दस्वरूप आत्मामें जोडकर जो संकल्प विकल्पसे रहित करनाहै, इसका नाम धारणा है ॥ ४ ॥ अब ध्यानका निरूपण करते हैं। हे शिष्य। जिस आनन्दस्वरूप आत्मामें धारणा की है, तिसी आनन्दस्वरूप आत्मामें अनात्माकार विजातीय वृत्तियोंके व्यवधानसे रहित जो निरन्तर तैलधाराकी नांई सजातीय वृत्तियोंका प्रवाह करना है, इसका नाम ध्यान है ॥ ५ ॥ अब समाधिका निरूपण करते हैं ॥ हे शिष्य ! जिस अवस्थामें अन्तरात्मास्वरूप आनन्दको ग्रहण करके ध्याता, ध्यान, ध्येय इत्यादिक सर्व द्वैत प्रपंचका अभाव होता है, तिस अवस्थाका नाम समाधिहै इस समाधिका स्वरूप गीतामें भगवाननेभी कहा है ॥ तहां श्लोक ॥ यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः॥ अर्थ ॥ यह विद्वान पुरुष जिस आत्मास्वरूप आनन्दको प्राप्त होकर तिससे अधिक किसी दूसरे

लाभको नहीं मानता है ॥ ६ ॥ इतने करके प्राणायामादिक षट् अन्तरंग साधनोंका निरूपण किया ॥ अब योगी पुरुषको परित्याग करने योग्य जो पदार्थ हैं तिनका निरूपण करते हैं ॥ हे शिष्य ! जैसे रोगी पुरुष रोगकी निवृत्तिवास्ते कुपथ्य वस्तुका परित्याग करता है, तैसे यह योगी पुरुष तिस योगकी सिद्धिवास्ते भय, क्रोध, आलस्य इन तीनोंका परित्याग करै तथा अत्यन्त निद्रा, अत्यन्त जागरण, अत्यन्त आहार, अत्यन्त निराहारका परित्याग करै, तात्पर्य यह कि आहार निद्रा आदि युक्तिसे करै ॥ अब प्राणायाम करनेका प्रकार निरूपण करते हैं ॥ हे शिष्य ! प्राणायाम करनेका प्रकार वेदवेत्ता पुरुषोंने इसप्रकार कथन किया है यह योगी पुरुष प्रथम दहिने हाथके अंगूठेसे दहिनी नासिकाको बन्द करके बायें नासिका द्वारा बाहरके वायुको धीरे धीरे खींचकर शरीरके भीतर स्थित करै, इसका नाम पूरक है ॥ दहिनी नासिकापर दहिने हाथका अंगूठा वैसेही रक्खा रहने दे अन्तकी दो अंगुलियोंको वाम नासिकापर रखकर नथनेको बन्द करले इस प्रकार पूरकरेचक भावसे रहित तिस वायुको शरीरके [illegible] निरोध करै, इसका नाम कुम्भक है ॥ अनन्तर [illegible] दहिने नथनेपरसे उठाले और दोनों अंगुली बायें नथनेपर रहने दे और श्वासको धीरे धीरे दहिनी नासिका-

द्वारा शरीरसे बाहर निकाले, इसका नाम रेचक है हे शिष्य! यह योगी पुरुष ॐकाररूप प्रणव मंत्रसे प्राणायाम करै तिन प्रणव मंत्रोंकी संख्या मात्रा करके सिद्ध होती है, तहां यह अधिकारी पुरुष प्रथम एक मात्रासे पूरक करै और दो मात्रासे रेचक करै, और चार मात्रासे कुम्भक करै इस प्रकार दो मात्रा, तीन मात्रा, चार मात्रा, पांच मात्रासे आदि लेकर आगे आगे तिन पूरकादिकोंको शनैः शनैः बढाता जाय परन्तु पूरकका द्विगुण रेचक हो रेचकका द्विगुण कुम्भक हो ॥ तीन बार ताली बजानेमें जितना काल व्यतीत होता है तिस कालका नाम मात्रा है ॥ हे शिष्य! जब यह योगी पुरुष प्रणव मंत्रसे प्राणायाम करै; तब प्रणवके अकार, उकार, मकार, अर्द्धमात्रा इन चार मात्राओंकाभी चिन्तन करै, तथा तिन अकारादिक चार मात्राओंके यथाक्रमसे वैश्वानर, हिरण्यगर्भ, ईश्वर, तुरीय (परमात्मा) इन चार अर्थोंकाभी चिन्तन करै । अथवा जैसे इसलोकमें रथ मनवांछित स्थानको प्राप्त करता है । तैसे अधिकारी पुरुष तिस प्रणवमंत्रको रथरूपसे ध्यान करै । विष्णुरूप परमात्मादेव अन्तर्यामी रूपसे तिस प्रणवरूप रथका प्रेरणा करनेवाला है । यातें विष्णुरूप परमात्मादेवको यह अधिकारी पुरुष तिस प्रणवरूप रथका सारथीरूपसे चिन्तन करै अर्थात् ध्यान करै ॥ इस प्रकार प्रणवरूप रथ करके (द्वारा) स-

काम पुरुषोंको वो हिरण्यगर्भरूप सगुण ब्रह्मकी प्राप्ति होतीहै, और निष्काम पुरुषोंको निर्गुण शुद्ध ब्रह्मकी प्राप्ति होती है, इस कारण तिस हिरण्यगर्भको तथा शुद्ध ब्रह्मको अधिकारी पुरुष तिस प्रणवरूप रथका गंतव्यस्थानरूप करके (से) ध्यान करै ॥ इति ॥ अमृतनादउपनिषदसार (भाषा) समाप्त हुआ ॥ ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ॥

ॐतत्सत्.

महोपनिषदके भाष्यके अर्थसे ध्याननिमित्त रुद्रभगवानके स्वरूपका निरूपण गुरु-शिष्य सम्वाद ।

हे शिष्य । सो रुद्र भगवान कैसा है । जिस रुद्र भगवानका नील कंठ है, तथा लोहित अंग है, तथा जिस रुद्र भगवानके सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि यह तीन नेत्र हैं। तथा जिस रुद्र भगवानने त्रिशूल धारण किया है, तथा अनेक बलसे सिद्ध होनेवाले जो दुर्घट कर्म हैं, तिन दुर्घट कर्मोंको जिस रुद्र भगवानने धारण किया है, तथा जिस रुद्र भगवानके समान दूसरा कोई नहीं है और जो रुद्रभगवान नारायण देवसे अभिन्न है। इस कारणसे सो रुद्र भगवान सम्पूर्ण ऐश्वर्यका आधार है, तथा सम्पूर्ण धर्म, सम्पूर्ण यश सम्पूर्ण श्री, सम्पूर्ण सम्पूर्ण वैराग्य, सम्पूर्ण सत्य, सम्पूर्ण ब्रह्मचर्य तथा इन्द्रियोंके निग्रहरूप तप, तथा सम्पूर्ण वेदशास्त्रका

आधार है, ऐसे गुणोंके आधाररूप तिस रुद्र भगवानसेही इन्द्रादिक सर्व देवताओंको ऐश्वर्य आदि सर्व गुण प्राप्त होते हैं, और यह रुद्र भगवानही तिन सर्व देवतावों सर्व मुनियों तथा सर्व मनुष्योंको नानाप्रकारकी विद्याकी प्राप्तिमें गुरुरूप हैं। जैसे तूलकी राशि अग्निके सम्बन्धको प्राप्त होकर शीघ्रही नाशको प्राप्त होती है, तैसे प्रलयकालमें यह तीन लोकतूल तिस रुद्ररूप अग्निको प्राप्त होकर शीघ्रही नाशको प्राप्त होता है ॥ ऐसे रुद्र भगवानके ध्यानसे अधिकारी पुरुषके सर्व विघ्न निवृत्त होते हैं ॥ इति ॥

धर्मसिन्धुसे आतुर संन्यासविधि।

जिस अधिकारी पुरुषका शरीर रोगादिकोंसे व्याकुल हो तिसका संन्यासधर्म शास्त्रके अनुसार केवल प्रैपमंत्रके उच्चारण मात्रसे ही सिद्ध होता है। श्राद्धादिक विधिकी आवश्यकता नहीं है। यदि अधिकारी पुरुषको वाणीसेभी प्रैपमंत्रके उच्चारणकी सामर्थ्य न हो तो मनसे प्रैपमंत्रका उच्चारण करै ॥ तहां श्रुति ॥ यद्यातुरःस्यान्मनसा वाचा संन्यसेत ॥ अर्थ यह है ॥ यह अधिकारी पुरुष जब अत्यन्त आतुर (व्याकुल) हो तो मन करके अथवा वाणी करके संन्यास करै ॥ इस कारण आतुर पुरुषको तिन श्राद्धादिक कर्मोंके करनेका विधान नहीं है। केवल वाणी अथवा मनसे प्रैपमंत्रका उच्चारण करनाही विधान है ॥

प्रैषमंत्रके उच्चारणकी विधि।

ॐभूः संन्यस्तं मया, ॐ भुवः संन्यस्तं मया, ॐ स्वः संन्यस्तं मया, ॐ भूर्भुवः स्वः संन्यस्तं मया ॥ इस प्रकारसे मन्द, मध्यम, उच्च, ऐसे स्वरसे तीन बार कहकर "अभयं सर्वभुतेभ्यो मत्तः स्वाहा," इस मंत्रसे जल जलमें छोड दे शिखा उपाडके यज्ञोपवीत निकाल कर हाथमें ग्रहण करके जल अथवा भूमिमें छोडदे ॥ " आपो वै सर्वादेवताः सर्वाभ्यो देवताभ्यो जुहोमि स्वाहा, ॐ भूः स्वाहा," इस मंत्रसे जलमें जलके साथ होम करके प्रार्थना करनी ॥ प्रार्थनामंत्र ॥ त्राहि मां सर्वलोकेश, वासुदेव सनातन, संन्यस्तं मे जगद्योने पुण्डरीकाक्ष मोक्षद ॥ १ ॥ युष्मच्छरणमापन्नं त्राहि मां पुरुषोत्तम ॥

अथ संन्यस्तफलनिरूपण कपिलोक्तश्लोक।

संन्यस्तमिति यो ब्रूयात्प्राणैः कंठगतैरपि ॥
स सूर्यमण्डलं भित्त्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥

अर्थ—मरणकालमेंभी जो प्रैषमंत्रके उच्चारण पूर्वक संन्यस्त आश्रम धारण करता है, वह सूर्यमंडलको भेदन करके ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है और ब्रह्माके साथ मोक्ष पाता है ॥

अथ अत्रिमुनिउक्त श्लोक।

द्वे रूपे वसुदेवस्य चलं चाचलमेव च।
चलं संन्यासिनां रूपमचलम्प्रतिमादिकम् ॥ १ ॥

देवताप्रतिमां दृष्ट्वा यतिं दृष्ट्वैव दण्डिनम् ॥
प्रणिपातमकुर्वाणो नरकं रौरवं व्रजेत् ॥ २ ॥

जाबाल उपनिषदोक्त श्रुति।

शतं कुलानां पुरतो बभूव, तथा कुलानां त्रिशतं समग्रम्।
एते भवन्ति सुकृतस्य लोके येषां कुले संन्यस्तीह विप्रः ॥१॥

अर्थ ॥ जिस कुलमें जो ब्राह्मण संन्यास आश्रमको ग्रहण करता है। तिस कुलके बीते हुए एक शत १०० पुरुष तथा आगे होनेहारे तीन शत ३०० पुरुष स्वर्गादि उत्तम लोकको प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

परमहंसोपनिषदोक्त श्लोक।

ज्ञानदण्डो धृतो येन,एकदण्डी स उच्यते।
काष्ठदण्डो धृतो येन सर्वाशी ज्ञानवर्जितः ॥
स याति नरकान्घोरान्महारौरवसंज्ञकान् ॥ १ ॥

अर्थ यह जिस संन्यासीने आत्मज्ञानरूप दंडको धारण किया है, सो संन्यासी एक दंडी कहा जाता है, और जिस संन्यासीने केवल काष्ठके दण्डको धारण किया है, और आत्मज्ञानरूप दण्डसे रहित है, तथा विषयोंमें आसक्त है, सो विषयासक्त अज्ञानी संन्यासी इस शरीरका परित्याग करके रौरवादिक महान् घोर नरकोंको प्राप्त होता है ॥ १ ॥

॥ ॐ परमात्मने नमः ॥

परमहंस उपनिषद्के भाष्यके अर्थसे परम हंसके ९ नव तत्त्वरूप यज्ञोपवीतका वर्णन ।

जैसे ब्राह्मणका यज्ञोपवीत नव तन्तु (ताग) का होता है । वैसे ब्रह्मवेत्ता विद्वान संन्यासीके हृदयदेशमें स्थित जो नव तत्त्व हैं सो नव तत्त्वही तिस संन्यासीका यज्ञोपवीत है । सो नव तत्त्व यह हैं ॥ ईश्वर १ हिरण्यगर्भ २ विराट ३ विश्व ४ तैजस ५ प्राज्ञ ६ प्राण ७ अपान ८ व्यान ९, जैसे नव तन्तुरूप सूत्रसे उत्पन्न हुआ जो उपवीत है सो उपवीत यज्ञादिक कर्मोंका साधनरूप है, इस कारण शास्त्रवेत्ता पुरुष उपवीतको यज्ञोपवीत कहते हैं ॥ तिन नव तत्त्वोंके विचारसे प्रगट भया जो अखण्ड चैतन्य है । सो चैतन्य ज्ञानरूप यज्ञका अंगरूप है, इस कारण तिस चैतन्यको शास्त्रवेत्ता पुरुष यज्ञोपवीत इस नामसे कथन करते हैं । और यज्ञोपवीत पर मंत्रभी मुख्य वृत्ति करके तिस चैतन्यरूप यज्ञोपवीतकोही कथन करता है, क्योंकि परम पवित्रता चैतन्यके विना किसी और अनात्म पदार्थमें सम्भव नहीं किन्तु सो चैतन्यही परम पवित्र है, ऐसे चैतन्यरूप यज्ञोपवीतको अपने हृदयदेशमें जान करके यह विद्वान पुरुष शास्त्रकी रीतिसे तिस बाहरके यज्ञोपवीत, शिखाका परित्याग करता है.

सम्पूर्ण प्रपंचका अधिष्ठानरूप जो अक्षर परब्रह्म हैं, तिस परब्रह्मकोही सो विद्वान पुरुष सूत्ररूप करके निश्चय करता है। जैसे सूत्रसे पट बनता है तैसे सूत्ररूप ब्रह्मसे सम्पूर्ण प्रपंचरूप पट उत्पन्न होता है ॥ इति ॥ परमहंसोपनिषदसार समाप्त हुआ ॥ ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ॥

ॐ

एकमेवाद्वितीयम् ब्रह्म ॥
ब्रह्मउपनिषद्के भाष्यके अर्थसे अन्तःकरण-विशिष्ट आत्माकी अवस्था तथा स्थान और आत्माके साक्षात्कार कर-नेका उपाय निरूपण।

यह आनन्दस्वरूप स्वयंज्योति आत्मा यद्यपि वास्तवमें सर्व अवस्थावोंसे रहित है तथापि मायाके वशसे यह आत्मादेव जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय इन चार अवस्थाओंको प्राप्त होता है। तिन जाग्रदादिक चार अवस्थावोंके यथाक्रमसे नाभि, कंठ, हृदय, मूर्द्धा, यह चार स्थान हैं ॥ यह अन्तःकरणविशिष्ट जीवात्मा जब नाभिसे नेत्रपर्यन्त देशमें विशेष करके स्थित होता है, तो विश्वसंज्ञाको प्राप्त करनेहारी जाग्रत अवस्थाको प्राप्त होता है। जब यह जीवात्मा कंठदेशमें विशेष करके स्थित होता है। तब तैजस संज्ञाको प्राप्त

करनेहारी स्वम अवस्थाको प्राप्त होता है, और जब यह जीवात्मा हृदयकमलमें विशेष करके स्थित होता है, तब प्राज्ञसंज्ञाको प्राप्त करनेहारी सुषुप्ति अवस्थाको प्राप्त होता है। जब यह जीवात्मा समाधिके प्रभावसे मूर्द्धा स्थानमें स्थित होता है तो शुद्ध आत्मरूपताको प्राप्त करनेहारी तुरीय अवस्थाको प्राप्त होता है ॥ तिस जाग्रत अवस्थाका विराट देवता है, स्वम अवस्थाका हिरण्यगर्भ देवता है, और सुषुप्ति अवस्थाका रुद्र देवता है, और तुरीय अवस्थाका परमात्मा देवता है ॥ तुरीय अवस्थाका देवतारूप जो परमात्मादेव है, सो परमात्मादेव मायारूप उपाधिके सम्बन्धसे सर्व जगद्रूप होता है, वास्तवमें सो परमात्मादेव कार्यकारणभावसे रहित है, तथा मनवाणीका अविषय है तथा स्वयंज्योति आनन्दस्वरूप है ॥ ऐसे परमात्मादेवको जो अधिकारी पुरुष अपना आत्मारूप जानता है, सो अधिकारी पुरुष अनाथकी नांई ऋषिदेवताओंके किंकरभावको नहीं प्राप्त होता है ॥ तिस अद्वितीय परमात्मामें ईश, जीव, जगत इत्यादिक द्वैतभाव हम जीवोंनेही कल्पना किया है। वास्तवमें तिस परमात्मामें सो द्वैतप्रपंच नहीं है, जैसे वास्तवमें अन्धकारसे रहित सूर्यमें घूकादिक (उल्लूचमगादर) पक्षी अन्धकार कल्पना करते हैं, तैसे यह जीव तिस अद्वितीय ब्रह्ममें जगतकी कल्पना करते हैं ॥ जैसे अग्नि सम्पूर्ण काष्ठोंमें गुप्त होकर रहता है,

तैसे इस लोकमें कार्यकारणरूप करके प्रसिद्ध जो जरा-युज, अंडज, स्वेदज, उद्भिज्ज यह चार प्रकारके भूत-प्राणी हैं, तिन सर्व भूतप्राणियोंमें सो स्वयंज्योति एक परमात्मादेव गुह्य होकर रहता है, और सो परमात्मा-देव आकाशकी नांई सर्वत्र व्यापक है, तथा स्थूल, सूक्ष्म, कारण इन तीन शरीरोंमें साक्षीरूपसे स्थित है, तथा राजाकी नांई सर्व भूतोंको अपने वश करके तिन भूतोंमें निवा-स करता है। जैसे इस लोकमें मध्यस्थ पुरुष विवादकर्ता पुरुषोंके व्यापारोंको साक्षीरूपसे देखता है, तैसे सो परमा-त्मादेवभी साक्षीरूप होकर सर्वभूतोंके व्यापारोंको देखता है। सो परमात्मादेव सर्व जड पदार्थोंसे विलक्षण है। यातें चिद्घन, अद्वितीय, और निर्गुणरूप है ॥ तहां श्रुति, "साक्षी, चेता, केवलो निर्गुणश्च" ॥ इति ॥ ब्रह्मवेत्ता पुरुषोंने तिस अद्वितीय आत्माके साक्षात्कारवास्ते इस प्रकारका उपाय कथन किया है। यह अधिकारी पुरुष अपने शरीरको अथवा बुद्धिको नीचेकी अरणीरूपसे चिंतन करै और अकार, उकार, मकार, अर्द्धमात्रा, यथाक्रमसे विश्व, तैजस, प्राज्ञ, तुरीय इन चार अवस्थावाले आत्माको कथन करनेहारा जो ॐकार है तिस ॐकारको ऊपरकी अरणी रूपसे चिन्तन करै ॥ जैसे लोकमें काष्ठरूप दोनों अरणियोंके मथन करनेसे अग्नि प्रगट

होता है, तैसे शरीर, बुद्धि तथा ॐकार इन दोनों अरणियों-के मथन करनेसे आत्मसाक्षात्काररूप अग्नि प्रगट होता है, आत्मज्ञानरूप अग्नि कार्यसहित अज्ञानको नाश करता है ॥ यह अधिकारी पुरुष प्रथम विश्व, तैजस, प्राज्ञ, तुरीय, इन चारों-को यथाक्रमसे विराट, हिरण्यगर्भ, ईश्वर, परमात्मा, इन चारोंसे अभिन्न रूप करके चिन्तन करै तिसके अनन्तर तिन विश्वादिक चारोंको यथाक्रमसे अकार, उकार, मकार, अर्द्धमात्रा, इन ओंकारकी चार मात्राओंसे अभिन्न रूप करके चिन्तन करै । इस प्रकारका जो निरन्तर ध्यान करता है, सो ध्यानही तिन दोनों अरणियोंका मथन है ॥ यह आनन्द स्वरूप आत्मा यद्यपि काष्ठोंमें अग्निकी नांई इस संघात (शरीर) में गुह्य होकर रहता है, तथापि तिस ध्यानरूप मथनसे यह आत्मादेव शीघ्रही प्रगट होता है इसमें किंचित संशय नहीं है ॥ यह जीवात्मा जब गुरुशास्त्रके उपदेशसे अपने हृदयमें स्थित आनन्दस्वरूप आत्माको साक्षात्कार करता है, तब यह जीवात्मा अपने जीवत्वभावका परित्याग करके ब्रह्मभावको प्राप्त होता है, अर्थात् स्वयंज्योति आत्माको साक्षात्कार करके मोक्षको प्राप्त होता है ॥ इति ॥ ब्रह्मःउपनिषद्-सार (भाषा) समाप्त हुआ ॥ ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ॥

ॐतत्सद्ब्रह्मणे नमः।

ब्रह्मबिन्दुउपनिषदके भाष्यके अर्थसे मनके वश करनेका उपाय अर्थात् मनका निग्रहरूप योग निरूपण।

गुरुशिष्य संवाद.

दानमिज्या तपः शौचं तीर्थं वेदाः श्रुतं तथा।
अशान्तमनसः पुंसः सर्वमेतन्निरर्थकम् ॥ १ ॥

जिस पुरुषका मन विषयवासनाका परित्याग करके शान्तिको नहीं प्राप्त हुआ उसका दान, यज्ञ, तप, शौच, तीर्थ, वेद श्रवण इत्यादिक यह सर्व कर्म निष्फल हैं ॥

हे शिष्य! इस मनके निग्रह करने वास्ते दो उपाय शास्त्रमें कथन किये हैं। एकतो वैराग्यरूप उपाय है, और दूसरा अभ्यासरूप उपाय है ॥ तहां यह सम्पूर्ण द्वैतप्रपंच इन जीवोंको अनेक प्रकारके दुःखोंकी प्राप्ति करता है, इस कारण यह सम्पूर्ण जगत् दुःखरूपही है, अथवा यह सम्पूर्ण जगत् इन जीवोंके ब्रह्मानन्दको आच्छादन करनेहारा है ॥ इस कारण दुःखरूपही है ॥ इस प्रकार गुरु शास्त्रके उपदेशसे इस सर्व जगतको दुःखरूप जानकर किसी पदार्थके प्राप्तिकी इच्छा न करनी ॥ इसका नाम वैराग्य है ॥ यह सम्पूर्ण जगत ब्रह्मरूपही है, ब्रह्मसे भिन्न इस जगतका कोई वास्तवस्वरूप नहीं है। जैसे मृत्तिकासे भिन्न घटका कोई वास्तव

स्वरूप नहीं है इसप्रकार वारंवार अपने मनमें चिन्तन करना इसका नाम अभ्यास है ॥ ऐसे वैराग्य, अभ्यासरूप उपायसेंही इस मनका निग्रह होता है । यह वार्ता गीतामें श्रीभगवान-नेभी कही हैं । तहां श्लोक ॥

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् ।
अभ्यासेन तु कौंतेय वैराग्येण च गृह्यते ॥ अर्थ यह ॥

हे अर्जुन ! तुमने जो प्रथम मनकी दुर्निग्रहता कही है सो वार्ता यद्यपि सत्य है तथापि अभ्यास करके (से) तथा वैराग्य करके (से) तिस मनका निग्रह हो सकता है ॥ १ ॥

हे शिष्य ! मनका निरोधरूप जो योग है, तिस योगमें इस चित्तकी लय, विक्षेप कषाय. यह तीन अवस्था विरोधी हैं । तिन तीनों अवस्थावोंको यह अधिकारी पुरुष तिस अभ्यास वैराग्यरूप दो उपायोंसे नाश करै ॥ तहां यह चित्त जब तिस निद्रारूप लयमें प्रवर्त्तमान होवै. तब यह अधिकारी पुरुष तिस चित्तको आत्मचिन्तनरूप अभ्यासमें जोडै॥ जब यह चित्त तिस कामभोगमें तत्परतारूप विक्षेप अवस्था-की प्राप्त होवै तब यह अधिकारी पुरुष तिन विषय भोगोंमें अनेक प्रकारके दोषोंका चिन्तनरूप वैराग्य करके तिन विषय भोगोंसे चित्तको निवृत्त करै ॥ और रागादिकोंके संस्कारसे इस चित्तमें जो आत्मानात्म आकार

वृत्तिसे रहित ता रूप स्तब्ध अवस्था है। इसका नाम कषाय है। तिस कषाय दोषयुक्त चित्तको देखकर यह अधिकारी पुरुष तिस वैराग्य अभ्यासरूप उपायसे तिस कषायदोषकी निवृत्ति करै॥ इन प्रकारके उपायोंसे जब इस अधिकारी पुरुषका चित्त ब्रह्माकारताको प्राप्त होवै तब तिस चित्तको ब्रह्माकार अवस्थासे चलायमान न करै किन्तु तिस ब्रह्माकार अवस्थाका परिपालन करै। तिस समाधिकालमें सत्वगुणकी अधिकतासे जो सुखविशेष उत्पन्न हुआ है। तिस सुखमेंभी यह अधिकारी आसक्ति करै नहीं किन्तु विचार करके तिस सुखसेभी निःसंग होवै। और ब्रह्माकारताको प्राप्त होकरभी जब यह चित्त बाह्य जावै, तब प्रयत्न करके यह अधिकारी पुरुष तिस चित्तको पुनः ब्रह्माकार करै॥ हे शिष्य! जिस कालमें यह चित्त लय, विक्षेप, कषाय, इन तीनों दोषोंसे रहित होता है, तथा चलनेसे रहित होताहै, तथा सर्व दृश्य पदार्थोंके सम्बन्धसे रहित होता है, तिस कालमें सो चित्त ब्रह्मभावको प्राप्त हुआ जानना॥ हे शिष्य! सर्व विक्षेपसे रहित हुआ सो चित्त जिस ब्रह्मभावको प्राप्त होता है। सो ब्रह्म कैसा है शुद्ध है तथा सर्व अनर्थोंसे रहित है तथा नित्यमुक्तहै तथा वाक आदिक सर्व इन्द्रियोंका अविषयहै, तथा भूमा आनन्दरूप है॥ हे शिष्य! जबतक साक्षी आत्मामें इस मनका बाधरूप

लय न होवै तबतक इस अधिकारी पुरुषको तिस मनको अवश्य करके निरोध करना चाहिये ॥ तिस निरोध किये हुए मनको जो ब्रह्मभावकी प्राप्ति होवी है, यहही तिस मनका बाध है । हे शिष्य ! यह ब्रह्माकारता रूप जो मनका निरोध है, सो निरोधही वेदान्तवाक्योंके विचाररूप सांख्यका फल है । तथा सो निरोधही योगका फल है । इस मनके निरोधसे अधिक कोई दूसरा फल तिस सांख्ययोगका है नहीं ॥ इति ॥

सुषुप्ति तथा समाधि अवस्थाविषे मनके लयमें भेदनिरूपण ।

सुषुप्ति अवस्थामें मन अपने कारण अज्ञानविषे सूक्ष्म होकर स्थित होता है । और जाग्रत, स्वप्न अवस्थामें पुनः उदय होकर अपने बन्धरूप व्यापारमें लगता है, परन्तु समाधि अवस्थामें तथा जाग्रत अवस्थामें ब्रह्माकार वृत्तिके निदिध्यासनकी परिपक्व दशामें अपने अधिष्ठान ब्रह्ममें लय होता है अर्थात् अद्वितीय ब्रह्मरूपही होजाता है, पुनः उदय होता नहीं ॥ मनके लय अर्थात् शान्त हुए यह पुरुष जन्म-मरणसे रहित होता है अर्थात् मोक्षको प्राप्त होता है ॥ इति ॥ ब्रह्मबिन्दु उपनिषदसार (भाषा) समाप्त हुआ ॥

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ॥

ॐ परमात्मने नमः।

कैवल्य उपनिषदके भाष्यके अर्थसे ब्रह्मा तथा आश्वलायन संवादसे ब्रह्मके साक्षात्कार करनेका उपाय।

हे आश्वलायन ! मैं ब्रह्मरूप हूँ ॥ इस प्रकारका आत्मज्ञानही मुक्तिके प्राप्तिका मार्ग है ॥ तहां श्रुतिः ॥ नान्यः पंथा विद्यते अयनाय ॥ अर्थ यह ॥ मोक्षकी प्राप्ति वास्ते आत्मज्ञानके सिवाय दूसरा कोई मार्ग नहीं है ॥ किन्तु मैं ब्रह्मरूप हूँ यह आत्मज्ञानही तिस मोक्षके प्राप्तिका मार्ग है ॥ १ ॥ हे आश्वलायन ! जो अधिकारी पुरुष अपने आनन्दस्वरूप आत्माको सर्वभूतोंमें व्यापक देखता है, तथा तिन सर्वभूतोंको इस आत्मदेवमें कल्पितरूपसे देखताहै, सो अधिकारीपुरुषही तिस ब्रह्मभावको प्राप्त होता है। ऐसे आत्मज्ञानके विना किसी दूसरे उपायसे तिस ब्रह्मभावकी प्राप्ति होती नहीं, इस कारण इस अधिकारी पुरुषको आत्मज्ञानकी प्राप्ति अवश्य करनी चाहिये। हे आश्वलायन ! यदि पूर्वोक्त रीतिसे जो अधिकारी पुरुष तिस आत्मदेवके जाननेमें समर्थ न होवै तो सो अधिकारी पुरुष प्रथम इस प्रकारका ध्यान करै ॥ जैसे लोग एक काष्ठ अरणीको नीचे रखके तथा एक काष्ठरूप अरणीको ऊपर कर तथा तिन दोनों अरणियोंके मध्यमें एक दीर्घ काष्ठरूप [illegible] रखकर तथा तिस मंथाके साथ रज्जु बांधके तिस रज्जु [illegible] वारवार आकर्षण करके अग्नि प्रगट करते हैं ॥

तैसें यह अधिकारी पुरुष अपने शरीरको नीचेकी अरणीरूपमें ध्यान करै, और अकार, उकार, मकार, इसे तीन मात्रावाले प्रणवको ऊपरकी अरणी रूप करके संधान करै और मनको मन्थारूपसे ध्यान करै और तिस ध्यानरूप क्रियाको रज्जुरूपसे ध्यान करै। इस प्रकार चिन्तन करके सो अधिकारी पुरुष निरन्तर तिस ध्यानकी आवृत्ति रूप मन्थनको करै, इस प्रकार मंथन करके इस अधिकारी पुरुषको इस शरीरमें अद्वितीय आत्मारूप अग्नि प्रगट होता है। सो अद्वितीय आत्मारूप अग्नि एक वार प्रगट हुआभी कामक्रोधादिक सर्व पाशोंको दग्ध करता है। तिन कामादिक सर्व पाशोंके दग्ध हुएके अनन्तर यह अधिकारी पुरुष तिस अद्वितीय ब्रह्मरूपसे स्थित होता है ॥ हे आश्वलायन ! जो जीव मैं ब्रह्मरूपहूँ, इस प्रकारके ज्ञानरूप अग्निसे कामादिक सर्व पाशोंको दाह करता हैं, सो त्वंपदार्थरूप जीव तत्पदार्थरूप ब्रह्मसे भिन्न नहीं है, किन्तु सो जीव केवल ब्रह्मरूपही है ॥

निद्रादोषसे स्वप्न अवस्थामें तथा मायारूप दोपसे जाग्रत अवस्थामें मोह तथा सुखदुःखप्राप्तिमें समानता तथा उनके दूर करनेका उपाय निरूपण ।

हे आश्वलायन ! जैसे सर्व शास्त्रोंका जाननेहारा विद्वान पुरुषभी स्वप्न अवस्थामें निद्रादोषसे नानाप्रक मोहको

प्राप्त होता है तैसे वास्तवमें सर्व मोहसे रहित हुआभी यह आत्मा-देव मायारूप दोषसे इस संसारमें नानाप्रकारके मोहको प्राप्त होता है जैसे निद्रामें सोया हुआ यह पुरुष तिस निद्राके नाश-पर्यन्त तिस संसार स्वमके अनेक दुःखोंको प्राप्त होता है । तैसे यह जीवात्माभी तिस मायारूप निद्राके नाश पर्यन्त इस संसार स्वमके अनेक दुःखोंको प्राप्त होता है । और जैसे तिस स्वम अवस्थामें सिंह सर्पादिकोंको देखकर दुःखसे रुदन करता हुआ हिड्की शब्दके समान भयानक शब्दोंको करता हुआ जो स्वमद्रष्टा पुरुष है, तिस स्वमद्रष्टा पुरुषको कोई दयालु पुरुष भेरी आदिकोंके ऊंचे शब्दसे जगाता है ॥ तैसे मायारूपी निद्रामें इस संसाररूप स्वमसे पीडित तथा तीन तापसे युक्त जो यह जीवात्मा है, तिस जीवात्माको ब्रह्म-वेत्ता दयालु गुरु महावाक्यरूप भेरीके शब्दसे तिस मायारूप निद्रासे जगाता है ॥ और जैसे जाग्रत अवस्थाको प्राप्त हुआ सो स्वमद्रष्टा पुरुष पुनः तिस स्वमसम्बन्धी दुःखोंको प्राप्त होता नहीं. तैसे ब्रह्मवेत्ता गुरुके उपदेशसे अविद्यारूप निद्रासे ब्रह्मज्ञानरूप जाग्रत अवस्थाको प्राप्त हुआ यह अधिकारी पुरुष पुनः इस संसाररूप स्वमके दुःखको प्राप्त होता नहीं ॥

हे आश्वलायन ! ऐसे ब्रह्मज्ञानकी प्राप्ति इस जीवको अ-नेक जन्मोंके पुण्यकर्मोंसे होती है । इस कारण सो ब्रह्म-ज्ञानरूप तुरीय अवस्था अत्यन्त दुर्लभ है, किसी भा-ग्यवान पुरुषकोही प्राप्त होती है ॥ इति ॥

ब्रह्मरूप साक्षीआत्माके प्राप्तिका उपायवर्णन ॥

हे आश्वलायन ! जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओंमें यथाक्रमसे स्थूल, सूक्ष्म, आनन्द यह तीन प्रकारके भोग्य रहते हैं ॥ विश्व, तैजस, प्राज्ञ यह तीन प्रकारके भोक्ता रहते हैं । तथा तिन भोग्य पदार्थोंको विषय करनेहारी अन्तःकरणकी अथवा अज्ञानकी वृत्तिरूप भोग रहते हैं ॥ तिन भोग्य, भोक्ता, भोगको मैं शुद्ध आत्मा साक्षीरूप करके प्रकाश करता हूँ । यातें मैं चैतन्य स्वरूप शुद्ध आत्मा तिन भोग्यादिक तीनोंसे विलक्षणहूं । तथा सर्वदा तुरीय शिवरूप हूं ॥ तात्पर्य यह है कि विशिष्ट स्वरूप यद्यपि शुद्धस्वरूपसे भिन्न होता नहीं, तथापि शुद्धस्वरूप विशिष्ट स्वरूपसे भिन्न होता है, यह शास्त्रकारोंका सिद्धान्त है ॥ जैसे घटत्वादिक धर्म विशिष्ट मृत्तिका यद्यपि शुद्ध मृत्तिकासे भिन्न नहीं है, तथापि शुद्ध मृत्तिका तिस घटत्वादिक धर्मविशिष्ट मृत्तिकासे भिन्न है ॥ तैसे विश्व तैजस, प्राज्ञ आदिक विशिष्ट स्वरूप यद्यपि शुद्धचेतनसे भिन्न नहीं हैं, तथापि सो शुद्ध चेतन तिन विशिष्ट स्वरूपोंसे भिन्न है । क्योंकि मोक्ष अवस्थामें तिन विशिष्ट स्वरूपोंके बाध हुएभी सो शुद्धचेतन स्वरूप रहता है । इसी अभिप्रायसे, "त्रिषु धामसु यद्भोग्यं [illegible]क। भोगश्च यद्भवेत् । तेभ्यो विलक्षणः साक्षी, चिन्मात्रोहं [illegible] ॥" इस श्रुतिने तिन विशिष्ट स्वरूपोंसे शुद्ध चैत-

न्यको विलक्षण कहा है ॥ हे आश्वलायन! इस प्रकार ब्रह्मवेत्ता गुरुके मुखसे आत्माके वास्तव स्वरूपको श्रवण करके यह अधिकारी पुरुष इस प्रकार तिस आत्माके स्वरूपका मनन करै, यह सम्पूर्ण जगत् मुक्त आत्मामेंही उत्पन्न हुआ है तथा मुझ आत्मामेंही स्थित है। तथा मुझ आत्मामेंही लयभावको प्राप्त होता है, इस कारण सर्व भेदसे रहित अद्वितीय ब्रह्म मैं हूँ ॥ मेरेसे भिन्न ब्रह्म नहीं है, इस कारणसे वेदकी श्रुतियां मुझको विश्वरूप कहती हैं, तथा पुराणपुरुष, सर्व तेजोंका निधि तथा सम्पूर्ण ज्ञानकर्म इन्द्रियोंसे रहित, तथा प्राण बुद्धि आदिकोंसे रहित तथा भगवान, परमेश्वर तथा सर्वज्ञ, अद्वितीय, मनवाणीका अविषय इत्यादि कहती हैं क्योंकि जैसे निर्मल आकाशमें गंधर्वनगर कल्पित होता है, तैसे आनन्दस्वरूप मुक्त अद्वितीय आत्मामें यह मायासहित सम्पूर्ण भूतभौतिक जगत कल्पित है, और कल्पित वस्तुसे अधिष्ठानका भेद होता नहीं, इस कारण इस कल्पित जगतसे मेरे स्वरूपमें तीन कालमें भेद नहीं है। इस प्रकार मनन करता हुआ अधिकारी पुरुष सर्व भेदसे रहित अद्वितीय ब्रह्म मैंही हूँ मेरेसे भिन्न ब्रह्म नहीं है इस प्रकार निदिध्यासन निरन्तर करता रहै, तो अद्वितीय ब्रह्मस्वरूपको प्राप्त होकर अधिष्ठान ब्रह्ममें लीन हो इति कैवल्य उपनिषदसार (भाषा) समाप्त हुआ ॥

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ॥

ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः ।

सामवेदीय छान्दोग्योपनिषदके भाष्यके अर्थसे अथ षोडश कलायुक्त ब्रह्मके चार पादोंका निरूपण वायु, अग्नि, सूर्य, प्राणका सत्यकामप्रति, उपदेशकथन।

गौतम ऋषिने अपने शिष्य सत्यकामके प्रति ४०० निर्बल गौवोंको देकर कहा कि इन गौवोंको वनमें लेजावो, गुरुकी आज्ञानुसार सत्यकाम उन गौवोंको वनमें ले जाकर यह विचार करता भया कि जबतक यह गौवें एक सहस्र न हो जावेंगी तबतक मैं वनसे न आऊंगा, इस विचारसे सत्यकाम बहुत वर्षतक वनमें रहा और सो चारशत गौवें एक सहस्र होगईं, तब गौवोंके चरानेवाले सत्यकामसे वृषभ शरीरमें प्रवेश करके दिशाभिमानी वायुदेवने गुरुकी सेवासे प्रसन्न होकर कहा हे सत्यकाम ! सत्यकामने कहा, कहो भगवन् ॥ वृषभ बोले हे सौम्य! अब गौवें एक सहस्र पूर्ण होगईं हमको आचार्यके गृहमें ले चलो ॥ और ब्रह्मके पादको मैं तुझसे कहता हूं ॥ सत्यकाम बोला ॥ कहो भगवन् ! वृषभने कहा ॥ हे सत्यकाम ! पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, यह चार दिशा ब्रह्मका चार कलावाला पाद है, इस दिशारूप ब्रह्मके पादका नाम प्रकाशवान है, जो उपासक इस प्रकाशवान् नामक ब्रह्मके पादको जानता है, सो आप प्रकाशवान् हुआ,

प्रकाशवाले लोकोंको प्राप्त होताहै ॥ हे सत्यकाम! ब्रह्मका दूसरा पाद तुझको अग्नि उपदेश करैगा ॥ ऐसा कथन करके वृषभ तो उपरत हुआ ॥ तब सत्यकाम प्रातःकाल गौवोंको आचार्यके गृहकी ओर लेचला जब सायंकाल हुआ तब सब गौवें इकट्ठा करके स्थित हुआ और काष्ठोंसे अग्निको प्रज्वलित करके अग्निके सन्मुख और गौवोंके समीप बैठा, तब अग्निने संभाषण किया कि हे सत्यकाम, मैं ब्रह्मके द्वितीय पादका उपदेश करता हूं, सत्यकामने कहा॥ कहो भगवन्! अग्नि बोले ॥ पृथिवी, अन्तरिक्ष, स्वर्ग, समुद्र यह चार कलावाला ब्रह्मका द्वितीय पाद है ॥ इस पादका नाम अनन्तवान् है ॥ जो ध्याता पुरुष इस पादका ध्यान करता है, सो अनन्त लोकोंको प्राप्त होता है ॥ ब्रह्मके तृतीय पादको (तेरेतई) तुझको हंस रूपसे सूर्य उपदेश करैंगे ॥ प्रातःकाल सत्यकाम गौवोंको आचार्यके गृहकी और फिर ले चला और रात्रिमें अग्निके सन्मुख स्थित हुआ, तिस समय हंसरूप सूर्य कहते भये ॥ हे सत्यकाम ! अग्नि, सूर्य, चंद्र, विद्युत यह चार कलावाला ब्रह्मका तृतीय पाद है, इस पादका नाम ज्योतिष्मान् है, जो पुरुष इस ज्योतिष्मान पादका ध्यान करता है, सो ध्याता पुरुष ज्योतिष्मान् लोकोंको प्राप्त होता है ॥ हे सत्यकाम ! मद्गुनामक जलचर पक्षी तेरेको ब्रह्मका चतुर्थ पाद कहैगा ॥ मद्गुसे यहां प्राणका ग्रहण करना ॥ सो

प्राणरूप मद्गुने सायंकालमें कहा हे सत्यकाम ! मैं तुझको ब्रह्मके चतुर्थ पादका उपदेश करता हूँ ॥ सत्यकाम बोले ॥ कहो भगवन् ! मद्गु बोले ॥ प्राण चक्षु, श्रोत्र, मन यह चार कलावाला ब्रह्मका चतुर्थ पाद है ॥ इस पादका नाम आयतनवान् है । जो पुरुष इस आयतनवान् नामक ब्रह्मके पादका ध्यान करता है, सो पुरुष सावकाश लोकोंको प्राप्त होता है ॥ पश्चात् सो सत्यकाम गौवों सहित अपने आचार्यके गृहमें प्राप्त हुआ और उसने आचार्यको दंडवत किया ॥ आचार्यने कहा, हे सत्यकाम ! जैसे ब्रह्मवेत्ता प्रसन्नवदन तथा चिन्तारहित कृतार्थ होते हैं- तैसे तुभी प्रसन्नवदनत्वादि लिंगोंसे ब्रह्मवित्‌की नांई प्रतीत होता है ॥ तुमको किसने उपदेश किया है॥ सत्यकाम बोला ॥ हे भगवन् ! मुझको देवतावोंने उपदेश किया है ॥ हे भगवन्, तुम्हारे अतिरिक्त किसकी सामर्थ्य है कि जो मुझ आपके शिष्यको उपदेश करसकै ॥ तुम्हारे शापसे सर्व मनुष्य भयभीत हैं ॥ हे भगवन ! मुझको देवतावोंने उपदेश किया भी है, परन्तु मैंने आपसदृश ऋषियोंसे यह श्रवण किया है कि अपने गुरुसे प्राप्त भई विद्या श्रेष्ठ फलको प्राप्त करती है, यातें हे भगवन् ! मेरी इच्छा है कि आप कृपा कर मुझको ब्रह्मविद्याका उपदेश करो ॥ यह वचन सुनकर आचार्य उपदेश करता भया ॥ हे सत्यकाम ! देवतावोंने जो तुमको पृथक् पृथक् ब्रह्मके पाद निरूपण किये हैं, तिनके ध्यानसे

पुरुष कृतार्थ नहीं होता, यह जो षोडश कल ब्रह्म चतुष्पाद है, ऐसी समस्त उपासनासेही फल प्राप्त होता है ॥ षोडशकल ब्रह्म चतुष्पाद निरूपण समाप्त हुआ ॥

अथ सत्यकाम आचार्य तथा उपकोसल शिष्य सम्वाद नेत्रस्थ द्रष्टा आत्मारूप ब्रह्मका निरूपण।

आचार्य बोले ॥ हे उपकोसल ! प्रथम मैं तेरे ताईं सविशेष ब्रह्मज्ञानके माहात्म्यको कथन करता हूँ ॥ जैसे कमलपत्रमें जलोंका सम्बन्ध होता नहीं, तैसे ब्रह्मज्ञानीमें पापकर्मका सम्बन्ध होता नहीं ॥ उपकोसल बोले ॥ हे भगवन् ! आप कृपाकारी ब्रह्मका उपदेश करो ॥ आचार्य बोले ॥ हे सौम्य ! निवृत्त तृष्णावाले तथा जित इन्द्रिय शान्तात्मा जिस पुरुषको द्रष्टारूपसे नेत्रमें स्थित जानते हैं ॥ यह द्रष्टापुरुषही सर्वप्राणियोंका आत्मा है ॥ यह आत्माही अविनाशी,अभय, व्यापक ब्रह्मस्वरूप है ॥ इस उपकोसलको जिस आत्माका उपदेश अग्नियोंने कं (प्राण) खं (हृदयाकाश) रूपसे कथन किया था ॥ तिस आत्माकाही उपदेश द्रष्टारूपसे अब आचार्यने किया, कोई भिन्न न जानना ॥ यह द्रष्टाआत्मा असंग है ऐसे नेत्रस्थ द्रष्टाआत्माके ध्याननिमित्त तिस द्रष्टाआत्माके गुणोंको कथन करते हैं ॥ इस

नेत्रस्थ आत्माको संयद्वाम नामसे कथन करते हैं ॥ संयद्वाम इस पदका यह अर्थ है ॥ सर्व प्राणिमात्रके कर्मोंके फल इस द्रष्टा पुरुषको आश्रय करकेही उत्पन्न होते हैं, याते इस नेत्रस्थ पुरुषको संयद्वाम कहते हैं, और इस आत्माको वामनी कहते हैं॥ सर्व प्राणियोंके अपने कर्मोंके फलोंको यह आत्माही प्राप्त करता है ॥ याते इस आत्माको वामनी कहते हैं, और इस द्रष्टाआत्माको भामनी कहते हैं ॥ यह नेत्रस्थ आत्माही सूर्य चन्द्रादि रूप हुआ सर्वका प्रकाश करता है, याते इस द्रष्टाआत्माको भामनी कहा है ॥ जो उपासक पुरुष इस नेत्रस्थ पुरुषका ब्रह्म रूपसे ध्यान करता है। सो ध्याता पुरुषभी सर्व कर्मफलोंको प्राप्त होता है, तथा प्राणियोंके कर्मोंके फलोंका प्राणियोंको प्राप्त करनेवाला होता है, और सर्वलोकोंमें प्रकाश करता है, और इस उपासकके शरीरसे प्राणके वियोगरूप मरण हुए तिस उपासकके मृत शरीरका पश्चात् पुत्र शिष्यादि दाहादि रूप संस्कार करै अथवा न करै, सो उपासक तो ब्रह्मलोकमें अवश्य प्राप्त होवैगा ॥ नेत्रस्थ द्रष्टाआत्मारूप ब्रह्मका निरूपण समाप्त हुआ ॥ ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ॥ इति ॥

पंचाग्नि विद्यासम्बन्धी मंत्रोंका अक्षरार्थ राजा जैवलि व गौतम (उद्दालक) सम्वादसे

(१) हे गौतम! स्वर्गलोक प्रसिद्ध अग्नि है, तिसका आदित्यही समिधा है, किरण धूम है, दिवस ज्वाला है, चन्द्रमा

अंगार है, नक्षत्र तिसके विस्फुलिंग (चिनगारियां) हैं तिस अग्निमें देवता श्रद्धाकी आहुति करते हैं तिस आहुतिसे सोम-राजा उत्पन्न होता है ॥

(२) हे गौतम! पर्जन्यही अग्नि है, तिसका वायुही समिध है, अभ्र धूम है, बिजली ज्वाला है, बिजलीका चमत्कार अंगार है, गर्जना विस्फुलिंग है, तिस अग्निमें देवता सोमरा-जाको आहुति करते हैं, तिस आहुतिसे वर्षा उत्पन्न होती है ॥

(३) हे गौतम ! पृथिवीही अग्नि है, तिसका सम्वत्सरही समिधा है, आकाश धूम है, रात्रि ज्वाला है, दिशा अंगार है, अवान्तर दिशा चिनगारियां हैं ॥ तिस अग्निमें देवता वर्षाकी आहुति करते हैं, तिस आहुतिसे अन्न उत्पन्न होताहै ॥

(४) हे गौतम ! पुरुषही अग्नि है, तिसकी वाणी ही समिधा है, प्राण धूम है, जिह्वा ज्वाला है, चक्षु अंगार है, श्रोत्र चिनगारियां हैं, तिस अग्निमें देवता अन्नकी आहुति करते हैं तिस आहुतिसे रेत (वीर्य) उत्पन्न होता है ॥

(५) हे गौतम ! स्त्रीही अग्नि है, तिसका उपस्थ समिधा है, तिसका उपमंत्रण धूम है, योनि ज्वाला है, भोग करना अंगार है, आनन्द चिनगारियां हैं, तिस अग्निमें देवता वीर्य्य-की आहुति करते हैं, तिस आहुतिसे गर्भ उत्पन्न होता है ॥ इति ॥

पंचाग्नि जाननेका फल।

जो पुरुष पंचाग्निको सम्यक्प्रकारसे जानता है, उसको ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है ॥ इति ॥

आत्मपुराणके छठे अध्यायमें वर्णित बृहदारण्य-कयाज्ञवल्क्यकांडसे यमकिंकरोंका पापी जीवों-के प्रति उपासनादि शुभकर्मोंके न करनेके धिक्काररूप सदुपदेशसे पंचछिद्रयुक्त हृदयकमलका ध्याननिरूपण।

इस पुरुषके हृदयकमलमें पंच छिद्र हैं, तहां पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर इन चार दिशाओंमें चार छिद्र हैं और पंचम छिद्र तिस हृदयकमलके ऊर्ध्व भागमें है। अधिदैवरूप आदित्यसे युक्त जो चक्षु इन्द्रिय है, तिस चक्षुइन्द्रियका अध्यात्मरूप प्राण आश्रय है। और तिस अध्यात्मरूप प्राणका हृदयकमलका पूर्व दिशाका छिद्र आश्रय है ॥ १ ॥ अधिदैवरूप अग्निसे युक्त जो वाक इन्द्रिय है, तिस वाक इन्द्रियका अध्यात्मरूप अपान आश्रय है, और तिस अध्यात्मरूप अपानका हृदयकमलके दक्षिणदिशाका छिद्र आश्रय है ॥ २ ॥ अधिदैवरूप दिक् (दिशा) से युक्त जो श्रोत्र इन्द्रिय है, तिस श्रोत्र इन्द्रियका अध्यात्मरूप व्यान आश्रय है, और तिस अध्यात्मरूप व्यानका हृदयकमलके पश्चिम दिशाका

छिद्र आश्रय है ॥ ३ ॥ अधिदैवरूप पर्जन्य (चन्द्रमा) से युक्त जो मन है, तिस मनका अध्यात्मरूप समान आश्रय है, और तिस अध्यात्मरूप समानका हृदयकमलके उत्तर दिशाका छिद्र आश्रय है ॥ ४ ॥ अधिदैवरूप आकाशसे युक्त जो वायु है, तिस वायुका अध्यात्मरूप उदान आश्रय है, और तिस अध्यात्मरूप उदानका हृदयकमलका ऊर्ध्वछिद्र आश्रय है ॥ ५ ॥ इस प्रकार पंच छिद्रोंसे युक्त जो हृदय-कमल है, तिस हृदयकमलमें सत्यकाम, सत्यसंकल्प इत्यादिक गणोंसे विशिष्ट जो निर्गुणब्रह्म है तिसका ध्यान जो पुरुष करता है, सो पुरुषभी ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है ॥ इति ॥ यमराज, नचिकेतासंवाद कठवल्ली उपनिषदसे ॥ श्रुति ॥ न प्राणेन नापानेन मर्त्यो जीवति कश्चन । इतरेण तु जीवन्ति यस्मिन्नेतावुपाश्रितौ ॥ १ ॥ अर्थ ॥ कोईभी मनुष्य प्राण अरु अपान करके जीवता नहीं । अन्यसेही जीवते हैं, तिसके होते स्थितिको पाते हैं अर्थात संघातके धर्मसे विलक्षण, संघातके स्वामी आत्मा जिसके आश्रित प्राण अपान है, सो संघातरूप हुए मनुष्य जीते हैं अर्थात् प्राणको धारते हैं ॥ ॥ इति ॥

अथ पंचाग्नि विद्यारूप उपासना विधिनिरूपण ॥

ब्रह्मलोकके प्राप्तिकी इच्छा जिस पुरुषको हो, तथा अग्नि-होत्र जिस्के गृहमें हो सो पुरुष पंचाग्निविद्याका अधिकारी है॥

सो अधिकारी पुरुष, स्वर्ग १ मेघ २ मनुष्यलोक ३ पुरुष ४ योषित ५ इन पांचोंको अग्निरूपसे ध्यान करे ॥ जैसे लोक प्रसिद्ध अग्निको काष्ठादिक प्रज्वलित करते हैं, यातें काष्ठादिक लोक प्रसिद्ध अग्निकी समिधा हैं। तैसे स्वर्गलोकके प्राप्तिके साधन जो पुण्यकर्म हैं, तिन पुण्यकर्मोंमें आदित्य भगवानही प्रवृत्ति करते हैं। इस कारण सो आदित्य भगवान स्वर्गरूप अग्निकी समिधा है ॥ १ ॥ सम्वत्सर करके जलका संग्रह करनेहारे जो मेघ हैं, सो मेघ वर्षाकालमें वृष्टि करनेमें समर्थ होते हैं, इसकारणसे सम्वत्सर मेघरूप अग्निकी समिधा है ॥ २ ॥ सम्पूर्ण लोकोंका आधाररूप जो यह पृथिवी है, तिस पृथिवीसे यह मनुष्यलोक शोभायमान है, इसकारणसे सो पृथिवी मनुष्यलोकरूप अग्निकी समिधा है ॥ ३ ॥ यह मनुष्य सम्भाषण कालमें प्रसारित मुखसे शोभायमान होता है, इस कारणसे सो प्रसारित मुख पुरुषरूप अग्निकी समिधा है ॥ ४ ॥ पुत्रादिक सन्तानका जिससे निर्गमन होता है, ऐसा जो योषितकी उपस्थ इन्द्रिय है, तिस उपस्थ इन्द्रियसे योषित शोभायमान होती है, इसकारणसे सो उपस्थ इन्द्रिय योषित रूप अग्निकी समिधा है ॥ ५ ॥ अब स्वर्गादिक पंच अग्नियोंके धूमरूपसे ध्यान करने योग्य जो पदार्थ हैं, तिनका निरूपण करते हैं ॥ जैसे लोकप्रसिद्ध अग्निमें काष्ठरूप समिधासे धूमकी उत्पत्ति होती है, तैसे आदित्यरूप समिधा

से किरणोंकी उत्पत्ति है, इस कारणसे सो किरणें स्वर्गरूप अग्निका धूम हैं॥ १॥ सम्वत्सररूप समिधासे श्वेत मेघोंकी उत्पत्ति होती है, इस कारणसे सो श्वेत मेघरूप अग्निका धूम है ॥ २ ॥ काष्ठमय पृथिवीरूप समिधा से लोक प्रसिद्ध अग्नि उत्पन्न होता है, इसकारणसे सो अग्नि मनुष्यलोकरूप अग्निका धूम है ॥ ३ ॥ प्रसारित मुखरूप समिधासे प्राणरूप वायुकी उत्पत्ति होती है, इसकारणसे सो प्राणरूप वायु पुरुषरूप अग्निका धूम है ॥ ४ ॥ उपस्थरूप समिधसे लोमोंकी उत्पत्ति होती है, इस कारणसे सो लोम योषितरूप अग्निका धूम है ॥ ५ ॥ अब स्वर्गादिक पंच अग्नियोंके ज्वालारूपसे ध्यान करने योग्य जो पदार्थ हैं, तिन पदार्थोंका निरूपण करते हैं ॥ जैसे प्रसिद्ध अग्निकी ज्वाला काष्ठरूप समिधासे उत्पन्न होती है तथा प्रकाशक है, तैसे दिन आदित्यरूप समिधासे उत्पन्न है, तथा प्रकाशक है, इस कारणसे सो दिन स्वर्गरूप अग्निकी ज्वाला है ॥१॥ विद्युत सम्वत्सररूप समिधासे जन्य है तथा प्रकाशक है, इस कारणसे सो विद्युत मेघरूप अग्निकी ज्वाला है ॥ २ ॥ अन्धकारमय रात्रि कृष्णवर्णवाली पृथिवीरूप समिधासे जन्य है तथा निशाचर जीवोंको प्रकाश करनेहारी है, इस कारणसे सो रात्रिमनुष्य लोकरूप अग्निकी ज्वाला है ॥ ३ ॥ वाक् इन्द्रियप्रसारित मुखरूप समिधासे जन्य है, तथा अर्थका

प्रकाशक है, इस कारणसे सो वाक् इन्द्रिय पुरुषरूप अग्निकी ज्वाला है ॥४॥ गोलकरूप योनि उपस्थ इन्द्रियरूप समिधासे जन्य है, तथा अग्निकी ज्वाला समान रक्तवर्ण करके प्रकाशमान है, इस कारणसे सो योनियोषितरूप अग्निकी ज्वाला है ॥ ५ ॥ अब स्वर्गादिक पंच अग्नियोंके अंगाररूपसे ध्यान करने योग्य जो पदार्थ हैं, तिनका निरूपण करते हैं ॥ जैसे लोकप्रसिद्ध अग्निकी ज्वालाके उपशमकालमें अंगार प्रकाशमान होते हैं, तैसे दिनरूप ज्वालाके उपशमरूप सन्ध्याकालमें पूर्वादिक चार दिशा नानारूपसे प्रकाशमान होती हैं इस कारण पूर्वादिक चारदिशा स्वर्गरूप अग्निके अंगार हैं ॥ १ ॥ विद्युतरूप ज्वालाके उपशमकालमें वज्ररूप अशनि प्रकाशमान होता है, इस कारणसे सो अशनि मेघरूप अग्निके अंगार हैं ॥ २ ॥ रात्रिरूप ज्वालाके उपशमकालमें मन्द प्रभावाला चन्द्रमा प्रकाशमान होता है, इस कारण सो चन्द्रमा मनुष्यलोकरूप अग्निका अंगारहै ॥ ३ ॥ वाक् इन्द्रियरूप ज्वालाके उपशमकालमें चक्षु इन्द्रिय प्रकाश करता है, इस कारणसे सो चक्षु इन्द्रियपुरुषरूप अग्निके अंगार हैं ॥ ४ ॥ योनिरूप ज्वालाके उपशमकालमें मैथुनके मध्यकालमें जो आनन्द होता है, सो आनन्द योषितरूप अग्निके अंगार हैं अब स्वर्गादिक पंचअग्नियोंके विस्फुलिंग (चिनगारियां) रूपसे ध्यान करने योग्य जो पदार्थ हैं, तिन

पदार्थोंका निरूपण करते हैं ॥ जैसे लोक प्रसिद्ध अग्निके विस्फुलिंग होते हैं, तैसे ई ान कोणसे आदि लेकर जो चार उपदिशा हैं, सो उपदिशा स्वर्गरूप अग्निके विस्फुलिंग हैं ॥ १ ॥ मेघोंका गर्जनारूप जो शब्द है, सो शब्द मेघरूप अग्निके विस्फुलिंग है ॥ २ ॥ यज्ञादिक कर्मोंको करनेहारे जो कर्मी पुरुष हैं, ते कर्मी पुरुषही इस मनुष्यलोकमें तारागणरूपसे परिणामको प्राप्त होते हैं, इस कारणसे तारागण मनुष्यलोकरूप अग्निके विस्फुलिंग हैं ॥ ३ ॥ श्रोत्रादिक जन्य जो शब्दाकार वृत्तियां हैं, सो वृत्तियां पुरुषरूप अग्निके विस्फुलिंग हैं ॥ ४ ॥ आलिंगनादिकोंसे उत्पन्न भये जो आनन्द हैं, सो आनन्द योषितरूप अग्निके विस्फुलिंग हैं ॥ ५ ॥ अब स्वर्गादिक पंचअग्नियोंके आहुतिरूपसे ध्यान करने योग्य जो पदार्थ हैं, तिन पदार्थोंका निरूपण करते हैं ॥ जैसे प्रसिद्ध अग्निके यव घृतादिक पदार्थ आहुति होते हैं ॥ तैसे श्रद्धा स्वर्गरूप अग्निकी आहुति है। यहां श्रद्धाशब्दसे श्रद्धापूर्वक करे हुए जो अग्निहोत्रादिक कर्म हैं ॥ तिन कर्मोंसे उत्पन्न भया जो धर्मरूप अपूर्व है और जो धर्मरूप अपूर्व इस जीवात्माके साथ परलोकमें जाता है। तिस धर्मरूप अपूर्वका ग्रहण करना ॥ १ ॥ सो धर्मरूप श्रद्धा स्वर्गमें जाकर तिस कर्मी पुरुषके सोममय शरीरको रचता है, वहां भोगकी समाप्तिकालमें शोकरूप अग्निसे सो सोममय शरीर

प्रकाशक है, इस कारणसे सो वाक् इन्द्रिय पुरुषरूप अग्निकी ज्वाला है ॥४॥ गोलकरूप योनि उपस्थ इन्द्रियरूप समिधासे जन्य है, तथा अग्निकी ज्वाला समान रक्तवर्ण करके प्रकाशमान है, इस कारणसे सो योनियोषितरूप अग्निकी ज्वाला है ॥ ५ ॥ अब स्वर्गादिक पंच अग्नियोंके अंगाररूपसे ध्यान करने योग्य जो पदार्थ हैं, तिनका निरूपण करते हैं ॥ जैसे लोकप्रसिद्ध अग्निकी ज्वालाके उपशमकालमें अंगार प्रकाशमान होते हैं, तैसे दिनरूप ज्वालाके उपशमरूप सन्ध्याकालमें पूर्वादिक चार दिशा नानारूपसे प्रकाशमान होती हैं इस कारण पूर्वादिक चारदिशा स्वर्गरूप अग्निके अंगार हैं ॥ १ ॥ विद्युतरूप ज्वालाके उपशमकालमें वज्ररूप अशनि प्रकाशमान होता है, इस कारणसे सो अशनि मेघरूप अग्निके अंगार हैं ॥ २ ॥ रात्रिरूप ज्वालाके उपशमकालमें मन्त्र प्रभावाला चन्द्रमा प्रकाशमान होता है, इस कारण सो चन्द्रमा मनुष्यलोकरूप अग्निका अंगारहै ॥ ३ ॥ वाक् इन्द्रियरूप ज्वालाके उपशमकालमें चक्षु इन्द्रिय प्रकाश करता है, इस कारणसे सो चक्षु इन्द्रियपुरुषरूप अग्निके अंगार हैं ॥ ४ ॥ योनिरूप ज्वालाके उपशमकालमें मैथुनके मध्यकालमें जो आनन्द होता है, सो आनन्द योषितरूप अग्निके अंगार हैं अब स्वर्गादिक पंचअग्नियोंके विस्फुलिंग (चिनगारियां) रूपसे ध्यान करने योग्य जो पदार्थ हैं, तिन

आदित्य उसका चक्षु है, अरु पृथग्वर्त्मात्मा इस नामवाला वायु उसका प्राण है, और बहुल नामवाला आकाश उसका मध्यका शरीर है, अरु रयि नामवाला जल उसका मूत्रसंग्रहका स्थान (उपस्थ) है, अरु पृथिवी उसके पाद हैं ॥ इस प्रकार विराटरूप शरीरके छओं अंगोंमें व्याप्त जो एक चैतन्य आत्माहै, तिसकी उपासनाके अर्थ उपासकों प्रति विधिके अर्थ ही राजाका यह वचन है (अर्थात् राजाने उन ऋषियोंसे प्रधान वैश्वानरविद्या कही, अब आगे तिसका अंगभूत प्राणाग्निहोत्र विद्याविधि और तिसका फल दिखानेकी कामनासे भूमिका कहते हैं) समष्टि विराट शरीरके उक्त सर्व अवयवोंमें व्याप्त जो एक चैतन्य आत्मा वैश्वानर है, सोई व्यष्टि शरीरके मस्तकादिक पादपर्यन्त व्याप्तभी सोई चैतन्य आत्मा वैश्वानर है, तातें व्यष्टिसमष्टि उभय उपाधिमें व्याप्त एक चैतन्य आत्मा है, इस कारण वैश्वानरके उपासकको अभेद उपासना कर्तव्य है, कि जिसको अहमग्रे उपासना कहते हैं, अर्थात् जैसे वैश्वानर आत्मा समष्टि विराट है, सोई मैं व्यष्टिविराटका आत्मा हूँ, इस प्रकारके अभेद अनन्य उपासकके अर्थ प्राणाग्निहोत्रविधि कहते हैं ॥ राजा अश्वपतिने उन ऋषियोंसे कहा कि उक्त प्रकारके वैश्वानरके भोजनकालमें प्राणाग्निहोत्रकी विधि श्रवण करो । उक्तप्रकारके उपासकका जो उदर है, सोई वेदी है (आकारकी सामान्यता होनेसे)

द्रवीभावको प्राप्त होकर मेघोंमें प्राप्त होता हैं, इस कारणसे जीव-मिश्रित सोम मेघरूप अग्निकी आहुति है ॥ २ ॥ और तिन मेघोंसे अनन्तर सो वृष्टिरूपसे इस मनुष्यलोकमें प्राप्त होता है, इस कारणसे सो जीवमिश्रित वृष्टि मनुष्यलोकरूप अग्निकी आहुति है ॥ ३ ॥ तिस वृष्टिसे अनन्तर अन्नरूपसे जो पुरुषविषे प्राप्त होता है, इस कारण सो जीवमिश्रित अन्न पुरुषरूप अग्निकी आहुति है ॥ ४ ॥ तिस पुरुषसे अनन्तर सो रेतरूपसे योषितविषे प्राप्त होता है, इस कारण सो जीव मिश्रित रेत योषितरूप अग्निकी आहुति है ॥ ५ ॥ और यजमान पुरुषके इन्द्रियादिक करणोंके अधिष्ठातारूप जो इन्द्रादिक देवता हैं, ते इन्द्रादिक देवता स्वर्गादिक पंचअ-ग्नियोंमें श्रद्धादिक पंच आहुतियोंको हवन करनेहारे हैं ॥ इस प्रकार स्वर्गादिक पांचोंको अग्निरूपसे ध्यान करनेहारा पुरुषभी ब्रह्मलोकमें जाता है ॥इति॥ इस प्रकार आत्मपुराणके छठे अध्यायमें लिखा है ॥

राजा अश्वपति तथा प्राचीन शाल आदि पट ऋषियोंका सम्वाद ।

वैश्वानरविद्या तथा प्राणाग्निहोत्र विद्याविधि निरूपण ।

हे ब्राह्मणो ! प्रसिद्ध सर्वात्मा वैश्वानरका सुतेजा नामवाला द्युलोक (सत्यलोक) मस्तक है, अरु विश्वरूप नामवाला

आहुतिसे प्राण तृप्त होता है ॥ १ ॥ प्राणके तृप्त हुए चक्षु तृप्त होता है, चक्षुके तृप्त हुए आदित्य तृप्त होता है, आदित्यके तृप्त हुये द्युलोक तृप्त होता है, द्युलोकके तृप्त हुए जो कुछ द्यौ अरु आदित्यमें तिसके अधिष्ठातादि अधिष्ठित हैं सो तृप्त होते हैं, तिनके तृप्त होनेसे तिस हवनकर्ताकी (बाधितानुवृत्तिमाण) अनुतृप्ति होती है, इसप्रकार प्रत्यक्षहै । प्रजा (करके) से पशु (करके) से अन्नादि पुनः शारीरक तेज (करके) से अरु अपने वेदशाखाके स्वाध्याय करने बुद्धिकी तेज (करके) से उक्त प्रकारके प्राणाग्निहोत्रकर्ताकी तृप्ति होती है ॥ १ ॥

(२) तिस प्रथम आहुतिके अनन्तर "व्यानाय स्वाहा" इस मंत्रसे द्वितीय आहुति करै, तिस आहुतिसे व्याननामा प्राण तृप्त होता है ॥ १ ॥ व्यानके तृप्त हुए श्रोत्र तृप्त होता है, श्रोत्रके तृप्त हुए चन्द्रमा तृप्त होता है, चन्द्रमाके तृप्त हुए दिशायें तृप्त होती हैं, दिशाओंके तृप्त होनेसे जो कुछ दिशाओंमें और चन्द्रमामें उनके स्वामित्वभावसे (अरु प्रजासे) अधिष्ठित है तिनकी तृप्ति होती है, तिनकी तृप्तिसे (बाधितानुवृत्तिप्रमाण) उस भोक्ता विद्वानकी तृप्ति होती है प्रजासे (करके) पशुसे (करके) अन्नादि भोग्य पदार्थोंसे (करके) और शारीरक तेजसे (करके) अरु अपने वेदशाखाके स्वाध्यायनिमित्तक बुद्धिके प्रकाशसे (करके) उस विद्वानकी तृप्ति होती है ॥ २ ॥

अरु उदरके ऊपरके जो रोम हैं सोई वर्हि (कुशा) हैं।जैसे वेदी (हवनकी सामग्रीके रखनेका स्थान) ऊपर कुशास्तरण (कुशा बिछी) होती हैं । अरु उस उपासकका हृदय गार्ह्यपत्य अग्नि है, अरु मन प्रजापति नामवाला वा दक्षिणाग्नि नामवाला अग्नि है । "*गार्हपत्यात्प्रणीयते ।*" इस श्रुतिके प्रमाणसे दक्षिणाग्नि जो है सो गार्हपत्याग्निसे निकाला हुआ होता है । तैसेही मनरूप दक्षिणाग्नि हृदयरूप गार्हपत्याग्निसे निकला होनेसे मन दक्षिणाग्नि है, और उपासकका मुख आहवनीय अग्नि है, आहवनीय अग्नि उसको कहते हैं कि जिसमें हवन किया जाय ॥ सामान्य रीतिसे वर्णत्रयके पुरुषोंके अर्थ और विशेष करके अग्निहोत्रके कर्ता वैश्वानरके उपासकके अर्थ उनके भोजनकालमें भोजनके पात्रमें प्रथम वह अन्न आना चाहिये जिसमें लवणका योग (संस्कार) न होय, तहां विशेपकरके प्रायः घृत युक्त ओदन (भात) भोजनपात्रमें आना चाहिये क्योंकि सो हवनका मुख्य द्रव्य है ॥ भोजनकालमें प्रथम प्राप्तहुए अन्नको सो भोक्ता नीचे लिखीहुई रीतिसे प्राणाग्निमें हवन करै (१) भोजनार्थ प्रथम प्राप्त हुए उक्त प्रकारके अन्नको विद्वान्, अंगुष्ठ, मध्यमा अरु अनामिका इन तीन अंगुलीकी पूर्ण चुटकीसे ग्रासमात्र ग्रहण कर "प्राणाय स्वाहा" इस मंत्रको पढकर मुखमें डाले और उसको दाँतोंसे चबाये बिना कंठमें उतार ले, तब तिस

प्रभासे तज्जन्य अर्थ प्रकाशसे (करके) सो विद्वान तृप्त होता है ॥ २ ॥

(५) चतुर्थ आहुतिके अनन्तर "उदानाय स्वाहा" इस मंत्रसे पंचम आहुति करै, तिस आहुतिसे उदान नाम प्राण तृप्त होता है, उदानके तृप्त हुए वायु तृप्त होता है, वायुके तृप्त हुए आकाश तृप्त होता है, आकाशके तृप्त हुए जो कुछ आकाश अरु वायुमें अधिष्ठाता अरु प्रजारूपसे अधिष्ठित है, सो सर्व तृप्त होते हैं, अरु तिनकी अनुतृप्तिसे वह प्राणाग्निहोत्रका कर्त्ता सर्वत्र अन्नका भोक्ता विद्वान तृप्त होता है, किससे तृप्त होता है? ॥ उत्तर ॥ पुत्रादिक प्रजासे करके गौ आदिक पशुओंसे अन्न, सुवर्णादि द्रव्य भोग्य पदार्थोंसे अरु नीरोगतादि निमित्तक शारीरक तेजसे अरु अपने वेदशाखाके स्वाध्यायजन्य वैश्वानरादि विद्याके सम्यक् ज्ञान निमित्तक बुद्धिके तेजसे वह उक्त प्रकार वैश्वानर आत्माके सम्यक् ज्ञानपूर्वक प्राणाग्निहोत्रका कर्ता विद्वान् तृप्त होता है ॥ इति ॥

हे सौम्य ! (पुनः वह वैश्वानरविद्याका सम्यक् ज्ञाता राजा अश्वपति उन प्राचीन शालादि ऋषि, जो वैश्वानर विद्याकी सत्यजिज्ञासाधारके उस राजाके समीप प्राप्त हुए तिनके प्रति कहता भया कि हे ब्राह्मणो ! जो कोई इस (उक्त प्रकारकी) वैश्वानर विद्याकी अभेद ज्ञानपूर्वक प्राणाग्निहोत्रको

(३) द्वितीय आहुतिके अनन्तर " अपानाय स्वाहा" इस मंत्रसे तृतीय आहुतिको हवन करै, तिस आहुतिसे अपान नाम प्राण तृप्त होता है ॥ १ ॥ अपानके तृप्त हुए वाक् तृप्त होती है। वाक्के तृप्त हुए अग्नि तृप्त होता है, अग्निके तृप्त हुए पृथिवी तृप्त होती है। पृथिवीके तृप्त हुए जो कुछ पृथिवी अरु अग्निविषे अधिष्ठातादि रूपसे अधिष्ठित हैं सो तृप्त होते हैं, तिनके तृप्त होनेसे (बाधितानुवृत्तिप्रमाण) वह भोक्ता विद्वान तृप्त होता है। प्रजा (करके) से पशु (करके) से अन्नादि भोग्य पदार्थों (करके) से अरु शारीरक तेजसे (करके) अरु अपने वेदशाखाके स्वाध्याय निमित्तक विद्या-के तेज (करके) से वह विद्वान तृप्त होता है ॥ २ ॥

(४) तृतीय आहुतिके अनन्तर " समानाय स्वाहा " इस मंत्रसे चतुर्थ आहुतिको हवन करै, तिस आहुतिसे समान नामवाला प्राण तृप्त होता है ॥ १ ॥ तिस समानके तृप्त हुए मन तृप्त होता है, मनके तृप्त हुए पर्जन्य तृप्त होता है, पर्जन्य-के तृप्त हुए विद्युत तृप्त होता है, विद्युतके तृप्त हुए जो कुछ पर्जन्य अरु विद्युतमें स्वामित्व अरु प्रजाभावसे अधिष्ठित हैं सो तृप्त होते हैं, तिनकी अनुतृप्तिसे वह भोक्ता विद्वान तृप्त होता है, प्रजासे (करके) पशुसे (करके), अन्नादि भोग्य पदार्थोंसे (करके) अरु शारीरक तेजसे (करके) और अपने वेदशाखाके स्वाध्याय करनेके

देवता लेजाता है ॥ १ ॥ वहांसे उनको सम्वत्सरका अभिमानी देवता ले जाता है, तब उस सम्वतसरके अभिमानी देवतासे आगे उनको आदित्याभिमानी देवता लेजाता है, तहांसे चन्द्राभिमानी देववा लेजाता है, तहांसे उनको विद्युत का अभिमानी देवता लेजाता है, तब वहांसे उनको ब्रह्माकी मानससृष्टिका पुरुष ब्रह्मलोकको प्राप्त करता है, इस प्रकार चारों आश्रमके विद्वान, तपस्वी, उपासक ब्रह्मलोकको प्राप्त होते हैं, । तब वहां देवतारूप हुए सर्वोत्तम सर्वसे उत्कृष्ट भावको पाकर अनेक दिव्य वर्ष पर्यन्त अथवा जबतक ब्रह्मा वहां निवास करते हैं पुनः इस संसारमें पुनरावृत्तिको पाते नहीं यही उनको अमृतत्वकी प्राप्तिहै ॥ २ ॥ इति ॥

अथ पितृयानमार्गनिरूपण।

इष्ट (अग्निहोत्रादिक वैदिक कर्म) पूर्त, (बावली) कूप आराम (बाग) धर्मशालादिक बनवाना आदि कर्म) तथा नित्यकर्म, श्राद्ध, दान इत्यादि कर्म करनेवाले गृहस्थ मरणोत्तर, प्रथम धूमके अभिमानी देवताको प्राप्त होते हैं, धूमसे रात्रिके अभिमानी देवताको प्राप्त होते हैं, रात्रिसे उनको कृष्णपक्षका अभिमानी देवता लेजाता है, कृष्णपक्षसे दक्षिणायनके षट्मासोंका देवता उनको लेजाता है तिन मासोंसे सम्वत्सरका देवता उनको ले जाता है ॥ ३ ॥ सम्वत्सरसे

न जानता हुआ केवल कर्मरूप अग्निहोत्रको करता है, सो जैसे आहुति करनेके योग्य प्रज्वलित अंगारको त्यागकर भस्ममें आहुति करनेकी भांति उसका सो अग्निहोत्र निष्फल होताहै ॥ इस न्यायसे यह सिद्ध हुआ कि जो पुरुष इस प्रसिद्ध अग्निहोत्रको न करके वैश्वानर विद्याके ज्ञानपूर्वक प्राणाग्निहोत्रको उक्त प्रकारसे करता है तिसको प्रसिद्ध अग्निहोत्रकी (जिसके न करनेसे प्रत्यवाय है) न करनेका प्रत्यवाय न होकर प्राप्ति सिद्ध है ॥ १ ॥

उक्त प्रकारसे जो विद्वान् अग्निहोत्रको हवन करता है तिसका सर्व लोकोंमें, सर्व भूतोंमें, सर्व आत्मोंमें हवन किया होता है ॥ २ ॥ जैसे इषीका (सींक) की रुई अग्निके डालनेसे अति शीघ्र भस्म होती है, तैसेही जो विद्वान् इस उक्त प्रकार अग्निहोत्रको करता है तिसके सर्वपाप अति शीघ्र भस्म होतेहैं ३ ॥

अथ देवयानमार्गनिरूपण ।

यज्ञादिक करनेवाले कर्मकांडी गृहस्थ, सगुण ब्रह्मके उपासक पुरुष तथा नैष्ठिक ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ, तथा वैश्वानरविद्या जाननेवाले पुरुष शरीरको त्याग करके प्रथम आर्चिष (ज्योति) (प्राणकी वृत्तियां) अभिमानी देवताको प्राप्त होते हैं, वहांसे उनको दिवसका अभिमानी देवता ले जाता है, दिवसके अभिमानी देवतासे शुक्लपक्षका अभिमानी देवता ले जाता है पुनः उनको उत्तरायणका षड्मासाभिमानी

देवता लेजाता है ॥ १ ॥ वहांसे उनको सम्वत्सरका अभिमानी देवता ले जाता है, तब उस सम्वतसरके अभिमानी देवतासे आगे उनको आदित्याभिमानी देवता लेजाता है, तहांसे चन्द्राभिमानी देवता लेजाता है, तहांसे उनको विद्युत का अभिमानी देवता लेजाता है, तब वहांसे उनको ब्रह्माकी मानससृष्टिका पुरुष ब्रह्मलोकको प्राप्त करता है, इस प्रकार चारों आश्रमके विद्वान, तपस्वी, उपासक ब्रह्मलोकको प्राप्त होते हैं, । तब वहां देवतारूप हुए सर्वोत्तम सर्वसे उत्कृष्ट भावको पाकर अनेक दिव्य वर्ष पर्यन्त अथवा जबतक ब्रह्मा वहां निवास करते हैं पुनः इस संसारमें पुनरावृत्तिको पाते नहीं यही उनको अमृतत्वकी प्राप्तिहै ॥ २ ॥ इति ॥

अथ पितृयानमार्गनिरूपण।

इष्ट (अग्निहोत्रादिक वैदिक कर्म) पूर्त, (बावली) कूप आराम (बाग) धर्मशालादिक बनवाना आदि कर्म) तथा नित्यकर्म, श्राद्ध, दान इत्यादि कर्म करनेवाले गृहस्थ मरणोत्तर, प्रथम धूमके अभिमानी देवताको प्राप्त होतेहैं, धूमसे रात्रिके अभिमानी देवताको प्राप्त होते हैं, रात्रिसे उनको कृष्णपक्षका अभिमानी देवता लेजाता है, कृष्णपक्षसे दक्षिणायनके षटमासोंका देवता उनको लेजाता है तिन मासोंसे सम्वत्सरका देवता उनको ले जाता है ॥ ३ ॥ सम्वत्सरसे

पितृलोकको पितृलोकसे आकाशके अभिमानी देवताको प्राप्त होते हैं, आकाशके आगे चन्द्रमाको प्राप्त होते हैं कि जो (ब्राह्मणोंका) राजा सोम है सो देवताओंका अन्न है तिसको देवता भक्षण करते हैं ॥ ४ ॥ जबतक कर्मका क्षय नहीं होता तबतक चन्द्रमंडलमें भोग्य भोगकर फिर उसी मार्गसे पुनः इस लोकमें आता है, जैसे यह कहा (तिससे अन्य प्रकारभी कहते हैं) आकाशमें आता है, आकाशसे वायुमें आता है। वायु होकर धूम होता है, धूम होकर अभ्र होता है ॥५॥ अभ्र होकर मेघ होता है, मेघ होकर प्रकर्ष वर्षा होती है तब यहां व्रीहि, यव, औषधि, वनस्पतियां तिल उड़द इत्यादि अन्नरूपसे उपन्न होते हैं, अतएव निश्चय करके अति दुःखसे निकलते हैं, जो जो अन्न खातेहैं जो रेतको (स्त्रीविषे) सिञ्चन करते हैं, तब सो तिसके सदृशही होता है ॥ ६ ॥ वहां जो इस लोकमें शुभाचरणका अभ्यासवाला है सो प्रसिद्ध शुभयोनियोंको प्राप्त होता है, ब्राह्मणयोनि क्षत्रीयोनि वा वैश्ययोनिको,। अथवा जो इस लोकमें अशुभाचरणके अभ्यासवाला है सो अशुभ योनिको प्राप्त होता है, तहां श्वानयोनिको वा शूकरयोनिको वा चांडालयोनिको ॥ ७ ॥ अथ यह जो कहे दो मार्गसे न जाकर अन्य मार्गमेंही जाते हैं, तिनको उक्त प्रकारकी योनि न प्राप्त होकर अति क्षुद्र (तुच्छ) कीट मशकादि योनि अनेकवार प्राप्त होती

हैं, अरु वह जन्मते मरते रहते हैं, तातें यह तृतीय स्थान (गति) है उक्त कारणोंसे स्वर्गलोक पूर्ण नहीं होता ॥ ८ ॥

आत्मज्ञानीका उक्त दोनों मार्गोंसे परलोकगमन न होकर यहांही पर मोक्षपदकी प्राप्तिनिरूपण।

आत्मज्ञानीका कर्म कांडियों और उपासकोंकी भांति अर्चिरादि मार्गद्वारा लोकान्तरमें गमन नहीं होता, बरन उसका जो स्वस्वरूपका यथार्थ ज्ञान है अर्थात् ब्रह्म आत्माका अभेद रूप जो मोक्ष है, सो यहां जीवतेही होता है ॥ श्रुति ॥ "एतदात्म्यमिदꣳसर्वं तत्सत्यꣳस आत्मा तत्त्वमसि" ॥ "ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति" ॥ "तस्मात्तत्सर्वमभवत्" ॥ "न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति, अत्रैव समवलीयन्ते," ॥ इत्यादि श्रुतिशतेभ्यः ॥ इत्यादि सैकडों श्रुतियां प्रमाण हैं ॥ तत्त्वमस्यादि महावाक्यके श्रवणसे जिसको अपने आप नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव अपने आप आत्माका संशय विपर्ययादि सर्व व्यवधानसे रहित सम्यक आत्मसाक्षात्कारका अनुभव निश्चय हुआ है, तिस आत्मज्ञानीका मस्तक विदीर्ण करके सुषुम्ना नाडी द्वारा वा अर्चिरादि मार्गद्वारा उसका लोकान्तरमें गमन नहीं होता। उसका जो स्वस्वरूपके यथार्थ ज्ञानसे ब्रह्म आत्माका अभेद-रूप मोक्ष है सो यहां जीवतेही होता है ॥ यहांही पर सम्यक

प्रकारसे सर्वत्र व्यापक अधिष्ठान ब्रह्ममें लय होता है,' अर्थात जिस चैतन्य अधिष्ठानसे प्राण फुरतेहैं, तिसहीमें लय होतेहैं ॥ श्रुति ॥ " कस्मिन्नहमुत्क्रांतउत्क्रान्तो भविष्यामि । उत्क्रस्मिन्वातिष्ठते प्रतिष्ठास्यामीति ॥ सप्राणमसृजत " ॥ सो परमात्मा प्रथम इच्छा करता हुआ कि मुझ निराकार निर्विशेषका किसके उत्क्रमण (निकलने) से उत्क्रमण होगा और किसके रहनेसे रहना होगा क्योंकि मुझ अक्रिय निराकारमें गमन अरु स्थित होनेरूप व्यापार बने नहीं, अरु गमनादि सर्व व्यापार सिद्ध हुआ चाहिये ॥ ऐसा विचार कर उस परमात्माने अपने गमनागमन वा स्थितिके अर्थ प्रथम प्राणको उपजाया । अतएव उक्त श्रुतिके प्रमाणसे, एक, अद्वैत, सत निराकार, निर्विशेष आत्माके जीवत्वपनेकी प्राप्ति अरु आवागमनकी प्राप्ति जो है, सो प्राणरूप उपाधिके संबन्धसेही है । प्राणसे पृथक् हुएकी गमनागमनरूपा गति उपपन्न नहीं ॥ अरु एक अद्वैत चिदात्माको प्राणसे पृथक हुए जीवपनेकी-भी प्राप्ति नहीं, क्योंकि उस अद्वैत चिदात्माको जो जीव शब्दका वाच्यपना है सो प्राणरूप उपाधिका किया हुआ है ॥ जब सम्यक् आत्मज्ञानसे प्राणरूप उपाधि चैतन्यसत्तासे पृथक होती है, वा प्राण अपने अधिष्ठानमें लय होता है तब उस प्राणरूप उपाधिसे रहित शुद्ध सामान्य, निर्विशेष, सर्वाधिष्ठान चैतन्यमें जीवपनेका अरु गमनागमनकी अरु ब्रह्मसे पृथक् पनेकी कल्पना करनेको कोईभी समर्थ नहीं है ॥ इति ॥

सत्तारूप ब्रह्मनिरूपण आरुणिपिता तथा श्वेतकेतुपुत्रसंवाद ।

हे श्वेतकेतु ! जैसे सूर्यके उदयसे पहिले सर्व ओरसे अंधकार रहता है । तैसे इस जगत्की उत्पत्तिसे पहिले केवल सत्ता शेष रहता है । और इसी कारणरूप सत्ताको मायारूप उपाधिके सम्बन्धसे श्रुति भगवती अव्याकृत नामसे कथन करती है ॥ हे श्वेतकेतु ! इस जगतकी उत्पत्तिसे पूर्व जो सत्तावस्तु कारणरूप होकर स्थित होती है ॥ तथा जिस सत्तारूप कारणको श्रुतिने अव्याकृत नामसे कथन किया है, सो सत्तारूप कारण वस्तु, निर्गुण ब्रह्मरूपही है ॥ जिस निर्गुण ब्रह्मविषे "यतो वाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा सह"॥ इत्यादिक श्रुतियोंने विद्वान् पुरुषोंके मनसहित वाणीकी निवृत्ति (लौट) कथन की है, तथा जिस निर्गुण ब्रह्ममें यह देशकाल, तथा स्थूलसूक्ष्म पदार्थ न तो पूर्व कालमें हुए हैं और न वर्तमान कालमें हैं और न आगे भविष्यत कालमें होंगे ॥ ऐसे निर्गुण ब्रह्ममें जो "सदेव सोम्येदमग्र आसीत" इस श्रुतिने आसीत् (हुवा, था) पदसे पूर्व अतीत (बीता) कालका कथन किया है । सो भी कालकी वासनायुक्त शिष्यकी बुद्धिके अनुसार कथन किया है। वास्तवमें अतीत (बीताहुआ) कालभी तिस ब्रह्ममें नहीं है । अब तिस निर्गुण ब्रह्ममें स्वगत भेद, सजातीय भेद,

विजातीय भेद इन तीनों भेदोंका अभाव निरूपण करते हैं ॥ हे श्वेतकेतु ! जैसे इस लोकमें एकही वृक्ष अपने पत्र, पुष्प, फल, शाखा, स्कन्ध इत्यादि अवयवोंके भेदसे स्वगत भेद वाला होता है, तैसे यह परमात्मादेव निरवयव होनेसे, तिम स्वगत भेदवाला है नहीं ॥ और जैसे इस लोकमें गौ अश्वादिक अपने समान जातिवाले दूसरे गौ अश्वादिकोंसे सजातीय भेदवाले होते हैं, तैसे यह परमात्मादेव सजातीय भेदवालाभी है नहीं और जैसे इस लोकमें तो गौ अश्वादिक अपनेसे विरुद्ध जातिवाले महिषादिकोंसे विजातीय भेदवाले होते हैं,तैसे यह परमात्मादेव तिस विजातीय भेदवालाभी नहीं है ॥ हे श्वेतकेतु! यह परमात्मादेव सजातीय, विजातीय,स्वगव इन तीनों भेदोंसे रहित है ॥ इस कारणसे वेदवेत्ता पुरुप इस परमात्मादेवको सत्तारूप कहते हैं, इतने कथनसे " एकमेवाद्वितीयं" इस श्रुतिमें स्थिव एक शब्दसे तिस परमात्मादेवमें सजातीय भेदका अभाव दिखाया, और तिस श्रुतिमें स्थित एव शब्दसे स्वगतभेदका अभाव दिखाया, और तिस श्रुतिमें स्थिति अद्वितीय शब्दसे विजातीय भेदका अभाव दिखाया ॥ शंका ॥ हे भगवन! इस जगतकी उत्पत्तिसे प्रथम यद्यपि तिस ब्रह्ममें यह कार्य जगत है नहीं । तथापि तिस कालमें माया विद्यमान है ॥ यातें तिस माया करकेही ब्रह्ममें द्वितीयपना सिद्ध होगा ॥ समाधान ॥

हे श्वेतकेतु! तिस निर्गुण ब्रह्ममें जगतकी कारणताकी सिद्धि करनेहारी सो माया यद्यपि द्वितीयरूपसे संभावना होती है, तथापि तिस ब्रह्ममें सो माया वास्तवसे है नहीं ॥ किन्तु तिस माया करके मोहित अज्ञानी जीवही तिस मायाको ब्रह्ममें देखते हैं। इस कारण सो माया तिस ब्रह्ममें मायासेही सिद्ध है ॥ जैसे हम मनुष्योंको प्रत्यक्ष प्रमाणसे सिद्ध जो दिन है, तिस दिनको उलूक पक्षी रात्रि मानते हैं। तहां दिनको रात्रि माननेमें तिस उलूक पक्षीका अपना अनुभवही प्रमाण है। तिसमें दूसरा कोई प्रमाण है नहीं ॥ तैसे तिस माया-में भी तिन अज्ञानी पुरुषोंका अनुभवही प्रमाण है, दूसरा कोई प्रमाण तिस माया विषे है नहीं ॥ इस कारण सो माया करकेही सिद्ध है ॥ हे श्वेतकेतु! जैसे वास्तवमें अंधकारसे रहित जो सूर्य भगवान् हैं सो सूर्य भगवान् जब सुमेरु पर्वतके पृष्ठदेशमें जाते हैं, तब रात्रिमें मूढ पुरुष तिस सूर्यमें अंधकार कल्पना करते हैं, तैसे वास्तवमें मायासे रहित जो परमात्मादेव है, तिस पर-मात्मादेवविषे मूढ अज्ञानी पुरुष माया कल्पना करते हैं, और हे श्वेतकेतु! जैसे सूर्यके उदय हुएके अनन्तर नेत्रोंसे इस पुरुषको अन्धकार दिखाई नहीं देता, तैसे ब्रह्मवेत्ता गुरुके उपदेशसे आत्मसाक्षात्कारके उदयसे अनन्तर विद्वान पुरुषोंको सो माया दिखाई नहीं देती ॥ और जैसे सूर्य भगवानको अन्धकार तीन कालमें स्पर्श नहीं करता, तैसे इस आत्मा-

देवकोभी सो माया तीन कालमें स्पर्श नहीं करती ॥ हे श्वेतकेतु ! जैसे अन्धकार अथवा मेघादिक द्रष्टा पुरुषोंके नेत्रोंको आच्छादन करके आकाशमें स्थित सूर्यमंडलको आच्छादन करता है ॥ तैसे यह अज्ञानरूप मायाभी अज्ञानी पुरुषोंकी बुद्धिको आच्छादन करकेही तिस परमात्मादेवको आच्छादन करती है ॥ इससे यह सिद्ध हुआ कि परमात्मादेवमें यह माया वास्तवमें नहीं है, तथा मायाका स्थूल सूक्ष्म कार्यभी वास्तवसे नहीं है, इस कारण इस जगतकी उत्पत्ति- पूर्व सो सतरूप परमात्मादेवही स्थित रहा, तिस परमात्मादेवसे यह स्थूल सूक्ष्म जगत, तथा तिसका कारण माया भिन्न नहीं है ॥ यथा श्रुति ॥ सत्ता मात्रं सर्वम् ॥ सत्तामात्र सर्व लोक है, अर्थात् सत्तारूप स्फुरणसे भिन्न कुछभी नहीं है ॥ इति ॥

एकके ज्ञानसे सर्वका ज्ञाननिरूपण.

इस लोकमें जैसे मृत्तिका, सुवर्ण, लोह रूप कारणोंके ज्ञानसे घट भूषण, खड्ग आदि सर्व कार्योंका ज्ञान होता है, तैसे तिस सत्तारूप कारणब्रह्मके ज्ञानसे इस सर्व जगतरूप कार्यका ज्ञान होता है ॥ यातें सर्वज्ञतारूप फलकी प्राप्तिवास्ते इस अधिकारी पुरुषको तिस सत्तारूप कारणको अवश्य जानना चाहिये ॥

सत्तारूप कारणमें अद्वितीयता स्पष्ट करनेवास्ते इस जगतकी उत्पत्तिका प्रकार निरूपण॥

हे श्वेतकेतु! पूर्व हमने जिस सत्तारूप ब्रह्मको अद्वितीय रूपसे कथन किया है। सो सत् ब्रह्म जिस प्रकार इस सर्व जगतको उत्पन्न करता भया है। तिस प्रकारको तू श्रवण कर। सर्व भेदसे रहित तथा वास्तवमें मायाके सम्बन्धसे रहित ऐसा जो सत् ब्रह्म है। सो सत् ब्रह्म कल्पित मायाके सम्बन्धको पाकर सृष्टिके आदिकालमें इसप्रकारका चिन्तन करता भया। मैं परमात्मादेव आपही बहुत रूपसे उत्पन्न होऊं॥ तिस मेरे जन्म करकेही सो बहुत रूपता सिद्ध होवैगी विना मेरे जन्मके सो बहुत रूपता कदाचितभी न होवैगी॥ इस प्रकारका चिन्तन करके सो परमात्मादेव यथाक्रमसे आकाशादिक पंचभूतोंको रचता भया॥ हे श्वेतकेतु! सो परमात्मादेव केवल आकाशादिक भूतोंकी उत्पत्तिसे पूर्वही तिस चिन्तनको नहीं करताभया है, किन्तु एक एक भूतकी उत्पत्तिसे पूर्वभी तिस चिन्तनको करता भया है॥ शंका॥ हे भगवन! तैत्तिरीयक उपनिषद्में आकाश, वायु, तेज, जल, पृथिवी इन पंचभूतोंकी उत्पत्ति कथन करीहै, और इस छान्दोग्य उपनिषदमें तेज, जल, पृथिवी इन तीन भूतोंकीही उत्पत्ति कथन करी है, यातें तिन दोनों उपनिषदोंका परस्पर विरोध प्राप्त होगा॥ समाधान॥ हे श्वेतकेतु! तेज जल पृथिवी इन तीन भूतोंकी उत्पत्ति

को कथन करनेहारी इस छान्दोग्य श्रुतिका यह अभिप्राय है, कि अल्पबुद्धिवाले पुरुषोंको पंचीकरणकी प्रक्रिया जाननी अत्यन्त कठिन है, यातें तिस पंचीकरणमें उपयोगी जो आकाशवायु है, तिन दोनोंके उत्पत्तिकी उपेक्षा करके तिस श्रुति भगवतीने स्थूल बुद्धिवाले पुरुषोंके ऊपर अनुग्रह करके तेज-जल पृथिवी इन तीन भूतोंका त्रिवृत्करण कथन कियाहै। इस कारणसे तिस छान्दोग्य श्रुतिने तेज, जल पृथिवी इन तीन भूतोंकीही उत्पत्ति कथन की है। परन्तु वास्तवमें तिस छान्दोग्य श्रुतिकाभी पंचीकरणमेंही तात्पर्य है॥ यातें तैत्तिरीय श्रुतिका तथा छान्दोग्य श्रुतिका परस्पर विरोध नहीं संभवै है॥ हे श्वेतकेतु। सो सत् ब्रह्म प्रथम तेजको उत्पन्न करता भया तेजके अनन्वर जलको जलके अनन्तर पृथिवीको उत्पन्न करता भया जिस पृथिवीको श्रुतिमें अन्न शब्दसे कथन किया है इस प्रकार तेज, जल, पृथिवी, इन तीन भूतोंको उत्पन्न करके सो कारण ब्रह्म तिन भूतोंके साथ तादात्म्यभावको प्राप्त होता भया॥ हे श्वेतकेतु! जैसे सृष्टिके आदिकालमें तेज-जल पृथिवी इन तीन भूतोमें प्रथम तेज जलका कारण होता है, और सो जल पृथिवीका कारण होवा है॥ वैसे इस कालमेंभी देखनेमें आता है, कि जब अत्यन्त गर्मी पड़ती है तब तिस तपसे जलकी वृष्टि होती है, और तिस जलकी वृष्टिसे अन्न होता है, यह वार्ता सब लोगोंको अनुभव सिद्ध है॥ हे

श्वेतकेतु ! तेज, जल, पृथिवी यह तीन भूतही इस सर्व जगतके कारण हैं इस कारणसे तिन कारणोंके स्वभावके अनुसारसेही शास्त्रवेत्ता पुरुषोंने इन सर्व देहधारी जीवोंके तीन प्रकारके कारण कथन करते हैं ॥ तहां जरायुजनामा जीवोंकी जाति प्रथम देहधारी जीवोंका बीज है, क्योंकि गर्भको वेष्टन करनेहारा जो जरायु नामा चर्म है, सो जरायु जठराग्निके तेजसे उत्पन्न होता है, इस कारण सो जरायु तैजस पदार्थ है ॥ तिसके अनन्तर दो प्रकारके स्वेदज उत्पन्न होते हैं, तहां एक तो मशकादिरूप स्वेदज उद्भिज्जरूप होते हैं, और दूसरे यूकादिरूप स्वेदज अंडजरूप होवे हैं, यातें एकही स्वेद-दजका जलीय उद्भिज्जरूप करके तथा पार्थिव अंडज-रूप करके संग्रह संभव हो सकता है । यातें जरायुज, उद्भिज्ज, अंडज यह तीनही सर्व देहधारी जीवोंके बीज-रूप हैं ॥ शंका ॥ हे भगवान ! ब्रह्मसूत्रोंके तृतीय अध्यायके प्रथम पादमें व्यास भगवानने स्वेदजका उद्भिज्ज-मेंही अन्तर्भाव कथन किया है, और यहां आपने तिस स्वे-जका उद्भिज्ज अंडज इन दोनोंमें अंतर्भाव कथन किया है। यातें ब्रह्मसूत्रोंके साथ आपके वचनका विरोध होगा ॥ समाधान ॥ हे शिष्य ! तिस व्यास भगवानका यह अभि-प्राय है, कि जैसे यह प्रसिद्ध वृक्षादिक भूमिको ऊर्ध्वभेदन करके उत्पन्न होते हैं, तैसे मशकादिरूप उद्भिज्ज तथा यूकादि

रूप अंडज यह दो प्रकारके स्वेदजभी अपने उपादान कारण-रूप जलोंको ऊर्ध्वभेदन करकेही उत्पन्न होते हैं, यातें मश-कादिक उद्भिज्जोंकी नांई यूकादिक अंडजोंमेंभी सो उद्भिज्ज शब्दका अर्थ घटे है। इसप्रकारके अर्थ जनावनेवास्तेही तिस व्यास भगवानने उद्भिज्जमें तिस स्वेदजका अन्तर्भाव कथन किया है,परन्तु तिस अंडजविषे तिस स्वेदजका अन्तर्भाव नहीं है, इस अर्थके बोधन करनेमें तिस व्यास भगवानका तात्पर्य नहीं है, ॥ किम्वा ॥ ऐतरेय उपनिषदमें जरायुज, अंडज, उद्भिज्ज इन तीनोंकी अपेक्षा करके कथन किया जो चतुर्थ स्वेदज है तिस स्वेदजका असत्यपना नहीं है, किन्तु जरायुजा-दिक तीनोंकी नांई सो स्वदेजभी विद्यमान है। इसप्रकार तिस स्वेदजके असत्यपनेकी निवृत्तिकरनेमें तिस व्यास भग-वानका तात्पर्य है ॥ उद्भिज्जमेंही तिस स्वेदजका अन्तर्भाव है इस अर्थमें तिस सर्वज्ञ व्यास भगवानका तात्पर्य नहीं है। किन्तु तिस व्यास भगवानका यह तात्पर्य्य है, पक्षी यूकादिक जीव अंडज हैं, और वृक्ष मशकादिक शरीर उद्भिज्ज हैं, तिन दोनोंसे भिन्न सर्व जीव जरायुज हैं ॥ हे श्वेतकेतु! जैसे इसलोक प्रसिद्ध शरीरादिक अध्यात्मकार्योंके कारणोंमें जरा-युज, उद्भिज्ज, अंडज इन तीन भेदसे तीन रूपता हैं, तैसे इस सर्व जगतके कारणोंमेंभी तेजजल, पृथिवी, इन तीन भेदसे (करके) तीन रूपता है ॥ शंका ॥ हे भगवन्,

इस प्रकार तेजादिक कारणोंके ज्ञानसे इस अधिकारी पुरुषको किस फलकी प्राप्ति होती है ॥ समाधान ॥ हे श्वेतकेतु ! जैसे तेजजल पृथ्वी यह तीन कारण अपने अपने कार्यमें अनुगतरूप होकर रहते हैं, तैसे तेज जल पृथिवी इन तीनोंमें सो परमात्मादेव अपने सत्तारूपसे अनुगत होकर रहता है ऐसा सर्व जगत्का कारणरूप परमात्मादेवही हम अधिकारी जनोंको जानने योग्य है इस प्रकार तिस परमात्मारूप कारणमें इन अधिकारी पुरुषोंके बुद्धिकी स्थिति है,सो बुद्धिकी स्थितिही तिस कारणके विचारका फल है॥ अब तिस परमात्मादेवरूप परमकारण का तिन तेजादिक भूतोंमें अनुगतपना स्पष्ट करिके निरूपण करते हैं ॥ हे श्वेतकेतु जैसे घट पियालादिक कार्योंमें मृत्तिका कारणरूपसे प्रवेश करती है. तैसे तेज जल पृथिवी इन तीनोंमें सो परमात्मादेवपूर्व कारणरूपसे प्रवेश करता भया है ॥ क्योंकि तिस परमात्मादेवका असाधारण धर्मरूप ईक्षण (देखना) "तत्तेज ऐक्षत" इत्यादिक श्रुतियोंने प्रतिपादन किया है ॥ तात्पर्य यह! जैसे सृष्टिके आदिकालमें सो सत् परमात्मादेव मैं बहुतरूप होकर उत्पन्न होऊं, इस प्रकारका विचार करके बहुतरूप होता भया है तैसे तेज तथा जल यह दोनोंभी तिस विचारको करके बहुतरूप होते भये हैं ॥ तहां जड़ तेजमें तथा जड़ जलमें चेतनके प्रवेश विना सो विचार संभव होता नहीं, इससे जाना जाता है,

कि सो चेतन परमात्मादेवही तिन तेजजलमें प्रवेश करके तिस विचार को करता भया है ॥ शंका ॥ हे भगवन् ! सो परमात्मादेव तिन तेजादिकोंमें जो कदाचित् पूर्वही अनुगत हुआ होवै, तो श्रुतिने तिस परमात्मादेवका पुनः जीवरूपसे प्रवेश क्यों कथन किया है ॥ समाधान ॥ हे श्वेतकेतु! यद्यपि यह सत् परमात्मादेव कारणरूपसे तो तिन तेजादिकोंमें पूर्वही प्रविष्ट हुआ है, तथापि सो परमात्मादेव जीवरूपसे तिन तेजादिकोंमें पूर्व प्रविष्ट हुआ नहीं, क्योंकि जो प्राणोंको धारण करता है तिसका नाम जीव है, सो प्राण धारणादिक जीवके धर्म तिस कालमें रहे नहीं ॥ हे श्वेतकेतु! जो चेतन प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान इन पंचप्राणोंको धारण करता है, तथा वारंवार जन्म मरणकी प्राप्तिरूप संसारको प्राप्त होता है, तथा शुभ अशुभ फलको प्राप्त होता है, बन्धकी निवृत्तिरूप मोक्षको प्राप्त होता है, तिस चेतनका नाम जीव है ॥ हे श्वेतकेतु ! इन सर्व देहधारी जीवोंके अपने अपने अंगुष्ठपरिमाण हृदयकमळ होते हैं, तिस हृदयकमलमें ज्ञानशक्तिवाळा अन्तःकरण सर्वदा रहता है, तिस अन्तःकरणके साथ जो चेतन तादात्म्य अध्यासको प्राप्त होता है, तिस अन्तःकरण उपहित चेतनका नाम जीव है शंका ॥ हे भगवन ! जो अन्तःकरणकोही जीवका उपाधिरूप अंगीकार करोगे। तो सुषुप्ति अवस्थामें तिस अन्तःकरण

का नाश होजाता है,यातें तिस जीवका भी तहां नाश होना चाहिये और सुपुप्ति अवस्थामें तिस जीवका नाश सिद्धान्तमें अंगीकार है नहीं ॥ समाधान ॥ हे श्वेतकेतु ! सुपुप्ति अवस्थामें भी तिस अन्तःकरणका सर्वथा नाश होता नहीं। किन्तु तिस सुपुप्ति अवस्थामेंभी सो अन्तःकरण संस्कारभूत सूक्ष्म वासनारूपसे बना रहताहै। काहेसे तिस सुपुप्तिसे पूर्वकालमें जिस प्रकारका अन्तःकरण प्रतीत होवा है, तिसी प्रकारका अन्तःकरण तिस सुपुप्तिसे उत्तर जाग्रत कालमेंभी प्रतीत होता है। जो कदाचित सो अन्तःकरण तिस सुपुप्ति अवस्थामें सर्वथा नाशको प्राप्त हुआ होता तो पूर्व दिनके अन्तःकरणसे उत्तर दिनका अन्तःकरण विलक्षण प्रतीत होना चाहिये परन्तु सो अन्तःकरण विलक्षण प्रतीत होता नहीं, इससे जाना जाता है कि अन्तःकरण सुपुप्ति अवस्थामें नाशको नहीं प्राप्त होता ॥ शंका ॥ हे भगवन ! अन्तःकरणको तथा तिस अन्तःकरणकी वासनाओंको जो कदाचित तिस जीवात्माकी उपाधिरूप अंगीकार करोगे, तो सो अन्तःकरण तथा वासना अनेक हैं, इससे सो जीवभी अनेक होवेंगे। और "अजो ह्येको जुपमाणोनुशेते" इत्यादिक श्रुतियोंमें एकही जीव कहा गया है, तिन श्रुतियोंका विरोध होवेगा ॥ समाधान ॥ हे श्वेतकेतु ! तिस मायाविशिष्ट परमात्मादेवरूपकारणमें इस अन्तःकरण वासनाविशिष्ट जीवका तादात्म्यसम्बन्ध शास्त्रवेत्ता

पुरुषोंने कथन किया है, इस कारणसेही अन्तःकरणादिरूप कार्यके साथ तिस जीवात्माका तादात्म्य अध्यासविनाही प्रयत्नसे प्राप्त होता है । जो कदाचित तिस अन्तःकरणके कारणके साथ इस जीवात्माका तादात्म्य सम्बन्ध नहीं होता, तो तिस अन्तःकरणके उदयकालमेंही तिस जीवात्माका जो अन्तःकरणके साथ तादात्म्य अध्यास होता है, सो नहीं होना चाहिये ॥ हे श्वेतकेतु ! तिस अन्तःकरणकी उत्पत्ति हुए तथा नाश हुएभी इस जीवात्माका उत्पत्ति, नाश होता नहीं, किन्तु सो जीवात्मा सर्वदा एकरूपही है ॥ हे श्वेतकेतु ! यद्यपि भिन्नभिन्न अन्तःकरणोंमें स्थित होकर सो जीवात्मा भिन्न-भिन्न रूपसे प्रतीत होता है, तथापि सो जीवात्मा तिन अन्तः-करणोंके कारणभूत अज्ञानके साथभी तादात्म्यसम्बन्धको प्राप्त होता है, सो अन्तःकरणकी वासनावोंका आधारभूत अज्ञान एकही है और आत्मज्ञानके विना तिस अज्ञानका नाशभी होता नहीं ऐसे अज्ञानरूप उपाधिको ग्रहणक-रकेही शास्त्रवेत्ता पुरुष तिस जीवात्माको एक कहते हैं तथा नित्य कहते हैं ॥ और हे श्वेतकेतु ! जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति इन तीन अवस्थाओंका निमित्तकारणभूत जो संस्काररूप कर्मवासना है, तथा वृत्तिज्ञानरूप अन्तः-करणका निमित्त कारणभूत जो संस्काररूप ज्ञानवासना है, तिन सर्व वासनावोंका आश्रय अज्ञान है, तिस अज्ञानरूप

आश्रयके नाशसे जब तिन सर्व वासनाओंका नाश होता है, तब यह जीवात्मा मोक्षको प्राप्त होता है ॥ अब अन्वय-व्यतिरेकसे तिन वासनाओंके नाशमें मोक्षकी कारणता निरूपण करते हैं ॥ हे श्वेतकेतु ! जैसे इस भूमिमें स्थित जितने वृक्ष हैं तिन वृक्षोंमेंसे जिस वृक्षका मूलबीज नाश होता है सोई वृक्ष नाशको प्राप्त होता है, दूसरे वृक्ष नाशको प्राप्त होते नहीं, तैसे इस मायामें स्थित जितने जीव हैं, तिन जीवोंमें जिस जीवके अन्तःकरणकी वासनावोंका नाश होता है, सोई जीव मोक्षको प्राप्त होता है, और जिन जीवोंके अन्तः-करणकी वासनाओंका नाश नहीं हुआ है, सो जीव मोक्षको प्राप्त होते नहीं, किन्तु सो जीव बन्धकोही प्राप्त होते हैं, ॥ शंका ॥ हे भगवन ! पूर्व आपने एकही जीव कथन किया था और अब आप नानाजीव कथन करते हैं, यातें पूर्व उत्तर वचनोंका विरोध प्राप्त होवैगा ॥ समाधान ॥ हे श्वेतकेतु ! जैसे स्वप्न अवस्थामें यह एकही स्वप्नद्रष्टा पुरुष अज्ञानके वशसे अनेक रूपोंको धारण करके किसी रूपसे तो बंधको प्राप्त होता है, तथा किसी रूपसे मोक्षको प्राप्त होता है, वैसे यह एकही जीवात्मा मायाके वशसे अनेक रूपोंको धारण करके किसी रूपसे तो बन्धको प्राप्त होता है, और किसी रूपसे मोक्षको प्राप्त होता है, और जैसे तिस

स्वमके निवृत्त हुएके अनन्तर तिस स्वमके बन्धमोक्ष तिस स्वमद्रष्टा पुरुषको प्राप्त होते नहीं । तैसे इस आनन्दस्वरूप आत्माके साक्षात्कार हुएसे अनन्तर सो बन्ध मोक्ष प्राप्त होते नहीं । इस्से यह अर्थ सिद्ध हुआ, जीवोंका परस्परभेद तथा तिन जीवोंका परमात्माके साथ जो भेद प्रतीत होताहै, सो केवल उपाधिके सम्बन्धसे प्रतीत होता है, वास्तवमें तो यह जीवात्मा परमात्मा अद्वितीय ब्रह्मरूपही है ॥ शंका ॥ हे भगवन् ! यह परमात्मादेवही इस जगत्में प्रवेश करताहै, यह वार्ता जो आपने पूर्वकथनकी थी, सो संभव नहीं । क्योंकि इस लोकमें परिछिन्न वस्तुकाही प्रवेश देखनेमें आता है । व्यापक वस्तुका प्रवेश देखनेमें आता नहीं ॥ समाधान ॥ हे श्वेतकेतु ! जैसे सर्प अपने विल-में प्रवेश करता है, तैसे यह परमात्मादेव जगतमें प्रवेश करता नहीं, किन्तु जैसे सर्वत्र व्यापक हुआभी यह आकाश घटादिक उपाधियोंमें प्रवेश करता है, तैसे सर्वत्र व्यापक हुआभी यह परमात्मादेव तिन तेजादिक भूतोंमें प्रवेश करता है और हे श्वेतकेतु ! जैसे सुषुप्ति अवस्थाको प्राप्त हुआ यह पुरुष सामान्यरूपसे यद्यपि इस शरीरमें प्रविष्ट हुआहै, तथापि विशेष रूपसे प्रविष्ट हुआ नहीं, और सोईही पुरुष पुनः जाग्रत अवस्थामें विशेषरूपसे इस शरीरमें प्रवेश करता है । तैसे तेज जल पृथिवी, इन तीन भूतोंमें सो परमात्मादेव यद्यपि सामान्य-

रूपसे पूर्वही प्रविष्ट हुआहै, तथापि विशेपरूपसे पूर्वप्रविष्ट हुआ नहीं, और सोईही परमात्मादेव पुनः तिन तेजादिकोंमें जीवात्मारूप विशेपरूपसे प्रवेश कर्ताहै और सो परमात्मा देव तिस विशेपरूपसे प्रवेश करने वास्ते इस प्रकारका विचार करता भया ॥ अपने अपने कार्यमें प्रविष्ट हुए जो यह तेज, जल, पृथिवीरूप तीन भूत हैं, तिनमें मैं परमात्मादेव अपने जीवरूपसे प्रवेश करके नामरूप इन दोनोंको विविधप्रकारका करूँ तथा तिस नामरूपको स्पष्ट करूँ और तिस नामरूपके विविधप्रकार करनेमें तथा स्पष्ट करनेमें इस प्रकारका उपाय हमको प्रतीत होता है। तेज, जल, पृथिवी यह जो तीन भूतरूप देवता हैं, तिनमें प्रवेश करके मैं परमात्मादेव तिस एक एक भूतको नव नव प्रकारका करूँ तिन भूतोंको नव नव प्रकार करनेहींसे यह नामरूप दोनों स्पष्ट भावको प्राप्त होंगे। तिसतेही यह सर्व जगत उत्पन्न होवैगा, इस प्रकारका विचार करके सो परमात्मादेवने तिसी प्रकार किया ॥ तात्पर्य यह तेज, जल, पृथिवी इन तीन भूतोंमें एक भूतके तीन तीन विभाग समान किये, तहां तिन तीनों भूतोंके दो दो विभाग तो पृथक पृथक, रक्खे, और तिन भूतोंके तीसरे तीसरे विभागके पुनः तीन तीन विभाग किये, तिन तीनों विभागोंमें एक एक विभागको यथाक्रमसे तिन तीन भूतोंके दो दो विभागोंमें मिलाया। इस प्रकार तेजादिक भूतोंके अपने अपने तो सम सम विभाग होते हैं और दूसरे भूतोंके दो दो विभाग

होते हैं, इसी प्रक्रियाको छान्दोग्य श्रुतिमें त्रिवृत्क-रण इस नामसे कथन किया है ॥ हे शिष्य ! इस प्रकार सो अरुणिपिता तिस श्वेतकेतुपुत्रके प्रति अध्यारोपभूत त्रिवृत्करणरूप सृष्टिका कथन करके यह कार्य जगत कारणमात्ररूप है, इस प्रकारके अपवादके कहने वास्ते अग्नि, आदित्य, चन्द्रमा, विद्युत यह चार दृष्टान्त कथन करता भया ॥ हे श्वेतकेतु! अग्नि, आदित्य, चन्द्रमा, विद्युत इन चारोंमें जो रक्तरूप प्रतीत होता है, सो रक्तरूप तिस सप्त भागवाले तेजकाही जानना, तिन अग्नि आदिक चारोंमें जो शुक्लरूप प्रतीत होता है, सो शुक्लरूप तिस जलके अष्टम भागका जानना और तिन अग्नि आदिक चारोंमें जो कृष्णरूप प्रतीत होता है, सो कृष्णरूप पृथिवीके नवमभागका जानना, इस प्रकारसे अग्नि आदिक चारों, तेज, जल, पृथिवी, यह तीन भूतरूपही हैं ॥ हे श्वेतकेतु! जैसे रक्तरूपवाला जो तेज है, तथा शुक्लरूपवाला जो जल है, तथा कृष्णरूपवाली जो पृथिवी है, इन तीनों कारणोंको जब तिन अग्नि आदिक कार्योंसे भिन्न करिये, तब सो अग्नि आदिक कार्य प्रतीत होवैं नहीं, इस कारणसे सो अग्नि आदिक कार्य मिथ्याही हैं ॥ तैसे जलरूप जो नदी आदिक हैं, तथा पृथिवीरूप जो पर्वतादिक हैं । सो भी पूर्व कही ... तेज, जल, पृथिवी इन तीन भूतोंकेही कार्य हैं, तिन

तेजादिक कारणोंको जब तिन नदीपर्वतादिक कार्योंसे पृथक करिये, तब सो नदी पर्वतादिक कार्य प्रतीत होते नहीं, यातें सो नदीपर्वतादिक पदार्थभी मिथ्याही हैं ॥ क्योंकि सो अग्नि आदिक विकार केवल वाणीमात्रसेही सिद्ध हैं, वास्तवमें सो अग्नि आदिक विकार हैं नहीं ॥ हे श्वेतकेतु! जैसे अग्नि आदिक विकार कार्यरूप होनेसे मिथ्या हैं, तैसे तेज, जल, पृथिवी यह तीन भूतभी कार्यरूप होनेसे मिथ्याही हैं। तिन मिथ्या तेजादिकभूतोंका जो परमात्मादेवरूप कारण है, सो परमात्मादेवही सत्य है, तिस परमात्मादेवसे भिन्न यह सर्व जगत मिथ्याही है ॥ तिस सत्य परमात्मादेवके ज्ञानसेही इस सर्वजगतका ज्ञान होता है ॥ अग्नि आदिक बाह्य प्रपंचमें तेजादिक तीन भूतोंकी कार्यता निरूपण की। अब इस स्थूल सूक्ष्म शरीरमें तिन तेजादिक भूतोंकी कार्यता निरूपण करते हैं ॥ हे श्वेतकेतु! इस लोकमें अन्नजलके भक्षण करनेहारे जितने देहधारी जीव हैं, सो देहधारी जीव जिस त्रिवृत रूप अन्नको भक्षण करते हैं, तथा जिस त्रिवृतरूप जलको पान करते हैं, सो अन्न, जल, जठराग्निके सम्बन्धसे पृथिवी, जल, तेज इन तीन रूपसे तीन प्रकारका होता है ॥ हे श्वेतकेतु! इस प्रकार तीन विभागोंको प्राप्त हुआ जो अन्नजलहै, तिन अन्नजलका जो तैजस भाग है, सो तैजस भागभी सूक्ष्म मध्यम, स्थूल, इन भेदोंसे तीन प्रकारके होतेहैं। तहां सूक्ष्म

तैजस भाग वो वाकरूपसे परिणामको प्राप्त होता है, और मध्यम तैजस भाग मज्जारूपसे परिणामको प्राप्त होता है, और स्थूल तैजस भाग अस्थिरूपसे परिणामको प्राप्त होता है ॥ तैसे सो जलीय भागभी सूक्ष्म, मध्यम स्थूल इन तीन रूपसे तीन प्रकारके होते हैं, तहां सूक्ष्म जलका भाग वो प्राण रूपसे परिणामको प्राप्त होता है, और मध्यम जलका भाग रक्तरूपसे परिणामको प्राप्त होता है, और स्थूल जलका भाग मूत्ररूपसे परिणामको प्राप्त होता है ॥ इसी प्रकार से पृथिवी-का भागभी सूक्ष्म, मध्यम, स्थूल इन तीन भेदोंसे तीन प्रकारका होता है, वहां सूक्ष्म पार्थिव भाग वो मन रूप परिणामको प्राप्त होता है, और मध्यम पार्थिव भाग मांसरूपसे परिणा-मको प्राप्त होता है, और स्थूल पार्थिव भाग पुरीषरूपसे परिणामको प्राप्त होता है ॥ हे शिष्य। वाक, तेजका कार्य है, और प्राण, जलका कार्य है, और मन पृथिवीरूप अन्नका कार्य है ॥ इस प्रकारके अर्थको श्रवण करके सो श्वेतकेतु अपने पिताके प्रति इस प्रकारका प्रश्न करता भया ॥ श्वेत-केतु बोले ॥ हे पिता ! अन्नजलादिरूपको प्राप्त भये जो तेज, जल, पृथिवी यह तीन भूत हैं, सो अत्यन्त स्थूल हैं, और वाक्, प्राण, मन यह तीनों अत्यन्त सूक्ष्म हैं, ऐसे तेजादिक स्थूल भूतोंमे वागादिक सूक्ष्मोंकी उत्पत्ति सम्भवै नहीं, काहेसे इस लोकमें समान स्वभाववाले तंतुपटादि कें

काही परस्पर कार्यकारणभाव देखनेमें आता है, विलक्षण स्वभाववाले पदार्थोंका परस्पर कार्यकारणभाव देखनेमें आता नहीं ॥ यातें हे भगवन्! तिस पूर्व कहे अर्थको आप हमारे प्रति पुनः किसी युक्तिसे कथन करो ॥ जिससे तिस अर्थका हमको वास्तव रूपसे ज्ञान होवै ॥ हे शिष्य! इस प्रकार जब श्वेतकेतुने अपने आरुणि पितासे प्रश्न किया, तब आरुणि पिताने तिस श्वेतकेतु पुत्रसे इस प्रकारका वचन कहा कि, हे श्वेतकेतो! स्थूलसे सूक्ष्मकी उत्पत्तिमें तू दृष्टान्तको श्रवण कर, जैसे लोकमें घनीभावसे स्थूलताको प्राप्त हुई जो दधि है, तिस स्थूल दधिमें यद्यपि मंथन करनेसे पूर्व तक्र, फेन, घृत यह तीन रूप प्रतीत होते नहीं, तथापि मंथन करके सो स्थूल दधि तक्र, फेन, घृत, इन तीन सूक्ष्म रूपोंसे परिणामको प्राप्त होता है ॥ तैसे अन्न-जलभावको प्राप्त हुए तेज, जल, पृथिवी, यह तीन स्थूल भूत भी वाक्, प्राण, मन यह तीन सूक्ष्मरूपसे परिणामको प्राप्त होते हैं ॥ और हे श्वेतकेतु! जैसे मंथन करीहुई दधिका जो सूक्ष्म अंश है, सो घृतरूपसे ऊर्ध्वदेशको प्राप्त होताहै, तैसे अन्नजलरूपसे जठराग्निमें स्थित जो तेज, जल, पृथिवी है, तिन तीनोंसे यथाक्रम वाक, प्राण, मन, यह तीनोंका उपादान कारणरूप सूक्ष्म अंशभी ऊर्ध्वदेशको प्राप्त होतेहैं इस प्रकार तेज, जल, पृथिवी इन तीन स्थूल भूतोंसे यथा-

क्रमसे वाक्, प्राण, मन यह तीनों सूक्ष्म उत्पन्न होतेहैं ॥ हे शिष्य ! इस प्रकार जब तिस आरुणि पिताने तिस श्वेत-केतु पुत्रके प्रति उत्तर कहा तब सो श्वेतकेतु तिस आरुणि पिताके प्रति पुनः इस प्रकारका प्रश्न करता भया ॥ श्वेत-केतु बोले ॥ हे पिता ! पूर्व आपने वाक्में जो तेजरूपता कथन करी सो यद्यपि संभव है, क्योंकि इस लोकमें जैसे तेजका पराभव जलसे देखनेमें आता है वैसे इस शरीरमें जलरूप कफ धातुके वृद्धिसे जब तेजका पराभव होता है, तब सर्व देहधारी जीवोंकी सो वाक् शिथिलताको प्राप्त होती है, और कफ धातुके वृद्धिके प्रभाव हुए सो वाक् स्पष्ट प्रतीत होता है ॥ इस प्रकारके अन्वय-व्यतिरेकसे तिस वाक्में तेजकी कार्यता निश्चय होसकती है ॥ तथापि प्राणमें जलकी कार्यता तथा मनमें पृथिवीरूप अन्नकी कार्यता किस प्रकार निश्चय की जावे ॥ तिस वाक्की नांई इन प्राण मनमें कोई अन्वयव्यतिरेक देखनेमें आता नहीं ॥ हे शिष्य ! इस प्रकार जब तिस श्वेतकेतुने उद्दालक पिताके प्रति प्रश्न किया, तब सो उद्दालक पिता तिस श्वेतकेतु पुत्रके प्रति तिन प्राण मनमेंभी सो अन्वय-व्यतिरेक दिखावता हुआ इस प्रकारका वचन कहता भया ॥ आरुणि बोले ॥ हे श्वेतकेतु ! श्रोत्रादिक पंच ज्ञान इन्द्रिय तथा वागादिक पंच कर्म इन्द्रिय तथा आकाशादिक पंचभूत

एकप्राण इन षोडश तत्त्वोंका समुदाय तप्तलोह पिंडकी नांई चेतनके तादात्म्य संबन्धसे युक्त हुआ पुरुष नामसे कहा जाताहै, और चन्द्रमा है देवता जिसका ऐसा जो मन है, सो मन है प्रधान जिसमें ऐसा जो पुरुष है। तिस मनोमय पुरुषकी वेदवेत्ता पुरुषोंने षोडश कला कथन करी है ॥ यहां दिन दिन विषे भोजन किया जो अन्न है ! तिस अन्नसे उत्पन्न हुई जो मनके वृत्तियोंका उपादान कारणरूप शक्तियां विशेष हैं, तिन शक्तियोंका नाम कला है, तहां एक एक दिनमें तिस अन्नके भक्षण कियेसे तिस मनमें एक एक कला उत्पन्न होती हैं। इस प्रकार षोडश दिनपर्यन्त तिस अन्नके भक्षण करनेसे तिस मनोमय पुरुषमें षोड़श कला उत्पन्न होती हैं, और जो मनुष्य अन्नको भक्षण नहीं करता है, तिस पुरुषकी एक एक दिनमें एक एक कला नाशको प्राप्त होती जाती है। षोडश दिनपर्यन्त तिस अन्नके न भक्षणसे सो सर्वकला नाशको प्राप्त होती हैं, इसमें तुम किंचितमात्रभी संशय न करना, परन्तु यह सर्व वार्ता रोगरहित पुरुषोंमेंही घटतीहैं। रोगी पुरुषमें तो वातपित्तादिक दोषकीही सो शक्ति होतीहै ॥ हे श्वेतकेतु ! यह प्राण जलके विना एक दिनमात्रभी इस शरीरमें स्थित नहीं होसकताहै, और तिस प्राणके गयेके अनन्तर सो अन्वयव्यतिरेक जाना जाता नहीं, इस कारण तिस अन्वयव्यतिरेकके ज्ञानमें

उपयोगी जो प्राण है, तिस प्राणकी रक्षा करनेके वास्ते तू जलको तो अपनी इच्छापूर्वक पान कर, परन्तु, अन्नको पंचदश दिनपर्यन्त तू भक्षण मत कर, तिस अन्नके भक्षण न करनेसे तू आपही तिस अन्वयव्यतिरेकको निश्चय करैगा, हे शिष्य ! इस प्रकारका वचन जब तिस आरुणि पिताने श्वेतकेतु पुत्रके प्रति कहा, तब सो श्वेतकेतु पिताकी आज्ञाको मानकर पंचदश दिनपर्यन्त अन्नको नहीं भक्षण करता भया, तिस पंचदशदिनके अनन्तर सो श्वेतकेतु पुनः तिस आरुणि पिताके समीप जाकर स्थित हुआ और क्षुधा करके क्षीण हुआ है मन जिसका ऐसा जो श्वेतकेतु है, तिस श्वेतकेतुको अपने समीप आया हुआ देखकर उससे इस प्रकारका वचन तिस आरुणि पिताने कहा,॥ हे पुत्र ! जो तुमने पूर्वऋग् यजुष्, साम इन तीनों वेदोंके पाठका तथा अर्थका अध्ययन किया है, तिन अर्थसहित वेदोंको हमारे समीप कथन करो ॥ हे शिष्य ! इस प्रकारका वचन सुनकर तिस श्वेतकेतुने उत्तर दिया कि उक्त तीनों वेदोंका स्मरण इस काल मुझको किंचित्मात्रभी नहीं है, तब सो आरुणि पिता तिस क्षुधावान श्वेतकेतुके प्रति इस प्रकारका वचन कहता भया ॥ हे श्वेतकेतु ! तू अभी अन्नका भक्षण कर, तिस अन्नके भक्षण करनेसे तू तिन सर्व वेदोंको पूर्वकी नांई अर्थ सहित जानैगा ॥ हे श्वेतकेतु ! जैसे महान् प्रज्वलित अग्निके काष्ठादिक

इन्धनोंका जब नाश होताहै, तब तिस अग्निके कोइक अंगारकण जुगुनूके समान शेष रहते हैं तिन अंगार-कणोंसे पूर्व प्रज्वलित अग्निकी भांति महान कष्टोंका दाहरूप. कार्य उत्पन्न नहीं होता, तैसे पंचदश दिनपर्यन्त अन्नके न भोजन करनेसे तिस तुम्हारे मनकी पंचदश कला तो नाश होगई हैं; एक कला बाकी है, इस कारणसे तुम्हारा मन किंचितमात्रभी अर्थके जानने तथा स्मरण करनेमें समर्थ नहीं होता ॥ यातें तू अन्नके भोजनसे अपने मनकी कलाओं की वृद्धि करके पुनः मेरे समीप आव ॥ हे शिष्य! इस प्रकारके पिताके वचनको अंगीकार करके सो श्वेतकेतु अन्नको भोजन करके पुनः अपने पिताके समीप जाताभया, तिस श्वेतकेतु पुत्रको देखकर सो आरुणि पिता तिस श्वेतकेतु पुत्रसे पुनः पूर्व अध्ययन किये हुए वेदोंके अर्थको पूछता भया, तिसते अनन्तर सो श्वेतकेतु अपने पितासे सो सर्व वेदोंका अर्थ कथन करता भया ॥ हे शिष्य! इस प्रकार सो आरुणि पिता अपने पुत्र श्वेतकेतुके प्रति अन्नके अभावहुए मनकाभी अभाव होताहै, इस प्रकारके व्यतिरेकको अग्निके दृष्टान्तसे कथन करके तिसके अनन्तर अन्नके विद्यमान हुए मनकीभी विद्यमानता होतीहै, इस प्रकारके अन्वयको तिसी अग्निके दृष्टान्तसे कथन करता हुआ इस प्रकारका वचन कहता भया ॥ हे श्वेतकेतु! जैसे खद्योतके

समान सूक्ष्म अंगार सूक्ष्मशुष्क तृणोंके डालनेसे शनैः शनैः वृद्धिको प्राप्त होकर महान शुष्क तथा महान आर्द्र काष्ठोंकोभी दाह करसकता है, तैसे अहारके ग्रहणसे पूर्व जो तुम्हारा मन एक कलामात्र शेष रहाथा, सोई तुम्हारा मन अब अहारके ग्रहण करनेसे पुनः सर्वज्ञताको प्राप्त हुआ है, इस प्रकारके अन्वयव्यतिरेकसे तुमनेभी अपने मनमें अन्नमयता निश्चय कीहै, ॥ हे श्वेतकेतु ! जैसे वाकमें तथा मनमें अन्वयव्यतिरेकसे तुमने तेजोमयता तथा अन्नमयता निश्चय कीहै, तैसे प्राणमेंभी तुम जलमयता निश्चय करना । क्योंकि जैसे अन्नके विना मनका क्षय होता है, तैसे जलके विना प्राणकाभी क्षय होता है ॥ इतने ग्रंथ करके (यहांतक) सर्व जगतका कारणरूप जो अद्वितीयब्रह्म है, तिस अद्वितीय ब्रह्मरूप तत् पदार्थका शोधन निरूपण किया, अब तिस तत् पदार्थमें प्रत्यक् आत्मारूप त्वंपदार्थरूपता निरूपण करते हैं ॥ तहां त्वंपदार्थरूप आत्मामें सो प्रत्यक रूपता तीन प्रकारकी वेदान्त शास्त्रोंमें कथन की है । तहां एक तो अन्तःकरणादिकोंमें स्थित चिदाभासकी बिंबरूपतासे प्रत्यक रूपता कही है, और दूसरा शरीरकी अधिष्ठानता रूपसे प्रत्यक रूपता कथन करी है, और तीसरी इन्द्रियोंकी अधिष्ठानता रूपसे प्रत्यक रूपता कथन की है ॥ पूर्व कही रीतिसे वाक, प्राण, मन, आदिकोंके उपादान कारणरूप अद्वितीय ब्रह्मको निश्चय किया है जिसने ऐसा

जो श्वेतकेतु है तिस श्वेतकेतु पुत्रके प्रति सो उद्दालक नामा आरुणि पिता त्वंपदार्थ आत्माके शोधन करनेवास्ते पुनः इस प्रकार का वचन कहता भया, ॥ हे श्वेतकेतु! पूर्व हमने तुम्हारे प्रति जो मन अन्नमयरूपसे कथन कियाहै, तिस मन काही यह तेज, जल, पृथिवीरूप सर्व जगत विलास है, तिस मन-के विद्यमान हुएही यह पुरुष बारंबार अध्यासरूप मोहको प्राप्त होता है। जो कदाचित यह मन न होवै तो तिस मनमें प्रतिबिम्बरूप मोहकोभी यह जीव न प्राप्त हो। तिन रागादिक विकारोंके अभाव हुए यह जीवात्मा पुनः संसारको प्राप्त हो नहीं, इस कारण यह चिदाभासयुक्त मनही इस सर्व जगतका निर्वाह करनेहारा है, जब मन अर्थात् अन्तःकरण सुषुप्ति अवस्थामें सूक्ष्मरूपसे अज्ञानमें लय हो जाता है, तब चिदाभास (अन्तःकरणमें चेतनका प्रतिबिम्ब) अपने वास्तव स्वरूपपर-मात्मादेवरूप बिंबमें लयभावको प्राप्त होता है, जैसे दर्पणके अभा-वमें प्रतिबिंब अपने बिंबमें लय होता है। परंतु सुषुप्ति अवस्थामें अन्तःकरण सूक्ष्म रूपसे अज्ञानमें लय होता है, अतः जाग्रत स्वप्न अवस्थामें पुनः अन्तःकरण पूर्व कर्मोंके संस्कारसे उदय होकर चिदाभासयुक्त दुःखसुखरूप व्यवहारमें लगता है, जब अज्ञान सहित अन्तःकरण ज्ञानाग्निसे दग्ध हो तो चिदाभास अपने बिम्ब अधिष्ठान ब्रह्ममें लयभावको प्राप्त होकर मोक्षपद पाता है ॥

कार्यद्वारा कारणरूप सदात्मा ब्रह्मका निश्चयनिरूपण ।

हे श्वेतकेतो ! यह आत्मा वास्तवमें क्षुधा पिपासासे रहित है । प्राणोंकाही धर्म क्षुधा पिपासा है । प्राणोंके साथ अध्यास करके जाग्रद, स्वप्न अवस्थामें प्राणोंके धर्म क्षुधा पिपासादिको व्यर्थही अपनेमें मानता है । जब क्षुधासे पीडित हुआ पुरुष अन्नको भक्षण करता है, तब अन्नको जल, द्रवीभाव करके लेजाताहै । इस कारण जलका नाम अशनाया है ॥ अर्थ यह है कि अशन जो भोजन तिसको जो ले जावै उसको अशनाया कहते हैं ॥ और पान किये हुए जलको शोषण स्वभाववाला तेज ले जाताहै, यातें तेजका नाम उदन्या ! श्रुति भगवती कहती हैं । उदक (जल) को जो ले जाय उसको उदन्या कहते हैं ॥ हे श्वेतकेतो ! इस शरीररूप कार्यसे अन्नरूप कारणको जानो, क्योंकि कार्यद्वाराही कारणका ज्ञान होता है । इस कारण शरीर रूप कार्यद्वारा कारण अन्नका ज्ञान होता है, तिस अन्नरूप कार्यसे पृथिवीरूप कारणको निश्चय करो, तिस पृथिवीरूप कार्यसे जलरूप कारणको निश्चय करो, जलरूप कार्यसे तेजरूप कारणको निश्चय करो, तेजरूप कार्यका कारण जो सदात्मा ब्रह्म है, तिसको निश्चय करो, यह स्थावरजंगमरूप सर्व प्रजा सद्ब्रह्महीका कार्य, तथा तिस सद्ब्रह्महीमें स्थित है।तथा तिस ब्रह्महीमें लय भावको

होता है इस कारण सर्व नाम रूप प्रपंच आत्मरूप है । इस सूक्ष्म आत्मासे भिन्न नहीं है, सो ब्रह्म ही आत्मा है, ऐसा ब्रह्मरूपही तुम हो ॥शंका॥ हे भगवन ! मैं ब्रह्मरूप कैसे हूँ, मैं परिच्छिन्न हूँ ब्रह्म तो व्यापक है, यातें मैं ब्रह्मरूप नहीं ॥ समाधानरूप अभ्यासको पिता कहता है ॥ हे श्वेतकेतो ! जब पुरुष मृत्युको प्राप्त होताहै, तब प्रथम तिस पुरुषके नेत्रादिक इन्द्रियसहित वाक् इन्द्रिय मनमें लय होजाते हैं, मन प्राणमें लयभावको प्राप्त होताहै, प्राण सूक्ष्म पंचभूतोंसहित जीवात्मामें लय होतेहैं, तिन भूतोंसहित जीवात्मा मायासहित ब्रह्ममें लयभावको प्राप्त होताहै । इस कारण मरणकालमें जिस ब्रह्ममें एकताको जीव प्राप्त होता है, ऐसा ब्रह्मही तुम हो ॥ और नित्यही सुषुप्ति अवस्थामें तिस ब्रह्मके साथ अभेदभावको प्राप्त होते हो । परिच्छिन्नता आदिक केवल शरीरादि उपाधिसे (करके) हैं, वास्तवमें तू शुद्ध पूर्ण ब्रह्मरूपही है । इसकारण परिच्छिन्न देहादिकोंमें अभिमानको त्यागकर अपने शुद्ध रूपको स्मरण करो ॥ इति ॥

अथ आत्मसाक्षात्कार करनेके अर्थ उपदेशनिरूपण ।

ब्रह्मसे उत्पन्न हुआ जो नामरूप जगत् है सो र सर्पकी नाईं मिथ्याहै सत्य नहीं, जैसे रज्जुसे सर्प उत्पन्न हुआ मिथ्या कहते हैं, सत्य नहीं कहते हैं तैसे ब्रह्मसे उत्पन्न हुआ प्रपंच

मिथ्या है, सत्य नहीं, इस स्थानमें यह अभिप्राय ऊपरसे जानना चाहिये, जैसे रज्जुका सर्प विवर्त्त है तैसे ब्रह्मका जगत् विवर्त है, विवर्तका लक्षण यह है, "अतात्विकोऽन्यथा भावो-विवर्त्तः" सत्य अधिष्ठानका मिथ्यारूपसे प्रतीत होना यह विवर्तके लक्षणका अर्थ है, ब्रह्मका जंगत् पारिणाम होता तो जगत सत्य होता क्योंकि "तात्विकोऽन्यथा भावःप-रिणामः" जैसे दुग्ध वास्तवमें दधिरूपताको प्राप्त होता है, तिस दुग्धसे भिन्नही दधि है, तैसे निरवयव ब्रह्मका यह जगत पारिणाम बनै नहीं। विवर्त तो निरवयव आकाशमेंभी नीलरूप तथा कटाहाकार रूपसे होता है, यातें जैसे रज्जुमें सर्प मिथ्या उत्पन्न होता है और जैसे आकाशमें मिथ्या नील-रूपादि प्रतीत होता है, तैसे ब्रह्मसे मिथ्याही उत्पन्न हुआ जगत् ब्रह्ममेंही प्रतीत होता है । यातें हे श्वेतकेतो ! तुम अपने अद्वितीय भावको स्मरण करो ॥ शंका ॥ हे भगवन ! इस सूक्ष्म ब्रह्मसे यह स्थूल जगत् (प्रपंच) कैसे उत्पन्न होता है तथा ब्रह्म इस स्थूल जगतका आधारभी कैसे है, स्थूल मृत्तिकाही घटको उत्पन्न करती है, परमाणुसे घटकी उत्पत्ति देखनेमें आती नहीं, तथा सूक्ष्म परमाणुके आश्रित होकर घट स्थितभी होता नहीं, किन्तु स्थूल मृत्तिकामें स्थित होताहै । यह सूक्ष्म ब्रह्म जगत्का कारण तथा आश्रय कदा-चित बनै नहीं ॥ समाधान ॥ हे पुत्र ! इस वटवृक्षसे एक

फलको ले आवो, श्वेतकेतु लाया, पिताने कहा कि इस फलको भेदन करो, श्वेतकेतुने फलको भेदन किया, पिताने पूछा कि इस भेदन किये फलमें तुम क्या देखते हो, पुत्रने कहा हे भगवन ! सूक्ष्म बीज प्रतीत होते हैं, पिताने कहा हे पुत्र ! इन बीजोंमेंसे एक सूक्ष्म बीजको भेदन करो, पुत्रने भेदन करके कहा हे भगवन ! मैंने बीजको भेदन किया पिताने कहा भेदन कियेहुए बीजमें तुम क्या देखते हो, पुत्रने कहा इसमें मुझको कुछभी प्रतीत नहीं होता है, पिताने कहा हे पुत्र ! यह महान वटवृक्ष इस सूक्ष्म वटबीजमें स्थित है, जब इस वटबीजमें वृक्षका अभाव मानोगे तो जैसे बन्ध्या पुत्रसे कुछभी उत्पन्न होता नहीं तैसे इस सूक्ष्म वटबीजसेभी वृक्ष उत्पन्न न होगा। यातें सूक्ष्म रूपसे यह महानवृक्ष उत्पत्तिसे प्रथम तिस बीजमें स्थित तथा तिससे उत्पन्न हुआहै, तैसेही सूक्ष्म ब्रह्ममेंभी यह जगत सूक्ष्म रूपसे स्थित हुआ तिससेही उत्पन्न होता है ॥ हे पुत्र ! यह हमारा समाधान तुम्हारी शंकाके अनुसार है ॥ वास्तवमें तो महान आकाशादिकोंसेभी ब्रह्म महान है, और सत्तारूपसे घटादिरूप सर्व जगतमें व्यापक है, सूक्ष्मरूपसे जो श्रुतिमें कथन किया है, सो केवल दुर्लक्ष्य अभिप्रायसे कहा है, अल्प है इस कहनेमें श्रुतिका तात्पर्य नहीं जैसे सूक्ष्म वस्तुका दर्शन विना सावधानताके होता नहीं,

तैसे सावधान हुए बिना ब्रह्मका प्रत्यग्रूपसे दर्शन होता नहीं॥ यातें तुम शुद्ध ब्रह्मरूप हो ॥ शंका ॥ हे भगवन ! प्रत्यग्ब्रह्म जब सर्वत्र व्यापक है, वो सर्वको अपना आत्मरूपसे प्रतीत हुआ चाहिये, तथा सर्व जगतमें व्यापक होनेसे सर्व जगतमेंभी प्रतीत (भान) हुआ चाहिये । जब सूक्ष्म होनेसे दर्शनके अयोग्य कहोगे तो तिस ब्रह्मका साक्षात्कार किसी पुरुषकोभी न होनेसे संसारभ्रमकी निवृत्ति किसीकोभी न होनी चाहिये यातें मैं ब्रह्मरूप कैसे हूँ ॥समाधान॥ हे पुत्र ! इस लवणको रात्रिमें जलमें डाल देना और प्रातः मेरे समीप लाना। श्वेतकेतुने तैसाही किया, प्रातःकालमें पिताके समीप आकर स्थित हुआ, पिताने कहा, हे पुत्र ! जो लवण रात्रिमें तुमने जलमें डालाथा तिसको निकास लेवो, श्वेतकेतुने जलमें हस्त डालकर निकालनेवास्ते बहुत परिश्रम किया परन्तु लवण जलसे बाहर निकला नहीं ॥ पिताने कहा हे पुत्र ! जलके ऊपरदेशसे आचमन करो, श्वेतकेतुने जब आचमन किया, तब पिताने पूछा इसमें क्या है, पुत्रने कहा, हे भगवन ! लवण है, पिताने कहा हे पुत्र ! इस जलके मध्यदेशसे आचमन करो, पुत्रने जब मध्य देशसे आचमन किया, तो पिताने पूछा इसमें क्या है, पुत्रने कहा, भगवन, लवण है, पिताने कहा हे पुत्र ! अब नीचे देशसे आचमन लेवो जब पुत्रने आचमन लिया तब पिताने पूछा इसमें क्या है. पुत्रने कहा

हे भगवन। लवण है, पिताने कहा, हे पुत्र! इस जलको त्याग कर मेरे पास आवो, पुत्र लवण सदा वर्तमान है, ऐसा कहता हुआ पिताके पास आया। पिताने कहा हे पुत्र! जैसे इस जलमें लवण है भी परन्तु तुमको इन नेत्रोंसे प्रतीत होता नहीं; तैसे सर्वमें व्यापक ब्रह्मभी बहिर्मुख इन्द्रियोंसे प्रतीत होता नहीं; जैसे लवणका रसनासे ज्ञान होता है, तैसे शुद्ध बुद्धिसे आत्मा प्रत्यक्ष होता है॥ यातें श्रद्धासहित शुद्ध बुद्धिसे अपने शुद्धस्वरूपको निश्चय करो; ब्रह्मको कहीं दूर न जानो इस शरीरमेंही साक्षीरूपसे ब्रह्म स्थितहै॥ जैसे जलसे भिन्नही लवण है, तैसे देहादिकोंसे पृथकही प्रत्यग् ब्रह्म है। यातें देहादिकोंसे भिन्न शुद्ध ब्रह्मरूप तुम हो॥ शंका॥ हे भगवन्! नेत्रादिकोंके अविषय स्वभाव आत्माके प्रत्यक्षमें कोई उपाय कथन करो, जिस उपायसे मैं शीघ्रही आत्माको जानकर कृतार्थ होऊं॥समाधान॥हे पुत्र! गांधारदेशमें रहनेहारे किसी पुरुषको चौर पुरुष पकडकर वनमें ले आये, तिस पुरुषके नेत्रोंको बांधकर तिस वनमें तिसके भूषणादिको उतारकर छोड देतेभये, सो गांधारदेशका पुरुष तिस वनमें महान दुःखको प्राप्त होकर रुदन करने लगा और कहने लगा कि मुझ गांधारदेशमें रहनेवाले पुरुषको चोरोंने नेत्रादिक बांधकर तथा वस्त्राभूषण उतारकर इस कठिन वनमें छोड दिया है, इस वनमें मुझको सिंह, व्याघ्रादि दुःख देते हैं, ऐसे ऊंचे पुकारते पुरुषको दुःखी

देखकर कोई कृपालु पुरुष तिसके नेत्रोंके बंधनको खोलकर यह कहता भया; हे पुरुष ! जिस गांधारदेशसे तू आया है, इस मार्गसे तुम अपने गांधारदेशको चले जावो, इस दिशामें ही गांधारदेश है सो पुरुष तिस दयालुके उपदेशको श्रवणकर अपने गांधारदेशमें प्राप्त हुआ कैसा वह पुरुष था जो उपदेश-के ग्रहण करनेमें समर्थ, तथा बुद्धिमान था, सो अपने देशको प्राप्त होकर परम आनन्दको प्राप्त हुआ ॥ हे श्वेत-केतो ! ऐसेही तुमको कामक्रोधादि चोरोंने शुद्ध ब्रह्मस्वरूप स्वदेशसे ले आकर संसाररूपी वनमें प्राप्त किया है, तिन काम-क्रोधादिक चोरोंने तुम्हारे साक्षीरूप नेत्रोंको बांधकर महा-दुःखको प्राप्त किया है, यातेही तू संसाररूपी वनमें दुःखको प्राप्त हुआ है । ब्रह्मवेत्ता गुरुके महा वाक्य उपदेशरूप हस्तसे अज्ञानरूप दृढबन्धनकी निवृत्ति करो; यातें तुमभी गांधारदेश की नांई अपने ब्रह्मरूप देशको प्राप्त होवो । गुरुका उपदेशही ब्रह्मकी प्राप्तिमें द्वार है, और तिसके सहकारी शिष्यकी बुद्धि तथा आत्मजिज्ञासा यह दोनों जानना ॥ गुरु उपदेशको श्रवण करके आत्मनिश्चयवाला पुरुष ब्रह्म स्वरूपको प्राप्त होता है, तिस महात्मा ज्ञानीका तवतक शरीर प्रतीत होता है, जबतक प्रारब्ध है, प्रारब्धके भोगके पश्चात् सो विद्वान देह कैवल्यको प्राप्त होता है-अर्थात ब्रह्मसे अभिन्न होता है, ऐसा शुद्ध ब्रह्मही तुम्हारा स्वरूप है ॥ शंका ॥ हे भगवन!

सुपुप्तिकी नांई मरणकालमें जैसे अज्ञानी ब्रह्मसे अभिन्न होता है. तैसे विद्वानभी ब्रह्मसे अभिन्न होता है, अथवा किसी और रीतिसे ब्रह्मसे अभिन्न होता है समाधान ॥ हे पुत्र ! मरण-कालमें अज्ञानी पुरुषके समीप सम्बन्धी आकर पूछते हैं, यथा, तुम मुझ पुत्रको पहिचानते हो, तुम मुझ भ्राताको पहिचानते हो, सो पुरुष तबतक पहिचानता है जबतक तिसके वाक् आदि इन्द्रिय मनमें लयभावको नहीं प्राप्त भये, तथा मन-प्राणमें, प्राण जीवमें, जीव परमात्मामें लयभावको प्राप्त नहीं होता । जब तिसके वाक् आदि सर्व लयभावको प्राप्त होते हैं, तब किंचितभी जानता नहीं, ब्रह्मप्राप्ति पर्यन्त तो यथा-क्रमसे विद्वानकी अज्ञानीकी समानगति है, विलक्षणता यह है कि जो अज्ञानी पुरुष है, सो मरणकालमें सुपुप्तिकी नांई ब्रह्ममें लयभावको प्राप्त तो होता है, परन्तु ज्ञानके अभावसे तिसकी अविद्या निवृत्ति होती नहीं, तथा कर्म वासनाभी सुपुप्तिकी नांई सूक्ष्म रूपसे स्थित होती है; याते सो अज्ञानी पुरुष अविद्या, काम, कर्मके अधीन हुआ पुनः जन्ममरणको प्राप्त होता है, और ज्ञानी पुरुषकी अविद्याका ब्रह्मज्ञानसे नाश हो जाता है, अविद्याके नाश हुयेसे तिस अविद्याके कार्य, वासना, कर्म, संशय, विपर्ययादि सर्व निवृत्त हो जाते हैं, तथा तिस ज्ञानीके प्राणादिक परलोकमें गमन करते नहीं, किन्तु ब्रह्ममें लयभावको प्राप्त होते हैं, इस-

कारण हे श्वेतकेतु ! ज्ञानी इस शरीरको त्यागकर जिस ब्रह्मसे अभिन्न होता है, ऐसे शुद्ध ब्रह्मरूपको प्राप्त होवो, सोई तुम्हारा स्वरूप है ॥ शंका ॥ हे भगवन् ! जब अज्ञानी पुरुषको मृत्यु परलोकमें प्राप्त करता है, तो ज्ञानीकोभी किसवास्ते मृत्यु परलोकमें नहीं ले जाता, इसका कारण मुझसे कहो; अथवा अज्ञानी मरणकालमें ब्रह्मको प्राप्त हुआ परलोकमें सुखदुःखको किसवास्ते प्राप्त होता है ॥ समाधान ॥ हे श्वेतकेतो ! जैसे एक पुरुष चोर था, दूसरा पुरुष साधु था, तिन दोनोंको राजाके किंकरोंने चोर जानकर बलात्कारसे पकड लिया; राजाके समीप लेजाकर किंकरोंने कहा, यह दोनों चोर हैं, इन्होंने धनकी चोरी की है ॥ चोर कहता है मैंने चोरी नहीं की तब राजाके मंत्रीने कहा कि जब तुमने चोरी नहीं की तो इस तप्त परशु-को हस्तसे ग्रहण करो, यदि तुम चोर न होगे तो तुम्हारा हस्त दग्ध न होगा, प्रथम चोरने अपने कर्मको प्रगट न किया और मिथ्या संभाषण करके तप्त परशुको ग्रहण किया तो तिस चोर-का हस्त दाहको प्राप्त हुआ, तब राजाके भृत्योंने तिसको चोर जानकर अनेक प्रकारका दण्ड दिया, और जब साधु पुरुषको तप्त परशु ग्रहणवास्ते कहा, तब तिस साधुका हस्त दाहको नहीं प्राप्त हुआ, तब राजाने तथा राजाके भृत्योंने तिस साधु पुरुषसे क्षमा मांगी, और अपना अपराध क्षमा कराके तिस साधुको अन्नावस्त्रादिकभी दिये ॥ इसी प्रकार

अज्ञानी पुरुष अपने शुद्ध रूपको न जानता हुआ कहता है कि मैं ब्रह्म नहीं हूं, मैं सुखीदुःखी जन्ममरणवाला हूँ, यहही चोरी रूप स्वकर्मका छिपाना है । जैसे तिस चोरके हस्तका प्रथम दाह हुआ पश्चात् राजाके भृत्योंने बांधकर दुःख दिया, तैसे यह अज्ञानी प्रथम मृत्युसे पीडाको प्राप्त होता है, पश्चात् चौरासीलक्ष योनिरूप बन्धनको प्राप्त हुआ दुःखको प्राप्त होता है ॥ और जैसे तिस साधुपुरुषको किंचितभी दुःख हुआ नहीं तथा तिन राजादिकोंने उसकी पूजा की ॥ तैसे ज्ञानी पुरुषभी अपने शुद्ध स्वरूपमें निश्चयवाला हुआ तथा सर्वविक्षेपसे रहित हुआ ब्रह्मादिकोंसे पूजित होता है ॥ अज्ञानी पुरुष अपने शुद्ध रूपको न जानकर अपने अज्ञानसेही पुनः पुनः जन्म मृत्युको प्राप्त होता है ॥ ज्ञानी तो शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्मको अपना स्वरूप जानकर पुनः जन्ममृत्युको प्राप्त होता नहीं ॥ जिस ब्रह्मस्वरूपको ज्ञानी प्राप्त होता है, हे श्वेतकेतो "तत्त्वमसि" अर्थ यह ॥ सो ब्रह्म तुम्हारा अपना स्वरूप है तिसको जानकर कृतकृत्य भावको प्राप्त होवो ॥ इति आरुणि (उद्दालक) पिता तथा श्वेतकेतु पुत्रके संवादका सार समाप्त हुआ ॥ ॐ शांतिः ॐ शांतिः ॐ शांतिः ॥

सनत्कुमार नारद संवादसे भूमा (कूटस्थ) ब्रह्मनिरूपण ॥

नारदने पूछा, हे भगवन् ! सनत्कुमार सुखस्वरूप भूमा ब्रह्मको मैं जाना चाहता हूँ, यातें मुझको आप भूमाब्रह्मका

उपदेश करो ॥ सनत्कुमार बोले ॥ हे नारद । भूमाका लक्षण यह है, जिस पदार्थके बुद्धिमें निश्चय हुए ज्ञानी पुरुष अपनेसे भिन्न किसी पदार्थको नेत्रोंसे देखता नहीं तथा अपनेसे भिन्न किसी पदार्थको श्रोत्रसे सुनता नहीं तथा अपनेसे भिन्न किसी पदार्थको मनसे जानता नहीं, तिस परिच्छेद रहित ब्रह्मको भूमा कहते हैं, हे नारद । यह भूमा अमरण धर्मा होनेसे अमृत है ॥

हे नारद । मायासे आदिलेकर यह सर्व प्रपंच भूमाब्रह्मकी विभूति है, तिस विभूतिरूप महिमामेंही सो भूमा स्थित है, यातें सो विभूतिरूप महिमाही तिस भूमाका आधार है, ॥ हे नारद । जैसे लोकमें देवदत्त नामा पुरुषकी गौ, अश्व, हस्ति, हिरण्य, दास, भार्या, क्षेत्र, गृह इत्यादिक जो विभूति हैं, सो विभूति रूप महिमा तिस देवदत्त पुरुषसे भिन्न हुई प्रतीत होती हैं, और सो देवदत्त पुरुष तिस भिन्न विभूतिके आश्रित हुआ प्रतीत होता है, तैसे यहां यह मायासहित प्रपंचरूप महिमा तिस सुखरूप भूमासे भिन्न नहीं है, किन्तु सो महिमा तिस भूमासे अभिन्नही है । यातें तिस भूमामें भेदरूप वस्तु परिच्छेदकी प्राप्ति होती नहीं । हे नारद । जैसे स्वयं "दासास्त-पस्विनः" ॥ अर्थ यह ॥ तपस्वी पुरुष आपही अपने दास हैं॥ इस स्थलमें एकही तपस्वियोंविषे स्वामीदास भाव होता है ॥ तैसे तिस सुखरूप भूमाका सर्व परिच्छेदसे रहित जो अपना

स्वरूप है, सो अपना स्वरूपही तिस भूमाकी महिमा है, तिस स्वरूपभूत महिमामें सो भूमा व्यवहारदृष्टि करके स्थित होती है ॥ यथा श्रुति ॥ "स भूमा कस्मिन्प्रतिष्ठितः स्वे महिम्नि" ॥ अपने स्वरूपभूत महिमामें जो तिस भूमाकी स्थिति कथन करी है, सो भी व्यवहार दृष्टिको लेकर कथन करी है वास्तवमें सो भूमा निराधार है। हे नारद! यह तत्पदार्थरूप भूमाही दशों दिशामें स्थित है तथा तीनों कालमें स्थित है। जैसे निर्मल आकाशमें गंधर्वनगर कल्पित होता है, तैसे सर्व भेदसे रहित इस भूमामें यह देशकालसे आदि लेकर सर्व स्थूल सूक्ष्म पदार्थ कल्पित हैं, और कल्पित पदार्थ अधिष्ठानसे भिन्न होता नहीं, इस सर्व कारण सो भूमाही यह सर्व जगतरूप है, इस प्रकार इस जगतका अधिष्ठान रूपसे तिस भूमाको तू प्रथम अपनी बुद्धिमें आरूढ कर, तिसके अनन्तर तिस भूमाकी तटस्थ रूपताके निवृत्तिवास्ते सो सर्वत्र व्यापक भूमा, अहं अस्मि, इस प्रकार तिस भूमाको तू अपना आत्मारूपसे जान हे नारद! यद्यपि अहं इस शब्दसे अहंकारकी प्रतीति होतीहै; तथापि तिस अहंकारकी तिस भूमाविषे सादृश्यताहै तिस सादृश्यताको ग्रहण करके सो अहंशब्द गौणी लक्षणासे तिस भूमाकाही बोधन करताहै॥ अब तिस अहंकारकी तथा भूमा आत्माकी सादृश्यता निरूपण करतेहैं हे नारद! पूर्वादिक दशों दिशाओंमें तथा भूत, भविष्यत, वर्तमान इन तीन कालोंमें

स्थित जितने कि देहधारी जीव हैं, ते सम्पूर्ण जीव प्रथम अहं इस प्रकारका अनुभव करते हुएही पश्चात् वचन उच्चारणादिक व्यवहारोंको करते हैं, तिस अहं अनुभवके विना कोई व्यवहार सिद्ध होता नहीं, इससे यह जाना जाताहै कि यह अहंकारही इन जीवोंके सर्व व्यवहारोंका कारण है, ऐसा सर्व व्यवहारोंका कारणभूत अहंकार जैसे सर्व दिशाओंको तथा सर्व भूतप्राणियोंको व्याप्य करके स्थित हुआ है तैसे तिस अहंकारका आश्रयरूपसे यह जीवात्माभी तिन सर्वदिशाओंको तथा सर्व भूतप्राणियोंको व्याप्त करके स्थित हुआ है । इस प्रकार अहंकारकी तथा भूमा आत्माकी सर्वत्र व्यापकतारूप सादृश्यता है, तिस सादृश्यताको अंगीकार करके सो अहं शब्द लक्षणावृत्ति करके सर्व उपाधियोंसे रहित कूटस्थ आत्माकोही बोधन करता है, तिसी कूटस्थ आत्माका तत्पदार्थरूप भूमाके साथ अभेद तत्त्वमसि आदिक महावाक्य प्रतिपादन करतेहैं ॥ अब तिस अभेदज्ञानका जीवनमुक्तरूप फलनिरूपण करते हैं ॥ हे नारद ! जैसे इस लोकमें यह अज्ञानी पुरुष नेत्रादिक इन्द्रियोंसे तथा मनसे सर्व व्यवहारोंको करते हुएभी अपने मनुष्यपनेको विस्मरण नहीं करते ॥ किन्तु अपने मनुष्यपनेको संशय विपर्ययसे रहित होकर सर्वदा अनुभव करते हैं । तैसे जो पुरुष गुरुशास्त्रके उपदेशमे तिन अहंकारादिक उपाधियोंको विस्मरण

करके मैं आत्मा भूमारूप हूँ, इस प्रकारके संशय विपर्ययसे रहित ज्ञानको जो प्राप्त होता है, सो विद्वान् पुरुष वेदान्तशास्त्रके चिन्तन कालमें आनन्दस्वरूप आत्मामेंही क्रीडा करता हुआ स्थित होताहै, जैसे बालक, बालकोंके समुदायमें क्रीडा करता हुआ स्थित होताहै तथा सो विद्वान् पुरुष स्नानभोजनादिक कालमेंभी तिस आनन्दस्वरूप आत्मामेंही चित्तकी शक्तिरूप रतिको धारण करता हुआ स्थित होताहै, जैसे कामी पुरुष विदेशमें स्थित हुआभी चित्तकी शक्तिरूप रतिको सर्वदा अपनी स्त्रीमेंही रखता है ॥ जीवनमुक्त पुरुषकी दो प्रकारकी दशा होतीहै, एक तो समाधिदशा होती है, और दूसरी तिस समाधिसे उत्थान दशा होती है ॥ तहां समाधिसे उत्थानदशाभी दो प्रकारकी होती है ॥ एक तो वेदान्तशास्त्रका चिन्तनरूप उत्थानदशा होती है। और दूसरी स्नान भोजनादिक व्यवहाररूप उत्थानदशा होती है ॥ तहां वेदान्तशास्त्रका चिन्तनरूप प्रथम उत्थानदशामें सो विद्वान् पुरुष जो आत्माका चिन्तन करता है, तिस आत्मचिंतनको श्रुतिने क्रीडा शब्दसे कथन किया है। और स्नानभोजनादिक व्यवहाररूप दूसरी उत्थानदशामें सो विद्वान पुरुष जो आत्माका चिन्तन करता है, तिस आत्मचिन्तनको श्रुतिने रति शब्दसे कथन किया है ॥ जैसे सो व्युत्थानदशा दो प्रकारकी होती हैं, तैसे सो

समाधि दशाभी दो प्रकारकी होती हैं ॥ एक तो सविकल्प समाधि, और दूसरी निर्विकल्प समाधि होतीहै। तहां सविकल्प समाधिमें सो विद्वान् पुरुष जो आत्माका चिन्तन करताहै, तिस आत्मचिन्तनको श्रुतिने मिथुन शब्द करके कथन किया है, और निर्विकल्प समाधिमें सो विद्वान् पुरुष जो आत्माका चिन्तन करताहै, तिस आत्मचिन्तनको श्रुतिने आनन्द, इस शब्दसे कथन किया है ॥ अब मिथुन तथा आनन्द इन दोनों शब्दोंका अर्थ निरूपण करतेहैं ॥ हे नारद ! जैसे इस लोकमें गृहके सर्व व्यवहारोंको परित्याग करके एकान्त देशमें स्थित जो स्त्री पुरुष हैं, तिन स्त्रीपुरुष दोनोंका जो परस्पर मिथुनी भाव है, सो मिथुनीभाव तिन दोनोंके परस्पर विषयानन्दका हेतु होताहै, तैसे इस विद्वान् पुरुषका ध्याता, ध्येय भाव करके जो आत्मामें मिथुनी भाव है, सो मिथुनी भावही इस विद्वान् पुरुषको सविकल्प समाधि कालमें आनन्दका हेतु होता है ॥ हे नारद ! जैसे इस लोकमें गांधर्वादिक विषयोंकी प्राप्तिसे अनन्तर परीक्षक पुरुषोंको जो तिसके आनन्दरूप फलका अनुभव होता है, सो आनन्दका अनुभव निर्विकल्पही होताहै, तैसे इस विद्वान् पुरुषको निर्विकल्प समाधि कालमें जो निरतिशय आनन्दका अनुभव होताहै; सो आनन्दका अनुभव भी ध्याता, ध्यान, ध्येय इत्यादिक

त्रिपुटीरूप विकल्पसे रहितही होता है ॥ हे नारद! तिस विद्वान् पुरुषको जो आत्मामेंही आनन्द होताहै, इसमें यह कारण है कि अद्वितीय आत्माको साक्षात् अनुभव करता हुआ सो विद्वान पुरुष जन्म मरणादि सर्व दुःखोंकी निवृत्तिमें किसी दूसरेकी अपेक्षा नहीं करता, इस कारणसे सो विद्वान् पुरुष विराट् भगवानकी नाई स्वराट् संज्ञाको प्राप्त होता है, और सो विद्वान् पुरुष ब्रह्मरूप होनेसे सर्व जीवोंका आत्मा रूप है, इस कारणसे सो विद्वान् पुरुष सम्पूर्ण श्रेष्ठ लोकोंमें कामचार होता है, यहांपर प्रतिबन्धसे रहित तिन सर्व-लोकोंके, प्राप्तिका नाम कामचार है, यह तिस भूमा आत्माके ज्ञानका फल है ॥ इति ॥ भूमारूप ब्रह्मनिरूपण समाप्त हुआ ॥

अथ ॐकारकी श्रेष्ठता निरूपण ॥

प्रजापतिने सर्व लोकोंसे सार ग्रहण करनेकी इच्छावास्ते ध्यान किया ॥ ध्यान करतेही तिस प्रजापतिके मनमें ऋगु, यजुष्, साम, यह तीनही साररूपसे प्रतीत हुए ॥ तिन वेदोंसेभी सार ग्रहणकी इच्छा करता हुआ प्रजापतिने पुनः ध्यान किया ॥ ध्यान करते भूर्भुवः स्वर यह व्याहृतिरूप अक्षरही साररूपसे प्रतीत हुये ॥ तिन अक्षरोंसे भी सार जाननेकी इच्छावाले प्रजापतिने पुनः ध्यान किया ॥ तब ॐकारही साररूपसे प्रतीत हुआ ॥ जैसे पर्णोंके नालरूप

शंकुसे पत्रोंके अवयव व्याप्त हैं, तात्पर्य यह है कि सो पर्णरूप नालही पत्रोंके अवयवोंमें व्याप्त हो रहा है, तैसे ॐकारही सर्व शब्दोंमें व्यापक है । इसकारण ॐकारमें सर्वसे श्रेष्ठता है ॥ ॐकारकी श्रेष्ठता निरूपण समाप्त हुआ ॥

इति छान्दोग्योपनिषद्सार (भाषा) समाप्त हुआ ॥ ॐ शांतिः ॥ ३ ॥

ॐ परमात्मने नमः ।

सामवेदीय केनोपनिषद्के भाष्यके अर्थसे गुरु शिष्यसंवाद सर्वका प्रेरक आत्मदेवके स्वरूपका निरूपण ॥

कोई एक मुमुक्षु इस लोकके भोगोंसे तथा परलोकके भोगोंसे विरक्त हुआ, इस प्रकारके विवेकको प्राप्त होता है कि आत्मा नित्यहै, तिससे भिन्न सर्व प्रपंच अनित्य है, तथा शम दमादिक साधनों सहित तथा उत्कट मोक्षकी इच्छा सहित हुआ ब्रह्म श्रोत्रिय तथा ब्रह्मनिष्ठ गुरुकी शरणको प्राप्त होताहै, और गुरु शिष्य संवाद द्वारा कथनसे ब्रह्मविद्या शीघ्र बुद्धिमें स्थित होती है । ऐसा भाष्यकार श्रीशंकराचार्यजीने लिखा है, तिसके अनुसार हमनेभी अवतरणिका किंचित् दिखाई है ॥ अथ उपनिषदके

अक्षरोंका अर्थ निरूपण करते हैं ॥ शिष्य प्रश्न करता है ॥ हे गुरो। यह मन किसकी प्रेरणासे अपने अनुकूल पदार्थोंको प्राप्त होता है। और हे गुरो! जिस प्राणविना किसी इन्द्रियकी चेष्टा होती नहीं, ऐसे मुख्य प्राणका कौन प्रेरक है। जिस वाक् इन्द्रियसे सर्व प्राणी शब्दको उच्चारण करते हैं, सो वाक्इन्द्रिय किसकी प्रेरणासे नानाप्रकारके संस्कृत भाषादि शब्दोंको उच्चारण करती है, ॥ तथा श्रवण इन्द्रिय किस देवकी प्रेरणासे नानाप्रकारके शब्दको श्रवण करताहै। तथा नेत्र इन्द्रिय किस देवका प्रेरा हुआ नानाप्रकारके हरित पीतादिरूपको देखताहै। रसना रसको· ग्रहण करती है, घ्राण इन्द्रिय गंधको ग्रहण करतीहै। त्वक् स्पर्शको ग्रहण करताहै। इसी प्रकार अन्य इन्द्रियोंमेंभी जानना ॥ तात्पर्य यह है कि स्थूल सूक्ष्म संघातका प्रेरक कौन है, यह कृपापूर्वक कहिये ॥ १ ॥ ऐसे शिष्यके प्रश्नको सुनकर गुरु उपदेश करताहै ॥ हे शिष्य जो! तुमने श्रोत्रमनआदिकोंका प्रेरक पूछा है ॥ सो आत्मा श्रोत्रका श्रोत्र है, मनका मन है, वाक्का वाक् है, प्राणका प्राण है, नेत्रोंका नेत्र है ॥ तात्पर्य यह है कि मन प्राणादिक आत्माकी सत्तास्फूर्ति करकेही अपने अपने कार्योंको करतेहैं ॥ आत्माकी सत्ता स्फूर्तिविना किंचितमात्रभी नहीं कर सकते ॥ यातेही श्रुतिमाताने इन्द्रियोंका इन्द्रिय, मनका मन, प्राणका प्राण कहा है ॥

ऐसे देह इन्द्रियोंका प्रेरक, देह इन्द्रियादिकोंसे भिन्न आत्माको जानकर तथा देह इन्द्रियादिकोंमें आत्मभावको त्याग कर अधिकारी पुरुष अमृतरूप ब्रह्मको प्राप्त होताहै। तिस अमृतरूप ब्रह्मको प्राप्त हुए जन्ममरणरूप अनर्थको प्राप्त होता नहीं ॥२॥ यह आत्मा श्रोत्रका श्रोत्र है, यातें तिस आत्मामें श्रोत्र प्रवृत्त होता नहीं, तथा वाक्का वाक है, यातें वाक् इन्द्रिय आत्मामें प्रवृत्त होती नहीं । तथा मनका मन होनेसे मनभी प्रवृत्त होता नहीं ॥ जैसे अग्नि अपनेसे भिन्न काष्ठादिकोंका दाह करता है, अपने दाह करनेमें समर्थ नहीं, तैसे जितने घटादिक जड पदार्थ हैं तथा अपनेसे भिन्न हैं तिनमें इन्द्रिय प्रवृत्त होती है ॥ अपने अधिष्ठान आत्माके प्रकाश करनेमें श्रोत्र नेत्रादिक असमर्थ हैं ॥ हे शिष्य! मन इन्द्रियादिकोंसेही ज्ञान होता है, आत्मा मन आदिकोंका अविषय है यातें तिस अविषय आत्माको हम मन आदिकोंसे नहीं जान सकते हैं, और यहभी हम नहीं जानते कि अधिकारी पुरुषोंको आचार्य कैसे उपदेश करता है ॥ हे शिष्य! यद्यपि यह आत्मा मन, वाणी, आदिकोंका अविषय है, तथापि तिस आत्माका निषेधरूपसे श्रुति भगवती उपदेश करती है सो ब्रह्मात्मा कार्य-से भिन्न है, तथा कारणसेभी भिन्न है, कार्यकारण दोनोंका प्रकाशक है, ऐसे कार्यकारणसे भिन्न आत्माके स्वरूपको हमने आचार्योंके मुखसे श्रवण किया है ॥ ३ ॥ हे शिष्य,

आत्माके स्वरूपको पुनः श्रवण करो। जो आत्मा वाणीसे नहीं कहा जासकता और जिस आत्माकी प्रेरणासे वाणी नानाप्रकारके शब्दोंको उच्चारण करती है, तिस प्रत्यक् देवको तुम ब्रह्मरूप जानो, और जिसकी विषयरूपसे पुरुष उपासना करते हैं, सो विषयजन्य पारिच्छिन्न पदार्थ ब्रह्म नहीं है ॥ ४ ॥ जिस आत्माको मनसे पुरुष नहीं जान सकता है, और जिस आत्मासे प्रकाशित हुआ मन नानाप्रकारके संकल्पविकल्पोंको करता है; तिस साक्षी आत्माको ब्रह्मरूप जानो। और जिस पारिच्छिन्न जड पदार्थको ब्रह्मरूप जानकर पुरुष उपासना करते हैं, सो ब्रह्म नहीं है। ऐसा महात्मा कहते हैं ॥ ५ ॥ जिस आत्माको नेत्रसे पुरुष नहीं देख सकता, और जिस स्वप्रकाश आत्मासे नेत्रको विषय करता है अर्थात् मेरे नेत्र हैं ऐसा पुरुष जानता है, तिस प्रत्यगात्माको ब्रह्मरूप जानो, जिस पारिच्छिन्न आत्माकी पुरुष उपासना करते हैं, सो ब्रह्म नहीं है ॥ ६ ॥ जिस आत्मादेवको श्रोत्रसे पुरुष नहीं सुन सकते तथा जिस साक्षीसे यह श्रोत्र प्रकाशित होते हैं सो साक्षी ब्रह्म है, ऐसा जानो। जिसको विषय मानकर पुरुष उपासना करते हैं सो ब्रह्म नहीं है ॥ ७ ॥ प्राणकी जो क्रियावृत्ति है, तथा अन्तःकरणकी जो ज्ञान वृत्ति है, तिस क्रियावृत्ति तथा ज्ञानवृत्ति सहित हुई घ्राण

इन्द्रिय जिस आत्माको विषय कर सकती नहीं; और जिस आत्मासे प्रेरित घ्राण इन्द्रिय अपने व्यापारको करतीहै । ऐसे आत्माको तुम ब्रह्म जानो। जिसको विषयरूप जानकर पुरुष उपासना करते हैं, सो विषयरूप ब्रह्म नहीं है ॥ ८ ॥ ऐसे हेय, उपादेयसेशून्य ब्रह्मात्माका गुरुने शिष्यके प्रति उपदेश किया ॥ शिष्य आत्माको मनवाणीका विषयरूपसे जान लेवै, इस अभिप्रायसे गुरु शिष्यकी परीक्षा करता है ॥ हे शिष्य! यदि तू मानै कि ब्रह्मके स्वरूपको मैं सुखेनही जानता हूं, तव तुमने अल्पही ब्रह्मके स्वरूपको जाना। यथार्थ ब्रह्मके स्वरूपको नहीं जाना यदि अधिदैव उपाधिसे विशिष्ट ब्रह्मको जाना तौभी तुमने यथार्थ ब्रह्मके स्वरूपको नहीं जाना ॥ हे शिष्य! मैं यह मानता हूँ कि अबभी तुमको ब्रह्मका विचार करना चाहिये, विचार विना यथार्थ ब्रह्मका बोध होना दुर्घट है, ऐसा गुरुने परीक्षाके लेनेवासते कहा, तब शिष्य एकान्त देशमें स्थित होकर जिस आत्माके यथार्थरूपका गुरुने उपदेश किया था तिस आत्माके यथार्थ रूपका अपनी बुद्धिमें आरूढ करता हुआ गुरुके समीप प्राप्त हुआ और इस प्रकारका वचन कहता भया ॥ हे गुरो! मैं ब्रह्मको जानता हूँ, ऐसा मैं मानता हूँ ॥ ९ ॥ गुरु बोले ॥ हे शिष्य! तू ब्रह्मके स्वरूपको कैसे जानता है ॥ शिष्य बोला ॥ हे गुरो! मैं ब्रह्मको जानता हूँ, ऐसे

विषयरूपसे ब्रह्मको नहीं मानता ॥ और मैं ब्रह्मको जानता हूँ, वा नहीं जानता ऐसा मैं नहीं मानता ॥ गुरु बोले ॥ हे शिष्य! यह तुमने विरुद्ध कहा! कि मैं ब्रह्मको जानताभी हूँ और नहीं भी जानता ॥ जब तू मानता है कि मैं ब्रह्मको नहीं जानता, तब मैं ब्रह्मको जानता हूँ, यह कैसे कहता है ॥ और जब मैं ब्रह्मको जानता हूँ, ऐसा तू मानताहै, तब मैं ब्रह्मको नहीं जानता, यह कैसे कहताहै ॥ इस प्रकार गुरुने परीक्षार्थ कहाभी, परन्तु शिष्य चलायमान नहीं हुआ और गर्जन करता हुआ अपने अनुभवको कहताहै ॥ शिष्य बोला ॥ हे गुरो! जो कोई अधिकारी हमारे ब्रह्मचारियोंके मध्यमें तिस आत्माके स्वरूपको जानताहै, सो मेरी कही रीतिसेही जानता है ॥ सो रीति यह है ॥ ब्रह्मात्मा ज्ञात है तथा अज्ञात है ॥ इन दोनों व्यवहारोंसे विलक्षण है, जो ज्ञात अज्ञातसे भिन्न स्वप्रकाश आत्माका गुरुने शिष्यके प्रति उपदेश किया था, तिस स्वप्रकाश आत्माके स्वरूपको शिष्यने निश्चय करकेही ज्ञात, अज्ञातसे भिन्न कहा ॥ १० ॥ यह गुरु शिष्यका संवाद समाप्त भया ॥

श्रुति भगवती गुरुशिष्यके संवादसे विनाही अधिकारी जनोंको उपदेश करती है।

जो विद्वान मनवाणीका अविषय ब्रह्मको मानताहै सो विद्वान ब्रह्मके स्वरूपको यथार्थ जानता है ॥ जो पुरुष मन

वाणीका विषय ब्रह्मको मानता है, सो पुरुष ब्रह्मके यथार्थ स्वरूपको नहीं जानता ॥ विद्वानोंको ब्रह्म अविज्ञात है, । अज्ञानी पुरुषोंको ब्रह्म विज्ञात है ॥ अर्थ यह ॥ मनवाणीका अविषय स्वप्रकाश ब्रह्म है, ऐसे स्वप्रकाश ब्रह्मको अविषयरूपसे जाननेवाला विद्वान यथार्थ जानता है ॥ और अज्ञानी पुरुषोंको तो देह इन्द्रियादिकोंमें आत्मतत्त्व बुद्धि होनेसे विषयरूपसे जानते हुएभी ते अज्ञानी पुरुष यथार्थरूपसे ब्रह्मको नही जानते ॥ ११ ॥ जितनी अन्तःकरणकी वृत्तियां उत्पन्न होती हैं, वह सर्व वृत्तियां आत्माके प्रकाशसे प्रकाशित हुई उत्पन्न होवी हैं, आत्माके प्रकाश विना कोई भी वृत्ति उत्पन्न होती नहीं यातें सर्व वृत्तियोंका विषयरूपसे प्रकाश करनेहारा आत्मा तिन वृत्तियोंसे भिन्नही स्वप्रकाश है ॥ इस आत्माके ज्ञानसेही पुरुष अमृतत्वको प्राप्त होता है ॥ अर्थात् जरामरणादिकोंसे रहित तथा आनन्दरूप जो ब्रह्मात्मा है, तिसको प्राप्त होता है ॥ आत्माके जाननेसे वलको प्राप्त होता है, जिस विद्यारूप वलसे जन्ममरणको प्राप्त होता नहीं, धन, सहाय, मंत्र, औषधि, तप, योग इनसे होनेहारा जो सामर्थ्य है, तिस सामर्थ्यसे मृत्युका तरण होता नहीं और ब्रह्मविद्यारूप सामर्थ्यको तो अपने स्वरूपसेही प्राप्त होता है यातें पुनः जन्ममरणको प्राप्त होता नहीं ॥ १२ ॥ यह पुरुष यदि इस जन्ममेंही अपने शुद्ध-

रूपको जानलेवै तो सत्यरूप तथा आनन्दरूप जो ब्रह्म है, तिसको प्राप्त होता है ॥ जब यह पुरुप भरतखण्डमें इस अधिकारी शरीरको पाकर परमेश्वरकी मायासे मोहित हुआ तथा तुच्छ विषयसुखमें आसक्त हुआ आनन्द-रूप आत्माको नहीं जानता है, तब इसकी बडी हानि होती है, जिस हानिसे यह पुरुप वारंवार जन्म मरणादिक दुःखोंको प्राप्त होता है, तथा काम क्रोधादिक जो चोर हैं, तिनके अधीन हुआ सो अज्ञानी पुरुप स्वकर्मके अनुसार अनेकप्रकारके उच्च नीच शरीरग्रहणसे मुक्त होता नहीं, इसीसे सो अज्ञानी पुरुप नष्ट हुआसा रहता है। यातें धैर्यवान पुरुप प्रमाद रहित हुआ आत्माको इस अधिकारी शरीरमेंही अवश्य निश्चय करै ॥ यह एकही आत्मा अनेक स्थावर जंगम भूतोंमें प्रतीत होता है; जैसे वास्तवमें एकही चन्द्रमा जलपात्रोंके भेदसे अनेक रूपसे प्रतीत होता है, तैसे एक आत्मादेव उपाधिभेदसे अनेक रूपसे प्रतीत होता है ॥ वास्तवमें एकही है ॥ इसी प्रकार सर्व भूतोंमें परमार्थसे एकही परमात्मा अनेक रूपसे स्थित है। इस रीतिके आत्मज्ञानसेही अधिकारी पुरुप देह इन्द्रियादिकोंमें अहंता ममताको त्यागकर अमृतभावको प्राप्त होता है ॥ तात्पर्य यह है कि जो जरा मरणादिक संसारधर्मसे रहित आनन्दरूप आत्मा है, तिसको प्राप्त होता है, इसमें किंचितभी संशय न करना ॥ इति ॥

परब्रह्मका अधिदैव तथा अध्यात्मरूपनिरूपण।

ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण परब्रह्मको अधिदैव, अध्यात्म इन दोनों रूपसे उपासना करते हैं, । अब तिस परब्रह्मके अधिदैवरूपको वर्णन करते हैं ॥ जो हिरण्यगर्भ भगवान, विराट भगवानकाभी जनक है, तथा जिस हिरण्यगर्भ भगवानका यह सम्पूर्ण विश्व शरीर है, तिस हिरण्यगर्भ भगवानके समष्टिरूप देहके अन्तर जो विद्युतके प्रकाश समान तत्त्व है, तथा चेतनरूप होनेसे तिस जड विद्युतसे विलक्षण है, तथा अपनी समीपता मात्रसे सर्व प्राणियोंके इन्द्रियोंका तथा मनका प्रेरक है, सो तत्वही तिस परब्रह्मका अधिदैवरूप है ॥ अब तिस परब्रह्मके अध्यात्मरूपका वर्णन करते हैं। जो तत्त्व इन देहधारी जीवोंके प्रत्येक शरीरमें स्थित होकर तिन संघातमें स्थित बुद्धिके जाग्रतादिक अवस्थावोंको साक्षीरूपसे प्रकाश करता है, सो साक्षीस्वरूप तत्त्व तिस परब्रह्मका अध्यात्मस्वरूप है । सो साक्षीस्वरूप तत्त्व इस संसाररूप वनमें प्रविष्ट हुआ सर्वांतर्यामी परब्रह्मरूपही है, तथा सो साक्षीस्वरूप तत्त्व सर्व जनोंके निरतिशय प्रीतिका विषय होनेसे तिन सर्व जनोंको भजनीय है, इस कारणसे तिस प्रत्यक साक्षी आत्माको वेदवेत्ता पुरुष वनं इस नामसे कथन करते हैं जो पुरुष वनं इन नामसे तिस परमात्मादेवकी उपासना करते हैं, तिन पुरुषोंको सर्व जन आराधना करनेवास्ते इच्छा करते हैं ॥ इति ॥ केनोपनिषद्सार (भाषा) समाप्त हुआ ॥ ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ॥

ॐ प्रत्यगभिन्नब्रह्मणे नमः ।

अथर्ववेदीय प्रश्नोपनिषदके भाष्यके अर्थसे पिप्पलादमुनिका सुकेशादि षट् ऋषियोंप्रति ब्रह्मविद्याकथन ।

अथ कात्यायन तथा पिप्पलादमुनिका प्रश्नोत्तर वर्णन ।

(१) प्रथम कबन्धीनामा कात्यायन ऋषिने पिप्पलादमुनिसे दण्डप्रणामपूर्वक प्रश्न किया कि हे भगवन् ! यह संपूर्ण प्रजा किस कारणसे जन्मको प्राप्त होती हैं सो प्रजाके उत्पत्तिका कारण हमसे कथन करो ॥ पिप्पलादमुनि बोले ॥ हे कात्यायन ! पूर्व इस जगतकी वृद्धि करनेकी इच्छा करता हुआ प्रजापतिरूप विराट् भगवानने "यह अग्नि, सोम दोनों परस्पर मिलकर नानाप्रकारकी सृष्टि करनेमें समर्थ हैं" इस प्रकारका विचार करके भोक्तारूप अग्निको तथा भोग्यरूप सोमको उत्पन्न किया ॥ अब तिन दोनोंमें प्रथम भोक्तारूप अग्निका निरूपण सर्वात्मरूपतासे करते हैं ॥ हे कात्यायन ! सो भोक्तारूप अग्नि अध्यात्म अधिदैव रूपसे दो प्रकारका होता है ॥ तहां इस संघातमें स्थित जो प्राण है, सो प्राण अध्यात्म अग्निरूप है । तिस प्राणरूप अध्यात्म अग्निमें इस संघातका वश करनारूप भोक्तापना स्पष्टही है ॥ और आदित्यरूप अधिदैव अग्नि है ॥ कैसा है सो आदित्य

रूप अग्नि अपने उदय अस्तभावसे पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण इत्यादिक सर्व दिशाओंका विभाग करनेवाला है, तथा सर्व प्रकाश्य वस्तुओंका भोक्ता पुरुष है, तथा सर्व विश्वका आत्मारूप होनेसे सर्व विश्वरूप है। तथा तप्त सुवर्णके समान जिस आदित्यकी प्रभा है,तथा जिस आदित्यसे सर्व वस्तुविषयक ज्ञानरूप धन उत्पन्न हुआ है। तथा जो आदित्यरूप अग्नि अपने सहस्र किरणों करके प्रगट ज्योति रूप है। तथा जो आदित्य इन सर्व जीवोंका बाह्य प्राण है, तथा जो आदित्य अनेक व्यष्टिरूपोंसे वर्तमान है॥ अब तिस प्राण रूप अग्निमें सम्वत्सररूप कालरूपसे इस सृष्टिका कर्तापना बोधन करने वास्ते प्रथम उत्तरायणादि कालमें तिस प्राणरूप अग्निकी अवयवरूपता वर्णन करते हैं ॥ हे कात्यायन ॥ द्वादश मासका जो सम्वत्सर है तिस सम्वत्सरका षण्मासरूप जो उत्तरायण है, सो उत्तरायणभी सो प्राण अग्निरूपही है॥ इस कारणसेही तिस उत्तरायण मार्गसे ब्रह्मचर्यादिक साधन सम्पन्न उपासक पुरुष इस आदित्यमंडलको भेदन करके ऊपर जाते हैं ॥ हे कात्यायन! यह अधिकारी उपासक पुरुष इस सूर्यमंडलको भेदन करके जिस परोक्ष स्थानको प्राप्त होतेहैं, सो स्थान समष्टिप्राणरूप हिरण्यगर्भके निवासका स्थानहै॥ तइकारणसे वेदवेत्ता पुरुष तिस स्थानको प्राणायतन इस नामसे कथन करतेहैं, और सो स्थान मृत्युभयसे

रहित है, इस कारणसे वेदवेत्ता पुरुष तिस स्थानको अमृत अभय इन दोनों नामसे कथन करतेहैं और सो स्थान, हिरण्यगर्भरूप ब्रह्माके रहनेका लोक है। यातें तिस स्थानको ब्रह्मलोक इस नामसे कथन करतेहैं ॥ सो ब्रह्मलोकरूप स्थान इस सूर्यमंडलसेभी परे वर्तमान है ॥ हे कात्यायन ! जिन अधिकारी पुरुषोंने तिस सगुण ब्रह्मकी अभेदरूपसे उपासना की है, तथा जो अधिकारी पुरुष ब्रह्मचर्य धर्मसे युक्त हैं, ऐसे अहंग्रह उपासनावाले पुरुष तिस उत्तरायणमार्गद्वारा ब्रह्मलोकमें प्राप्त होकर पुनः इस संसारमंडलमें आते नहीं। किन्तु तिस ब्रह्मलोकमेंही मोक्षको प्राप्त होतेहैं ॥ हे कात्यायन ! जैसे सो षण्मासरूप उत्तरायण उपासक पुरुषोंको सूर्यमंडलकी प्राप्ति करनेवाला है जिससे वेदवेत्ता पुरुषोंने तिस उत्तरायणको प्राण अग्निरूपसे कथन किया है ॥ तैसे तिस षण्मासरूप उत्तरायणका घटक जो शुक्लपक्ष है, तथा तिन शुक्लपक्षोंका घटक जो दिन है। तिन शुक्लपक्षोंको तथा तिन दिवसोंकोभी वेदवेत्ता पुरुष तिस प्राण अग्निरूपसे कथन किया है ॥ काहेते जैसे सो षण्मासरूप उत्तरायण तिस देवयानमार्गका घटक है तैसे यह शुक्लपक्ष तथा दिवसभी तिस देवयानमार्गके घटक हैं । इसकारण तिनमेंभी प्राण अग्निरूपता संभव है ॥ यहांतक तिस भोक्तारूप अग्निके आदित्यादिक रूपोंका वर्णन किया ॥ अब तिस भोग्यरूप-

सोमके रूपोंका वर्णन करते हैं ॥ हे कात्यायन! यह चन्द्रमा भोग्य अमृतादिरूप होनेसे सोमरूप है । और यह षण्मासरूप दक्षिणायन कर्मी पुरुषोंको तिस सोमरूप चन्द्रमाकी प्राप्ति करते हैं ॥ यातें वेदवेत्ता पुरुष तिस दक्षिणायनकोभी सोम इस नामसे कथन करते हैं। जिस दक्षिणायनसे अग्निहोत्रादिक कर्मोंके करनेहारे श्रद्धावान् कर्मी पुरुष तिस चन्द्रमाके लोकको प्राप्त होतेहैं ॥ हे कात्यायन ! जैसे सो षट्मासरूप दक्षिणायन सोमरूप है॥ वैसे तिस दक्षिणायनके घटक जो कृष्णपक्ष है तथा रात्रि है, सो कृष्णपक्ष तथा रात्रिभी सोमरूपही हैं ॥ जिन रात्रियोंमें अपनी स्त्रीके साथ संभोग करनेवाले गृहस्थ पुरुषोंके ब्रह्मचर्यका भंग होता नहीं ॥ यह दिवस प्राणात्मक अग्निरूप है, यातें दिवसमें अपनी स्त्रीके साथ संभोग करनेवाले पुरुषोंके केवल ब्रह्मचर्य धर्मकी हानि नहीं होती है, किन्तु तिन पुरुषोंके प्राणोंकीभी हानि होती है ॥ तहां श्रुति ॥ प्राणं वा एते प्रस्कंदंति ये दिवा रत्या संयुज्यंते ॥ ब्रह्मचर्यमेव तद्यद्रात्रौ रत्या संयुज्यंते ॥ अर्थ यह ॥ जो गृहस्थपुरुष दिनमें स्त्री संभोग करते हैं, सो पुरुष अपने प्राणोंकोही नष्ट करते हैं ॥ और जो गृहस्थ पुरुष रात्रिमें स्त्रीसंभोग करते हैं, सो पुरुष ब्रह्मचर्यधर्मकोही पालन करते हैं ॥ १ ॥ हे कात्यायन! उत्तरायण, शुक्लपक्ष, दिवस यह तीन स्वरूप जो अग्नि हैं, तथा दक्षि-

णायन, कृष्णपक्ष, रात्रि, यह तीन स्वरूप जो सोम हैं॥ तिन अग्नि सोम दोनोंका जो परस्पर मिथुनीभाव है, तिसका नाम संवत्सर है, सो संवत्सर प्रजापतिरूप है॥ कैसा है सो सम्वत्सररूप प्रजापति, वसंतादिक षट्ऋतुओंरूप पादोंसे युक्त है, तथा मार्गशीर्षादिक द्वादश मासोंसे युक्त है, तथा जो सम्वत्सररूप प्रजापति षट्ऋतुरूप अरोंसे युक्त, शिशुमारनामा चक्रमें सूर्यरूपसे स्थित है, तथा स्वर्गलोकके ऊपर स्थित है, तथा वर्षायुक्त मेघोंका कारणरूप होनेसे इस सर्व जगतका पितारूप है॥ काहेतें सूर्य, चन्द्र, उत्तरायण, दक्षिणायन इत्यादि रूपसे अग्नि सोमरूप जो यह प्रजापति है! तिस प्रजापतिसे वृष्टिद्वारा व्रीहि यवादिरूप नानाप्रकारका अन्न उत्पन्न होता है, और सो व्रीहि यवादिरूप अन्न क्षुधातुर पुरुषोंके जठराग्निमें प्राप्त होकर जब परिपक्व होता है, तब तिस अन्नमें वीर्यरूप रेत उत्पन्न होता है, तिस वीर्यसे यह नानाप्रकारकी प्रजा उत्पन्न होती है॥ इस प्रकार तिस अग्निसोमद्वारा सो प्रजापतिही इस जगतका कारण है॥ १॥ यहांतक इस प्रथम प्रश्नके उत्तरमें उपासना करने योग्य प्राणके सूर्यादिक रूपसे अधिदैव प्रभावका वर्णन किया॥ अब तिस प्राण अध्यात्म प्रभावके निर्णय करने वास्ते द्वितीय प्रश्नका उत्तर निरूपण करते हैं।

अथ भार्गवऋपि तथा पिप्पलाद मुनिका प्रश्नोत्तर निरूपण ।

(२) भार्गव बोले ॥ हे भगवन् ॥ इस अध्यात्म संघातरूप जगतको धारण करनेहारे कितने देवता हैं ॥ १ । तिन देवतावोंमेंभी प्रकाश करनेहारे कितने देवता हैं ॥ २ ॥ और तिन सर्व देवतावोंमेंभी कीर्ति अतिशयादिक गुणोंवाला सर्वसे श्रेष्ठ देवता कौन है ॥ ३ ॥ इन तीन प्रश्नोंका उत्तर आप कृपा करके हमारे प्रति कथन करो॥ पिप्पलाद बोले॥ हे भार्गव! आकाशादिक पंचभूत, श्रोत्रादिक, पञ्च ज्ञानेन्द्रिय वाकादिक पंच कर्म इन्द्रिय, एक मन, एक प्राण यह सप्तदश देवताही इन सर्व शरीरोंको धारण करनेहारे हैं ॥ १ ॥ तिन सप्तदश देवतावोंमेंभी श्रोत्रादिक पंच ज्ञान इन्द्रिय, एक मन यह षट्देवतारूपादिक पदार्थोंको प्रकाश करन हारे हैं ॥ २ ॥ इस शरीरमें प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, इन पांच वृत्ति रूपसे स्थित जो प्राण है, सो प्राण, तिन सर्व देवतावोंसे श्रेष्ठ है, काहेसे दूसरे श्रोत्र नेत्रादिक इन्द्रियोंके नष्ट हुएभी बधिर अंधादि रूपसे इस शरीरकी स्थिति देखनेमें आती है, परन्तु इस प्राणके निकसनेसे अनन्तर इस शरीरकी स्थिति देखनेमें आती नहीं, इस कारण यह प्राणदेवता तिन सर्व देवतावोंसे श्रेष्ठ है, अब इसी अर्थको स्पष्ट करके निरूपण करते हैं ॥ हे भार्गव ! जैसे इस लोकमें मधुमक्षिकावोंमें मधुकरराज-

नामा मक्षिका प्रधान होतीहै, सो मधुकरराज नामा प्रधान मक्षिका जब जिस मधुदेशमें स्थित होतीहैं, तब दूसरी सर्व मक्षिकाभी तिस मधुदेशमें स्थित होतीहैं । और जब सो मधुकरराज नामा प्रधान मक्षिका तिस मधुदेशसे चली जातीहै, तब सो दूसरी सर्व मक्षिकाभी तिस मधुदेशसे चली जातीहैं, यह वार्ता सर्व लोकमें प्रसिद्ध है ॥ तैसे इस शरीरमें जब पर्यन्त यह प्राण स्थित होताहै, तब पर्यन्त यह वाकादिक सर्व इन्द्रियां स्थित होतीहैं, और जब यह प्राण इस शरीरसे बाहर निकल जाताहै, तब सो वाकादिक सर्व इन्द्रियांभी इस शरीरसे बाहर निकल जातीहैं, इस कारण इस शरीरमें प्राणोंके विद्यमान रहे दूसरे चक्षु आदिक इन्द्रियोंके अभाव हुएभी इस संघातका जीवनरूप अन्वय है, तथा इन प्राणोंके उत्क्रमण हुए तिन चक्षु आदिक इन्द्रियोंकी व्याकुलतारूप व्यतिरेक है ॥ तिस अन्वय व्यतिरेक करके(से) इन प्राणोंमेंही सर्वकी विधारकतारूप श्रेष्ठता है । तिन प्राणोंकी श्रेष्ठताको देखकर सो चक्षु आदिक इन्द्रियोंके अभिमानी देवता इस प्रकार तिस प्राणकी स्तुति करते भये ॥ हे प्राणदेवता ! अग्नि, सूर्य, पर्जन्य, विद्युत, वायु, इन्द्र, आकाशादिक पंचभूत, सोम, सत, असत, अमृत, ऋगादिक चार वेद इनसे आदि लेकर जितना कि नाम, रूप, क्रिया, स्वरूप विश्व है, सो सर्व विश्वरूप तूही है ॥ यहां पर्जन्य शब्दसे वर्षावाले मेघोंका ग्रहण करना, और

सोम शब्दसे भोग्य पदार्थोंका, तथा सत् शब्दसे मूर्तिमान् पदार्थोंका असत् शब्दसे अमूर्तिमान पदार्थोंका ग्रहण करना, और अमृत शब्दसे देवतावोंके भोग्य पदार्थोंका ग्रहण करना ॥ हे प्राण देवता ! जैसे रथचक्रके नाभिमें अरा स्थित होतीहै, तैसे यह सम्पूर्ण विश्व तुम्हारे विषेही स्थित है, इस कारणसे हे प्राणदेवता! तू सर्व विश्वका आत्मारूप है ॥ हे प्राणदेवता! इस लोकमें जरायुज, अंडज, स्वेदज, उद्भिज्ज इन चार प्रकारके प्राणी रूपसेभी तू ही उत्पन्न होताहै, तथा विराट्, हिरण्यगर्भ रूपसेभी तुही उत्पन्न होताहै, हे प्राणदेवता ! स्वर्ग, अन्तरीक्ष, भूमि इन तीन लोकोंमें स्थित जितने कि भूत भौतिक पदार्थ हैं, सो सम्पूर्ण पदार्थ तुम्हारे वशवर्ती हैं ॥ ऐसे तुम्हारे स्वरूपको जाननेहारे जो हम हैं, तिन हम पुत्रोंका आप माताकी नाई रक्षण करो तथा हमको चार वेदरूप ब्राह्मणोंके धनकी प्राप्ति करो तथा सुवर्णादिरूप क्षत्रियोंके धनकी प्राप्ति करो, तथा हमको सत्बुद्धिकी प्राप्ति करो ॥ इस प्रकार तिन सर्व इन्द्रियोंके देव देवतावोंने तिस प्राणदेवताकी स्तुति की ॥ यातें यह प्राणही तिन सर्व देवतावोंसे श्रेष्ठ है, ॥ तृतीय प्रश्नका उत्तर समाप्त हुआ ॥ ३ ॥ इस प्रकार सो भार्गव ऋषि प्राणोंकी श्रेष्ठताको निश्चय करके तूष्णीं भावको प्राप्त होता भया ॥ तिसवे अनन्तर आश्वलायनऋषि तिस प्राणके उत्पत्ति स्थिति आदिकोंके निर्णय करने वास्ते तिस पिप्पलाद मुनिसे प्रश्न करता भया ॥

आश्वलायन ऋषि तथा पिप्पलाद मुनिका प्रश्नोत्तर निरूपण ॥

(३) आश्वलायन बोले ! हे भगवन्, पिप्पलाद मुनि ! इस प्राणकी उत्पत्ति किस वस्तुसे होती है ॥ १ ॥ किस निमित्तसे इस प्राणका सर्व शरीरोंके साथ सम्बन्ध होता है ॥ ॥ २ ॥ यह प्राण अपनेको भिन्न भिन्न करके किस प्रकार इन शरीरोंमें स्थित होताहै ॥ ३ ॥ यह प्राण इस शरीरसे बाह्य किस द्वारसे तथा किस वृत्ति विशेषसे तथा किस निमित्तसे उत्क्रमण करता है ॥ ४ ॥ यह प्राण बाह्य अधिभूत, अधिदैवरूप सर्व जगतको किस प्रकार धारण करताहै ॥ ५ ॥ और यह प्राण अन्तर अध्यात्म जगत्को किस प्रकार धारण करता है ॥ ६ ॥ इन षट् प्रश्नोंसे युक्त इस हमारे प्रश्नका उत्तर आप कृपा करके कहो ॥

पिप्पलाद मुनि! हे आश्वलायन! तुमने यह अत्यन्त सूक्ष्म प्रश्न कियेहैं ॥ यातें इन सर्व मुनियोंके समाजमें तू ब्रह्मिष्ठ है ॥ जो पुरुष अतिशय करके ब्रह्मपरायण हो तिसका नाम ब्रह्मिष्ठ है ॥ ऐसे ब्रह्मिष्ठ उत्तम अधिकारी तेरे प्रति मैं तिन सर्व प्रश्नोंका उत्तर कथन करता हूँ तू सावधान होकर श्रवण कर ॥

इस प्राणकी उत्पत्ति किस वस्तुसे होतीहै इस प्रथम प्रश्नका उत्तर।

हे आश्वलायन! जैसे इस स्थूल देहसे दर्पणादिकोंकी समीपता रूप निमित्त करके प्रतिबिम्बरूप छाया उत्पन्न होतीहै, तैसे परमार्थ सत्यस्वरूप आत्मारूप बिम्बसे यह जीवभूत प्राणरूप प्रतिबिम्ब उत्पन्न होताहै, इसका यह अभिप्राय है, कि जैसे दर्पणादिकोंमें स्थित प्रतिबिम्बकी मुखादिरूप बिम्बसे भिन्न सत्ता होती नहीं, याते सो प्रतिबिम्ब तिस बिम्बमात्रकेही आश्रित है॥ तैसे यह प्राणभी तिस आत्मामात्रकेही आश्रित है॥ १॥

किस निमित्तसे इस प्राणका सर्व शरीरोंके साथ सम्बन्ध होताहै, इस द्वितीय प्रश्नका उत्तर निरूपण।

हे आश्वलायन! यह जीवरूप प्राण तिस तिस शरीरके साथ जो सम्बन्धको प्राप्त होताहै, तिस सम्बन्धसे इस विज्ञानमय मनसे किये हुए पुण्यपापकर्मही निमित्त कारण हैं॥ तिस मनकृत कर्मोंसेही यह जीवरूप प्राण तिस तिस शरीरको प्राप्त होताहै॥ काहेतें, आत्माके प्रतिबिम्बको ग्रहण करके चेतनभावको प्राप्त हुआ जो मन है, सो चिदाभासयुक्त मन इस संसारमें जिस पुण्यपाप कर्मोंको करताहै,

सोईही मन तिस पुण्यपाप कर्मोंके फलको भोगताहै, यातें यह मनही कर्ता भोक्ता है ॥ तिस मनका कार्यरूप जो मानसकर्म है, तिस मानसकर्मसेही यह जीवरूप प्राण तिस तिस शरीरमें प्राप्त होताहै ॥ शंका ॥ हे भगवन्! दूसरे शास्त्रोंमें तो शरीरकृत कर्म, तथा वाणीकृत कर्म तथा मनकृत कर्म इन तीन प्रकारके पुण्यपाप कर्मोंमेंही इस जन्ममरणरूप संसारकी निमित्त कारणता कथन कीहै, और यहांपर आपने केवल मानसकर्मोंकोही इस संसारकी कारणता कथन कीहै, यातें तिन दूसरे शास्त्रोंके साथ आपके वचनका विरोध होवैगा ॥ समाधान ॥ हे आश्वलायन! यह वागादिक इन्द्रिय तथा यह शरीर तिस मनके विना स्वतंत्र होकर किसी कार्यको करनेमें समर्थ हो सकते नहीं, किन्तु तिस मनको आश्रयण करकेही सो वागादिक इन्द्रिय तथा शरीर किसी शुभ अशुभ कर्म करनेमें समर्थ होते हैं ॥ यातें तिस शरीरकृत कर्मोंमें तथा वाणीकृत कर्मोंमेंभी तिस मनकीही प्रधानता है, तिस प्रधानताको अंगीकार करकेही हमने केवल मानसकर्मोंकोही इस संसारकी कारणता कथन कीहै ॥ अब तिस मनकी प्रधानता निरूपण करते हैं ॥ हे आश्वलायन! तिस मनकी सहायताके विना केवल इस शरीरसे तथा वागादिक इन्द्रियोंसे जो जो कर्म होते हैं, तिन कर्मोंमें पुण्यरूपता अथवा पापरूपता किसीभी शास्त्रमें कथन करी नहीं ॥

शंका ॥ हे भगवन ! मनके व्यापारके विना केवल शरीर इन्द्रियादिकोंसे किये हुए कर्ममें जो पुण्य पापरूपता नहीं होती होवै, तो धर्मशास्त्रमें जो मनके विज्ञानरूप व्यापारके विना केवल शरीर इन्द्रियादिकोंसे किये हुए ब्रह्महत्यादिक पापकर्मोंके निवृत्त करनेवास्ते एक गुणा प्रायश्चित्त विधान किया है, और तिस मनके विज्ञानरूप व्यापारपूर्वक कियेहुए ब्रह्महत्यादिक पापकर्मोंके निवृत्त करनेवास्ते त्रिगुण प्रायश्चित्त विधान कियाहै, सो धर्मशास्त्र असंगत होवैगा ॥ समाधान ॥ हे आश्वलायन ! यद्यपि धर्मशास्त्रमें अबुद्धिपूर्वक कियेहुये पाप कर्मोंके निवृत्त करने वास्ते प्रायश्चित्तका विधान कियाहै, तथापि सो प्राश्चित्त मानस व्यापारके योगसेही किया जावाहै ॥ तिस मानसव्यापारके विना सो प्रायश्चित्त किया जावै नहीं ॥ काहेते जिस पुरुषने अपनी बुद्धिपूर्वक पापकर्म नहीं किया है, सो पुरुष जब अपने मनमें विचार करताहै कि मैंने अबुद्धिपूर्वक पाप कर्म किया है, तब सो पुरुष तिस प्रायश्चित्त करनेका अधिकारी होताहै, तिस मानसविचारके विना सो पुरुष तिस प्रायश्चित्तक अधिकारी होता नहीं, यातें तिस मनके विज्ञानरूप व्यापारसेही सो अबुद्धिपूर्वक किये पापोंका प्रायश्चित्त होताहै, मनके व्यापारके विना सो प्रायश्चित्त होता नहीं ॥ यातें अबुद्धिपूर्वक किये हुए कर्ममें मनके योगसेही पुण्यरूपता अथवा पापरूपता प्राप्त होतीहै, तिस मनके योगके विना तिस कर्ममें पुण्य-

पापरूपता प्राप्त होती नहीं ॥ किंवा तिन पुण्यपाप कर्मोंका कर्तापना तथा भोक्तापना शुद्ध आत्मामें है; अथवा देह इन्द्रियादिकोंमें है, अथवा मनमें है, यह विचार करना चाहिये ॥ तहां शुद्ध आत्मा तो असंग निर्विकार है ॥ यातें तिस शुद्ध आत्मामें तो सो कर्तापना तथा भोक्तापना संभव नहीं, और यह देह इन्द्रियादिक तो जड़ तथा परतंत्र हैं, यातें तिन देह इन्द्रियादिकोंमेंभी सो कर्तापना तथा भोक्तापना सम्भव नहीं, किन्तु परिशेषपसे सो कर्ताभोक्तापना तथा पुण्यपापकर्म तिस मनमेंही स्थित है, यातें यह चिदाभासयुक्त मनही तिन पुण्यपापकर्मोंको करता है, तिस मनकृत पुण्यपाप कर्मोंसेही यह देह इन्द्रियादिक संघात उत्पन्न होते हैं, तथा तिस मनकृत पुण्यपाप कर्मोंके वशसेही यह जीवरूप प्राण तिस तिस शरीरके साथ सम्बन्धको प्राप्त होता है ॥ २ ॥

सो प्राण अपनेको भिन्नभिन्नरूप करके इन शरीरोंमें किस प्रकार स्थित होता है इस तृतीय प्रश्नका उत्तर निरूपण।

हे आश्वलायन! जैसे इस लोकमें महाराजा अपने मंत्रियोंको अपने अपने कार्यमें प्रेरणा करता है, तैसे इस शरीरमें स्थित हुआ यह क्रियाशक्तिवाला प्राणभी अपनेको प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान इन पंच प्रकारका करके नेत्रादिक सर्व इन्द्रियोंको अपने अपने व्यापारमें प्रेरणा करता है।

अब तिन पंचप्राणोंके स्थानका तथा कार्यका वर्णन करतेहैं ॥ हे आश्वलायन ! तिन पंच प्राणोंमें जो प्रथम प्रधान प्राण है, सो प्राण वो शिरमें स्थित जो दो नासिका, दो श्रोत्र, दो नेत्र, एक मुख यह सप्त छिद्र हैं, तिन सप्त छिद्रोंमें स्थित है तथा मुख नासिकाद्वारा बाह्य गमनागमन करता है ॥ और दूसरा जो अपान है, सो अपान वो पायु, उपस्थ इन दोनोंमें स्थित है, तथा विष्ठामूत्रके विभागको करता है ॥ और तीसरा जो समाननामा प्राण है, सो समान वो भोजन किये हुए अन्नको तथा पान किये हुए जलको समान करता है, ॥ यावें सर्व शरीरमें व्यापक हुआभी सो समान पूर्व उक्त सप्त छिद्रोंके तथा आधार चक्रके मध्य देशमें विशेष रूपसे रहता है ॥ अब व्यान नामा प्राणके आश्रय कहने वास्ते प्रथम नाडियोंकी परमसंख्या कथन करते हैं ॥ हे आश्वलायन! इन देह धारी जीवोंके हृदय-देशमें बहत्तर कोटि दश सहस्र एक शत एक ७२००१०१०१ इतनी नाडियां रहती हैं ॥ जैसे इस लोकमें प्रसिद्ध पिप्पलादिक वृक्षोंका एक मूल होता है, और तिस मूलसे स्कंध निकलते हैं, तिन स्कंधोंसे स्थूल शाखा निकलती हैं,तिन स्थूल शाखावोंसे दूसरी सूक्ष्म शाखा निकलती हैं,तिन सूक्ष्म शाखा-वोंसेभी दूसरी अत्यन्त सूक्ष्म शाखा निकलती हैं तैसे तिन सर्वना-डियोंमें जो सुषुम्ना नामा नाडी है, सो सुषुम्ना नाडी वो वृक्षके

मूल समान मुख्य है, और तिस सुषुम्नारूप मूलकी स्कंधरूप दूसरी दश नाडियां होतीहैं, और तिन स्कन्धरूप दश नाडियोंमें एकएक नाडीकी स्थूल शाखारूप दूसरी नव नव नाडी होतीहैं ॥ तहां एक सुषुम्ना नाडीको छोड़कर दूसरी दश स्कन्धरूप नाड़ी तथा तिनोंकी स्थूल शाखारूप नब्बे ९० नाड़ी यह सर्व मिलिके एक शत १०० नाड़ी होती हैं ॥ तिन एकशत नाडियोंमें एक एक नाडीकी सूक्ष्म शाखारूप दूसरी एक एक शत १०० नाडी होती हैं सो सूक्ष्म शाखारूप सर्व नाडियां मिलकर १०००० दश सहस्र होतीहैं, और तिन सूक्ष्म शाखारूप दशसहस्र नाडियोंमें एक एक नाडीकी अत्यन्त सूक्ष्म शाखारूप दूसरी बहत्तर बहत्तरसहस्र ७२००० नाडी होती हैं । सो अत्यन्त सूक्ष्म शाखारूप सर्व नाडियां मिलकर बहत्तर कोटि होती हैं ॥ इस प्रकार बहत्तर कोटि दशसहस्र एकशत एक इतनी सर्व नाडियां होतीहैं ॥ तहां एक सुषुम्ना नाडीको छोडकर दूसरी सर्व नाडियोंमें सो व्यान नामा प्राण वर्तता है, तिस व्यानको श्रुतिमें प्राण, अपानकी सन्धिरूपसे वर्णन कियाहै, तथा बलवान कर्मोंका साधक रूपसे कथन कियाहै, और तिस सुषुम्ना नाडीसे तो उदान नामा प्राणही विचरताहै, कैसा है सो उदान नामा प्राण सर्वदा ऊर्ध्व गमन करनेका है स्वभाव जिसका ॥ ३ ॥

यह प्राण इस शरीरसे बाह्य किस द्वारसे तथा किस वृत्ति विशेषसे तथा किस निमित्तसे उत्क्रमण करताहै, इन तीन विकल्पों (पक्षों) से युक्त चतुर्थ प्रश्नका उत्तर निरूपण ।

यह प्राण सुषुम्ना नाडीरूप द्वारसे तथा उदान रूप वृत्तिसे इस शरीरसे बाह्य उत्क्रमण करताहै, इस वचनसे तिन दोनों विकल्पोंका उत्तर सिद्ध होता है ॥ अब किस निमित्तसे यह प्राण शरीरसे उत्क्रमण करताहै, इस तृतीय विकल्पका समाधान वर्णन करते हैं ॥ हे आश्वलायन ! मरणकालमें जिन जीवोंके अग्निहोत्रादिक पुण्यकर्म फल देने वास्ते सन्मुख होते हैं, वो तिन जीवोंको तो यह उदान नामा प्राण स्वर्गादि लोकोंकी प्राप्ति करताहै, और तिस मरण कालमें जिन जीवोंके पाप कर्म फल देनेवास्ते सन्मुख होतेहैं तिन जीवोंको सो उदान नामा प्राण नरकादिकोंकी प्राप्ति करताहै, और तिस मरण कालमें जिन जीवोंके पुण्य पाप रूप दोनों कर्म फल देनेको सन्मुख होते हैं, तो तिन जीवोंको सो उदान नामा- प्राण मनुष्य लोककी प्राप्ति करता है, और तिस मरणकालमें जिन पुरुषोंको तिन स्वर्गादि लोकोंकी प्राप्ति करनेहारे पुण्यपाप कर्मरूप प्रतिबन्धक (कार्यके विरोधी) नहीं होतेहैं, वो तिन पुरुषोंको वो सो उदान तिस सुषुम्ना नाडीद्वारा ब्रह्मलोककीही प्राप्ति कर-

ताहै, और जिन पुरुषोंका आत्मसाक्षात्कार करके पुण्य-पापरूप सर्व कर्म निवृत्त हुए हैं, तिन विद्वान पुरुषोंका सो उदान नामा प्राण शरीरसे बाह्य उत्क्रमण करता नहीं ॥ वरन अधिष्ठानब्रह्ममें लय होकर मुक्तिकी प्राप्ति करताहै ॥ इस प्रकार अन्वयव्यतिरेक करके इन पुण्यपापकर्मोंमें ही तिस प्राणके उत्क्रमणकी निमित्तकारणता सिद्ध होतीहै ॥ यहांतक चतुर्थ प्रश्नका उत्तर निरूपण हुआ ॥ ४ ॥

यह प्राण बाह्य अधिभूत, अधिदेव प्रपंचको किस-प्रकार धारण करताहै, तथा अन्तर अध्यात्म-रूप जगतको किस प्रकार धारण करताहै, इन पंचम षष्ठ दोनों प्रश्नोंका उत्तर निरूपण ।

हे आश्वलायन ! यह प्राण बाह्य आदित्य, पृथिवी, आदिक रूपोंसे इस अधिभूत, अधिदैवरूप सर्व जगतको धारण करताहै; और यह प्राणवायु प्राण, अपान, समान-व्यान, उदान, इन पंच मुख्य स्वरूपोंसे तथा चक्षु आदिक गौण स्वरूपोंसे अन्तर अध्यात्म जगतको धारण करताहै ॥ अब इसी अर्थके स्पष्ट करनेवास्ते पंचप्राणोंके क्रमसे बाह्य रूपोंका निरूपण करतेहैं ॥ हे आश्वलायन ! चक्षु तथा आदित्य यह दोनों प्राणस्वरूप हैं यातें इन दोनोंका परस्पर भेद नहीं है, किन्तु तिन दोनोंका अभेदही है, इस कारण

तिस प्राणवायुका बाह्यरूप आदित्य है ॥ इस पृथिवीदेवता करकेही अपानवायुका आकर्षण होताहै, इस कारण तिस अपानका सो पृथिवी बाह्यरूप है ॥ और जैसे यह समान शरीरके मध्यप्रदेशमें रहताहै, तैसे भूमिलोक तथा स्वर्गलोकके मध्यदेशमें यह आकाश रहताहै, यातें तिस समानका सो स्वर्ग पृथिवीके मध्यवर्ती आकाश बाह्यरूप है ॥ और जैसे व्यान सर्वनाडियोंमें व्यापक है, तैसे यह बाह्यवायुभी व्यापक है, यातें तिस व्यानका यह वायु बाह्यरूप है ॥ और जैसे इस उदानका ऊर्ध्व गमन करनेका स्वभाव है, तैसे अग्निरूप तेजकाभी ऊर्ध्व गमन करनेका स्वभाव है, यातें तिस उदानका यह तेज बाह्यरूप है ॥ हे आश्वलायन ! इस शरीरमें स्थित जो अन्तःकरणकी वृत्तिरूप तथा उष्णतारूप तेज है, सो तेज जिस कालमें शान्त हो जाता है, तिस कालमें यह जीव ऊर्ध्व श्वासरूप प्राण वृत्तिवाला होता है । सो प्राण यद्यपि "आपोमयः प्राणः" इस श्रुतिमें जलमय रूपसे कथन किया है, तथापि मरण कालमें सो प्राण तेजोरूप उदान वृत्तिसे युक्त हुआ तिस जीवको लोकान्तरमें लेजाता है ॥ तात्पर्य यह ॥ पूर्व उक्त तेजके विना इस शरीरमें तिस उदानकी स्थिति होती नहीं, इस कारणसेभी सो तेज उदान रूपही है ॥ हे आश्वलायन ! मरणकालमें जो जीव कर्मके वशसे भावी प्राप्त होनेहारे शरीरके ज्ञानजन्य संस्कारोंवाला है, तथा जो जीव इन्द्रिय-

मन प्राणोंके साथ तादात्म्य सम्बन्धको प्राप्त हुआ है; ऐसे जीवको ही सो क्रियाशक्ति प्राण लोकान्तरमें लेजाताहै ॥ अब इस पूर्व उक्त विद्याका फल वर्णन करतेहैं ॥ हे आश्वलायन ! जो प्राण पूर्व उक्त रीतिसे परमात्मादेवसे उत्पन्न हुआहै, तथा जो प्राण पुण्य पापकर्मोंके वशसे अनेक शरीरोंके साथ सम्बन्धको प्राप्त होताहै, तथा जो प्राण नाडी आदिक अनेक स्थानोंमें रहताहै, तथा जो प्राण सर्वका प्रेरक है, तथा जो प्राण अध्यात्म अधिदैवरूप है, सो प्राण मैं हूँ, इस प्रकार जो अधिकारी पुरुष तिस प्राणकी अभेद उपासना करताहै, तिस अधिकारी पुरुषको अन्तःकरणकी शुद्धिद्वारा आत्म साक्षात्कारकी प्राप्ति होतीहै तिस आत्म साक्षात्कार करनेसे सो उपासक पुरुष मोक्षरूप अमृतको प्राप्त होताहै। तिस मोक्षरूप अमृतको प्राप्त होकर सो उपासक पुरुष पुनः इस संसार दुःखको प्राप्त होता नहीं ॥ ३ ॥ पूर्व प्रसंगमें कात्यायन, भार्गव, आश्वलायन इन तीन ऋषियोंके तीन प्रश्नोत्तरों करके (से) सगुण विद्याका विषय निरूपण किया ॥ अब निर्गुण विद्याके विषयका निश्चय करने वासते चतुर्थ प्रश्नका उत्तर निरूपण करतेहैं ॥

गार्ग्यनामा सौर्यायणि ऋषि तथा पिप्पलादमुनिका प्रश्नोत्तर निरूपण ॥

(४) गार्ग्य बोले। हे पिप्पलादमुनि ! इस शरीरमें अपने अपने व्यापारकी उपरामतारूप शयनको

कौन प्राप्त होता है, यहां इस प्रथम प्रश्नका जाग्रत अवस्थाके आश्रयका निर्णय प्रयोजन है। काहेसे जिसके व्यापारकी उपरामतासे जाग्रतकी निवृत्तिरूप शयन होवैगा, तिसकोही जाग्रतकी आश्रयता अर्थसे सिद्ध होवैगी ॥ १ ॥ और हे भगवन् ! इस शरीरमें सर्वदा अपने अपने व्यापारमें स्थित हुए कौन जाग्रतको प्राप्त होताहै ॥ इस द्वितीय प्रश्नका इस शरीरके रक्षा करनेहारेका निर्णय प्रयोजन है ॥ काहेसे जो सर्वदा सावधान होताहै, तिसमेंही रक्षकपना संभव होताहै, असावधान विषे रक्षक-पना सम्भव नहीं ॥ २ ॥ और हे भगवन् ! इस संघातमें नानाप्रकारके स्वप्नोंको कौन देखता है ॥ इस तृतीय प्रश्नका स्वप्न अवस्थाके आश्रयका निर्णयही फल है ॥ काहेसे जो वस्तु स्वप्न अवस्थामें सावधान रहैगा, तिस वस्तुमेंही स्वप्नकी आश्र-यता संभव है ॥ ३ ॥ और हे भगवन् ! इस संघातमें सुषुप्तिके सुखको कौन भोगताहै ॥ इस चतुर्थ प्रश्नका सुषुप्ति अव-स्थाके आश्रयका निर्णयही फल है ॥ काहेतें जो वस्तु सुषुप्तिकालके सुखको भोगैगा तिस वस्तुमेंही सुषुप्ति अव-स्थाकी आश्रयता सम्भव है ॥ ४ ॥ और हे भगवन् ! तिस सुषुप्ति अवस्थामें यह सम्पूर्ण प्राणादिक किस आधारमें स्थित होवेहैं ॥ इस पंचम प्रश्नका तुरीय अक्षर आत्माका निर्णयही प्रयोजन है ॥ ५ ॥ इन पंच प्रश्नोंका उत्तर

यथाक्रमसे आगे वर्णित हैः–पिप्पलाद मुनि बोले ॥ हे गार्ग्य ! स्वप्न अवस्थामें यह चक्षु आदि पंच ज्ञान इन्द्रिय तथा वागादिक पंच कर्म इन्द्रिय मनके साथ तादात्म्यभावको प्राप्त होकर अपने अपने व्यापारसे निवृत्तरूप शयनको प्राप्त होतेहैं ॥ और सुषुप्ति अवस्थामें तो सो चक्षु आदिक दश इन्द्रिय मनके रहितही तिस शयनको प्राप्त होतेहैं ॥ इस कारण सो चक्षु आदिक इन्द्रिय विशिष्ट मनही इस जाग्रत् अवस्थाका आश्रय है ॥ १ ॥ अब द्वितीय प्रश्नका उत्तर निरूपण करतेहैं ॥ हे गार्ग्य ! सुषुप्ति अवस्थामें मन सहित इन्द्रियोंके लय हुएभी प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान यह पंचप्रकारके प्राण जठराग्नि सहित अपने अपने व्यापारमें स्थितिरूप जाग्रतको प्राप्त होतेहैं ॥ इसकारणसेही तिस सुषुप्तिमें इन जीवोंके उदरमें स्थित अन्नका परिपाक होताहै ॥ इस कारण जठराग्निसहितसो पंचप्राणही शरीरका रक्षण करनेहारे हैं ॥ २ ॥ यहां सुषुप्ति अवस्थामें स्थित विद्वान पुरुषको श्रुतिने अग्निहोत्रकी प्राप्ति कथन करी है, तिसका निरूपण करते हैं ॥ हे गार्ग्य! जैसे प्रसिद्ध अग्निहोत्री पुरुषोंका गार्हपत्य नामा अग्नि सर्वदा स्थिर रहताहै, और आहवनीय नामा अग्नि तो होम करनेवास्ते तिस गार्हपत्य-अग्निसे उठायके प्रज्वलित किया जाताहै; तैसे यहां प्रसंगमें अन्तःप्रवेश करनेहारे अपानवायुसे बाह्यगमन करनेहारा प्राण-

वायु उठाया जाताहै इस प्रकारकी समानताको ग्रहण करके श्रुति भगवती तिस विद्वान पुरुषके प्राणको तो आहवनीय अग्नि-रूप कहतेहैं, और तिस अपानको गार्हपत्य अग्निरूप कहतेहैं, और तिस विद्वान पुरुषका व्याननामा वायु अन्वाहार्यपचन-रूप है, यहां ओदन विशेषका नाम अन्वाहार्य है; सो अन्वा-हार्यरूप ओदन जिस अग्निमें पकाया जाताहै, तिस अग्निका नाम अन्वाहार्यपचन है, इस अन्वाहार्यपचनकोही वेदवेत्ता पुरुष दक्षिण अग्नि कहतेहैं, सो दक्षिण अग्निरूप व्याननामा वायु है, काहेसे प्रसिद्ध अग्निहोत्रकी शालामें सो दक्षिण अग्नि दक्षिणदिशाके कुंडमें स्थित होता है, तैसे यह व्याननामा वायुभी हृदयके पंचछिद्रोंमें दक्षिण छिद्रमें स्थित होता है ॥ इस प्रकारकी समानताको अंगीकार करके श्रुतिने तिस व्यानको दक्षिण अग्निरूप कहा है, और तिस विद्वान पुरुषका समान नामा वायु तो तिन गार्हपत्यादिक अग्नियोंमें पक्षपातसे रहित होतारूप है, जैसे प्रसिद्ध अग्निहोत्रमें जब यज-मान किसी दूसरे काममें संलग्न होताहै, तब तिस यजमानका प्रतिनिधिरूपसे शिष्यादिक होता होतेहैं, तैसे इस विद्वान पुरुषके प्राणरूप अग्निहोत्रमें सो समान नामा वायुही होता रूप है काहेसे यह समान नामा वायु उच्छ्वास निःश्वासरूप दोनों आहुतियोंको न्यून अधिक भावसे रहित समानताको प्राप्त करता है ॥ और यह उदान नामा वायु तो तिस विद्वान

पुरुपका प्राण॰अग्निहोत्रका फलरूप है, काहेसे इस प्रसिद्ध अग्निहोत्रमेंभी ॥यजमान॥ पुरुपको सो उदान नामा वायुके, उत्क्रमण करकेही॰स्वर्गादिक फलकी प्राप्ति होती है, इस कारणसे सो उदान नामी॰वायु॰तिसा॰विद्वान पुरुपके अग्नि-होत्रका फलरूप है, और॰प्राण॰इस॰विद्वान॰ पुरुपके प्राण अग्नि-होत्रमें ॥तिस विद्वान पुरुपका॰मन॰॰यजमानरूप है ॥ और जैसे बाह्य अग्निहोत्रमें प्रसिद्ध॰गार्हपत्यादिक अग्नियां तिस यजमान पुरुपको स्वर्गरूप फलकी प्राप्ति करते हैं, वैसे यह प्राणरूप अग्नियांभी तिस मनरूप यजमानको सुपुप्ति अवस्थामें हृदयकमलमें स्थित ब्रह्मानन्द रूप स्वर्गकी प्राप्ति करते हैं ॥ इस प्रकार तिस ब्रह्मवेत्ता विद्वान पुरुपका सर्वदा अग्निहोत्र होता है ॥ २ ॥ अब तृतीय चतुर्थ प्रश्नका उत्तर निरूपण करतेहैं ॥ हे गार्ग्य ! जो मन स्वप्न अवस्थामें भी जागता है, तथा जो मन सुपुप्ति अवस्थामें तिस विद्वान पुरुपके प्राण अग्निहोत्रका यजमान रूप है, सोई मन चेतनके प्रतिबिम्बको ग्रहण करके प्रकाश-मान हुआ नानाप्रकारके स्वप्नोंको देखता है, इस कारणसे सो चिदाभासयुक्त मनही तिस स्वप्न अवस्थाका आश्रय है॥ ३॥ हे गार्ग्य ! सो मनही तिस सुपुप्तिके सुखको प्राप्त होताहै, काहेसे तिस सुपुप्ति अवस्थामें जैसे यह संसार यद्यपि स्पष्ट करके प्रतीत होता नहीं, तथापि तिस सुपुप्तिमें यह संसार

सूक्ष्म वीजरूपसे रहताहै, तैसे तिस सुषुप्तिमें यह मन यद्यपि स्पष्टरूपसे प्रतीत होता नहीं, तथापि सो मन तिस सुषुप्तिमें सूक्ष्म वीजरूपसे रहता है; इस कारण तिस सूक्ष्मवीज रूपसे स्थित हुआ यह मनही तिस सुषुप्तिका आश्रय है ॥ ४ ॥ अब पंचम प्रश्नका उत्तर निरूपण करते हैं ॥ हे गार्ग्य ! जो चेतनस्वरूप आत्मा तिस मनमें प्रतिबिम्बरूपसे स्थित है, तिस चेतनआत्मामें ही यह प्राणादिक सर्व जगत स्थित है, जैसे इस लोकमें सायंकालसमय अनेक दिशावोंसे आये हुए अनेक पक्षी किसी महान वृक्षमें स्थित होते हैं, तैसे पृथिवी आदिक पंचभूत तथा तिन पृथिवी आदिक भूतोंके गंधादिक गुण तथा चक्षु आदिक दश इन्द्रिय तथा चार प्रकारका अन्तःकरण तथा पंच प्रकारका प्राण यह सम्पूर्ण पदार्थ तिस चेतनआत्मामेंही स्थित हैं ॥ हे गार्ग्य! तिस चेतन आत्मामें केवल यह जड़ प्रपंचही स्थित नहींहै, किन्तु इन्द्रिय अन्तःकरण प्राणादिकोंके व्यापार विशिष्टरूपसे यह जीवभी तिस शुद्ध आत्मामेंही स्थित है, यातें सो आत्मादेवही सर्वका आधार है ॥ हे गार्ग्य! सो यह आत्मादेव चक्षु आदिक इन्द्रियोंके साथ मिलकर दर्शनादिक अनेक व्यापारोंको करताहै, याते सो आत्मादेव द्रष्टा, स्प्रष्टा, श्रोता, इत्यादिक गुणोंवाला होकर जीवसंज्ञाको प्राप्त हुआभी वास्तवमें परमात्मास्वरूपही है ॥ तिस जीव परमात्मामें किंचित-

मात्रभी भेद नहीं है ॥ अब इस कथन कीहुई निर्गुण विद्याके फलका निरूपण करतेहैं ॥ हे गार्ग्य ! जो आत्मादेव सर्वत्र व्यापक हुआभी शुद्ध मनमें विशेषकरके अभिव्यक्त (स्पष्ट) होताहै, तथा जो आत्मादेव सर्व जगतका अधिष्ठानरूप है, तथा जो आत्मादेव स्थूल, सूक्ष्म, कारण इन तीन शरीरोंसे रहित है, तथा जो आत्मादेव स्वप्रकाश, अक्षर, आनन्दस्वरूप है, ऐसे आत्मादेवको जो अधिकारी पुरुष ब्रह्मवेत्ता गुरुके उपदेशसे साक्षात्कार करताहै, सो अधिकारी पुरुष इस सर्व जगतको सामान्यरूपसे तथा विशेषरूपसे साक्षात्कार करताहै, तथा इस संसारके जन्ममरणादिक सर्व तापोंसे मुक्त होताहै ॥ हे गार्ग्य! जिस अक्षर परमात्मादेवमें यह जीव स्थित है, तथा जिस अक्षरमें तिस जीवके उपाधिरूप प्राण इन्द्रियादिक स्थित हैं, तिस अक्षर परमात्मादेवको जो अधिकारी पुरुष अपना आत्मारूप करके साक्षात्कार करता है, सो अधिकारी पुरुष सर्वज्ञ हुआ ब्रह्मभावरूप परमपदको प्राप्त होताहै ॥ ५ ॥ यहांतक गार्ग्य ऋषिके प्रश्नका उत्तर निरूपण हुआ ॥

सत्यकाम ऋषि तथा पिप्पलादमुनिका प्रश्नोत्तर निरूपण ।

(५) सत्य काम बोले ॥ हे भगवन् पिप्पलादमुनि ॥ जो अधिकारी पुरुष अपने मरणपर्यन्त ॐकाररूप प्रणवका

ध्यान करताहै सो अधिकारी पुरुष भूमि आदिक लोकोंमें किसलोकको प्राप्त होताहै, इस हमारे प्रश्नका उत्तर आप कृपा करके कथन करो ॥ पिप्पलाद मुनि बोले ॥ हे सत्यकाम! जिस वर्णको वेदवेत्ता पुरुष ॐकार इस नामसे कथन करतेहैं, सो ॐकार अक्षरस्वरूप परब्रह्मका नाम है, तथा प्राणस्वरूप अपर ब्रह्मकाभी नाम है ॥ कैसा है सो ॐकार तिस परब्रह्मके साथ तथा अपरब्रह्मके साथ अभिन्न है, काहेसे वाच्य अर्थका तथा वाचकनामका वेदवेत्ता पुरुषोंने अभेदही कथन किया है, अथवा देवता प्रतिमाकी नांई सो ॐकार तिसपर अपर ब्रह्मका प्रतीक रूप है, इस कारणसे सो ॐकार तिस पर अपर ब्रह्मसें अभिन्न है । अन्यमें अन्यदृष्टिका जो आलम्ब है, तिसका नाम प्रतीक है, जैसे शालग्राममें जो विष्णु दृष्टि है, तिस दृष्टिका आलंबन शालग्राम है, यातें सो शालग्राम तिस विष्णुका प्रतीकरूप है, तैसें सो ॐकारभी तिस पर अपर ब्रह्मका प्रतीक रूप है ॥ हे सत्यकाम ! जो अधिकारी पुरुष इस ॐकाररूप प्रणवको परब्रह्मरूपसे चिन्तन करताहै, सो अधिकारी पुरुष तिस ध्यानके प्रभावसे तिस परब्रह्मकोही प्राप्त होता है, और जो अधिकारी पुरुष तिस प्रणवको अपरब्रह्मरूपसे चिन्तन करताहै सो अधिकारी पुरुष तिस ध्यानके प्रभावसे तिस अपरब्रह्मकोही प्राप्त होताहै॥हेसत्यकाम! तिस फलके भेदमें केवल पुरुषकी कामनाका भेद कारण नहींहै, किन्तु तिस प्रणवके मात्रावोंका भेदभी तिस फलके भेदमें कारण

है, काहेसे तिस प्रणव मंत्रमें अकार, उकार, मकार, अर्द्धमात्रा यह साढेतीन मात्रा रहतीहैं, तहां जो पुरुष प्रथम अकार मात्राका ऋग्वेदरूपसे चिन्तन करताहै, तिस उपासक पुरुषको तिस ऋग्वेदका अभिमानी देवता इस भूमिलोककी प्राप्ति करताहै, और जो पुरुष अकार उकार इन दोनों मात्रावोंको यजुर्वेदरूपसे चिन्तन करताहै, तिस उपासक पुरुषको तिस यजुर्वेदका अभिमानी देवता स्वर्गलोककी प्राप्ति करताहै, और जो पुरुष अकार, उकार, मकार, इन तीनों मात्रावोंको सामवेदरूपसे चिन्तन करताहै, तिस उपासक पुरुषको सामवेदका अभिमानी देवता ब्रह्मलोककी प्राप्ति करताहै, जिस ब्रह्मलोकमें प्राप्त हुआ सो उपासक पुरुष पुनः भूमिलोकमें आता नहीं, इस कारणसे मुमुक्षु जनोंको तिस तीन मात्रावाले प्रणवकाही ध्यान करना चाहिये ॥ एक मात्राका तथा दो मात्राका ध्यान न करना चाहिये, काहेते इस प्रणवकी जो अकार उकाररूप दो मात्रा हैं, सो दोनों मात्रा इस उपासक पुरुषको पुनरावृत्तियुक्त भूमि स्वर्गलोकके सुखकीही प्राप्ति करताहै, पुनरावृत्तिसे रहित सुखकी प्राप्ति करता नहीं, और सो तीन मात्रायुक्त प्रणव तो इस उपासक पुरुषको पुनरावृत्तिसे रहित ब्रह्मलोककी प्राप्ति करताहै ॥ हे सत्यकाम ! जो पुरुष अर्द्धमात्रा प्रधान प्रणवका चिन्तन करताहै, सो पुरुष अद्वितीय ब्रह्मभावको प्राप्त होताहै, यातें मुमुक्षु पुरुषको

अर्द्धमात्रा प्रधान प्रणवका चिन्तन सदैव करना उचित है ॥ इस प्रकार अधिकारी पुरुषोंको ॐकाररूप प्रणवसेही सर्व भोग्य पदार्थोंकी तथा मोक्षकी प्राप्ति होती है ॥ इस कारण यह प्रणव मंत्र सर्व मंत्रोंसे श्रेष्ठ है ॥ ५ ॥ पंचम प्रश्नका उत्तर समाप्त हुआ ॥

सुकेशा ऋषि तथा पिप्पलाद मुनिका प्रश्नोत्तर निरूपण ।

(६) सुकेशा बोले ॥ हे भगवन! पिप्पलादमुनि! वेद-वेत्ता पुरुषोंने जो षोडश कलाओंवाला पुरुष कथन कियाहै, तिस पुरुषके निर्णय करनेवास्ते मैंने बहुतवार विचार कियाहै, परन्तु तिस पुरुषके स्वरूपको मैं अब पर्यन्त निश्चय नहीं करसका ॥ हे भगवन्! पूर्व किसी कालमें कोशलदे-शका अधिपति, हिरण्यनाभ नामा राजा मेरे समीप आया और विनयपूर्वक षोडशकलावाले पुरुषका स्वरूप मुझसे पूछा॥ तिस राजाके प्रश्नको श्रवण करके मैंने कहा कि हे राजन्! जिस षोडश कलावाले पुरुषको आप पूछते हो, तिस षोडश कलावाले पुरुषको मैं नहीं जानता ॥ हे राजन्! इस लोकमें जो पुरुष मोहके वशसे मिथ्या वचनका उच्चारण करते हैं, सो मिथ्यावादी पुरुषरूप वृक्ष दोनों लोक-के सुखरूप फलको न प्राप्त होकर भाग्यरूप मूलसहित नाशको प्राप्त होताहै, इस प्रकार तिस मिथ्या वचनके

महान् दुःखरूप फलको जानता हुआ मैं स्वप्नमेंभी तिस मिथ्या वचनको कहता नहीं, तो जाग्रत अवस्थामें तिस मिथ्या वचनको मैं कैसे कहूंगा ॥ यातें इस सुकेशा नाम ऋषिने तिस षोडश कलावाले पुरुषको जानकरकेभी हमारे प्रति कथन नहीं किया, इस प्रकारकी शंका अपने मनमें आप कदाचितभी न करनी ॥ हे भगवन् ! पिप्पलादमुनि ! इस प्रकारका वचन जब हमने तिस हिरण्यनाभ राजाके प्रति कहा तब सो राजा तूर्णीभावको प्राप्त होकर अपने देशको चलागया ॥ तिस दिनसे लेकर आजतक हमारे चित्तमें तिस षोडश कलावाले पुरुषके जाननेकी बहुत उत्कट इच्छा लग रहीहै, आप कृपा करके तिस षोडश कलावाले पुरुषका स्वरूप हमारे प्रति कथन करो ॥ पिप्पलादमुनि बोले ॥ हे सुकेशा ! तुमने जो षोडश कलावाला पुरुष पूछा है, सो पुरुष कहीं दूर स्थित नहीं है, किन्तु जिस पुरुषमें षोडश कला रहती हैं सो पुरुष इस तुम्हारे शरीरमेंही प्रत्यक् आत्मारूपसे स्थित है, कैसा है सो पुरुष, तिस सर्वजगतरूप षोडश कलाओंका अधिष्ठान होनेसें इस सर्व जगत्का नियंता है ॥ अब तिस परमात्मा देवरूप पुरुषकी अद्वितीय रूपता स्पष्ट करने वास्ते तिस परमात्मा देवसे तिन षोडश कलाओंकी उत्पत्ति कथन करते हैं ॥ हे सुकेशा ! जो परमात्मादेव प्रत्यक्रूपसे इस शरीरमें स्थित है, सोई परमात्मा देव इस जगतकी

उत्पत्तिसे पूर्व जरायु चर्मकी नांई बन्धन करनेहारी उपाधिके करनेकी इच्छा करता हुआ इस प्रकारका विचार करता भया, मैं परमात्मादेव इस शरीरमें स्थित हुआभी सर्वत्र व्यापक हूं. तथा विक्रियासे रहित हूँ, ऐसा मैं परमात्मादेव, उत्क्रमण, गमन आगमन इत्यादिक गुणोंवाले संसारको किस उपाधिसे प्राप्त होऊँगा । इस प्रकारका विचार करके सो परमात्मादेव प्रथम प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान इस पंच वृत्तिवाले प्राणरूप कलाको उत्पन्न करता भया, कैसा है सो प्राण, इस शरीरसे उत्क्रमणका तथा परलोकगमनका तथा परलोकसे आगमनका कारण है ॥ १ ॥ तिस प्राणसे अनन्तर सो परमात्मादेव श्रद्धारूप दूसरी कलाको उत्पन्न करता भया, यहांपर शुभकर्मोंमें प्रवृत्त करनेहारी आस्तिक्य बुद्धिका नाम श्रद्धा है ॥ २ ॥ तिस श्रद्धासे अनन्तर सो परमात्मादेव कर्मोंके करनेका तथा तिन कर्मोंके फलभोगका आधाररूप जो आकाश, वायु, तेज, जल, पृथिवी, यह पंच भूत हैं, तिन पंचभूतरूप पंचकलावोंको उत्पन्न करता भया ॥ ॥ ७ ॥ तिन पंचभूतोंसे अनन्तर सो परमात्मादेव ज्ञानका साधनरूप जो श्रोत्रादिक पंचज्ञान इन्द्रिय हैं, तथा कर्मका साधनरूप जो वागादिक पंच कर्म इन्द्रिय हैं, तिन दश इन्द्रियरूप आठवीं कलाको उत्पन्न करता भया ॥ ८ ॥ तिसके अनन्तर सो परमात्मादेव तिन इन्द्रियोंको प्रवृत्त

करनेहारे मनरूप नवमीकलाको उत्पन्न करता भया ॥ ॥ ९ ॥ तिसके अनन्तर सो परमात्मादेव तिस मनकी स्थिति करनेहारे अन्नरूप दशमी कलाको उत्पन्न करता भया ॥ १० ॥ तिसके अनन्तर सो परमात्मादेव वीर्यरूप एकादशी कलाको उत्पन्न करता भया, यहांपर तिस अन्न करके जन्य जो सामर्थ्य है तिसका नाम वीर्य है ॥ ११ ॥ तिसके अनन्तर सो परमात्मादेव तिस वीर्यसे जन्य जो शुद्धि करनेहारा तप है, तिस तपरूप द्वादशी कलाको उत्पन्न करता भया ॥ १२ ॥ तिसके अनंतर सो परमात्मादेव मंत्ररूप त्रयोदशी कलाको उत्पन्न करताभया यहां वेदोंके अध्ययनका नाम मंत्र है ॥१३॥ तिसते अनन्तर सो परमात्मादेव लौकिक वैदिक कर्मरूप चतुर्दशी कलाको उत्पन्न करता भया ॥ १४ ॥ यहां मंत्र शब्दकी जो वेदके अध्ययनमें लक्षणा की है तिसका यह कारण है कि यद्यपि मंत्ररूप तथा ब्राह्मणरूप जो वेद है, सो वेद साक्षात् प्राणसेही प्रगट हुए हैं, तहां श्रुति ॥ अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वांगिरस इति ॥ अर्थ यह ॥ इस महान परमात्मादेवकेही ऋग्, यजुष, साम, अथर्वण यह चार वेद श्वासरूप हैं ॥ १ ॥ इस श्रुतिने साक्षात् प्राणोंसे तिन वेदोंका प्रगट होना कथन किया है ॥ यातें सामर्थ्यरूप वीर्यसे तिन वेदोंकी उत्पत्ति हुई नहीं, तथापि

अन्न है आदिकारण जिसका ऐसा जो सामर्थ्यरूप वीर्य है तथा तप है, तिस वीर्यमें तथा तपसे सो वेद अध्ययनादिरूप विस्तारको प्राप्त होते हैं, यातें सो वेद अध्ययन द्वाराही तिन वीर्यादिकोंमें प्रगट होतेहैं, साक्षात् प्रगट होतेनहीं यातें तिस मंत्रपदकी वेदके अध्ययनमें लक्षणाकरनी युक्त है, और तिन कर्मोंसे अनन्तर सो परमात्मा लोकरूप पंचदशी कलाको उत्पन्न करता भया, यहांपर तिन कर्मोंसे उत्पन्न भया जो सुख-दुःखरूप फल है, तिसका नाम लोक है ॥ १५ ॥ तिसके अनन्तर सो परमात्मादेव नामरूपषोडशी कलाको उत्पन्न करता भया, यहांपर शरीरावच्छिन्न चेतनके वाचक जो देवदत्त, यज्ञदत्त, इत्यादिक शब्द हैं तिनोंको नाम कहतेहैं, जो शोडषी कलारूप नामयुक्त पुरुषोंकाभी निवृत्त होता नहीं, किन्तु सो नाम प्रलयकालपर्यन्त स्थित रहताहै, इस कारणसेही श्रुतिमें तिस नामको अनन्त इस नामसे कथन किया है ॥ १६ ॥ यह षोडश कला तिस परमात्मादेवसे उत्पन्न होतेहैं ॥ तहां श्रुति ॥ स प्राणमसृजत प्राणाच्छ्रद्धां खंवायुर्ज्योतिरापः पृथिवींद्रियं मनोऽन्नमन्नाद्वीर्यं तपो मंत्राः कर्मलोका लोकेषु च नाम च ॥ १ ॥ इस श्रुतिका अर्थ ऊपर वर्णित है जान लेना ॥ हे सुकेशा ! जिस पुरुषको आत्माका साक्षात्कार हुआ है, तिन मुक्तपुरुषकी दृष्टिसे वो यह प्राणादिक षोडशकला अपने अधि-

प्राण निर्गुण ब्रह्मको प्राप्त होकर दर्शनभावको प्राप्त होते हैं, जैसे इस लोकमें श्रीगंगा यमुनादिक नदियां जब पर्यन्त समुद्रको नहीं प्राप्त होतीहैं, तब पर्यन्त सो नदियां अपने २ भिन्न भिन्न नामरूपको धारण करतीहैं, और जब सो नदियां तिस समुद्रको प्राप्त होती हैं, तब सो नदियां अपने अपने भिन्नभिन्न नामोंको तथा भिन्न भिन्न रूपोंका परित्याग करके तिस समुद्रके नामरूपकोही धारण करतीहैं, तैसे तिस मुक्त पुरुषके यह प्राणादिक षोडश कला जब पर्यन्त तिस निर्गुण पुरुषको नहीं प्राप्त होतीहैं, तब पर्यन्तही अपने अपने भिन्न भिन्न नामरूपको धारण करतीहैं, और जब सो प्राणादिक षोडश-कला तिस निर्गुण पुरुषको प्राप्त होतीहैं, तब सो प्राणादिक कला अपने भिन्नभिन्न नामरूपका परित्याग करके तिस निर्गुण पुरुषके नामरूपकोही धारण करतीहैं ॥ हे सुकेशा! जिस पुरुषमें यह प्राणादिक षोडश कला लयभावको प्राप्त होतीहैं, सो पुरुष कैसा है, वास्तवमें नामरूपसे रहित है; तथा निरवयव है। तथा आनन्दस्वरूप है, तथा स्वयंज्योति अमृतस्वरूप है ॥ जैसे रथचक्रकी नाभिमें अरा स्थित होतीहैं, तैसे तिस पुरुषविषे यह प्राणादिक षोड़श कला स्थित होतीहैं ॥ हे सुकेशा! ऐसे परमात्मादेवको जो पुरुष अपना आत्मारूपसे साक्षात्कार करताहै, तिस पुरुषको इस शरीरके नाशसे अनन्तर पुनः प्रमादरूप मृत्युसे भयकी प्राप्ति होती नहीं ॥ इस कारण

अधिकारी पुरुषोंको तिस ब्रह्मात्मज्ञानको अवश्य करके संपादन करना चाहिये ॥ ६ ॥ इस प्रकार सो पिप्पलाद मुनि; सुकेशा ऋषिके प्रति आत्माका उपदेश करके पुनः तिन सर्वऋषियोंके प्रति इस प्रकारका वचन कहता भया ॥ पिप्पलाद मुनि बोले ॥ हे सुकेशादिक सर्व ब्राह्मणो! यह जो अद्वितीय ब्रह्मका स्वरूप हमने तुम्हारे प्रति उपदेश किया है, इतनाही मैं जानता हूँ, इससे परे दूसरा कोई वस्तु उपदेश करने योग्य नहीं है ॥ यातें तिस अद्वितीय ब्रह्मको तुम सर्व अपना आत्मारूप (से) करके निश्चय करो ॥ इस प्रकार जब पिप्पलाद मुनिने तिन सुकेशादिक षट् ऋषियोंके प्रति ब्रह्मविद्याका उपदेश किया, तब ते सर्व ऋषि तिन पिप्पलादमुनिका देवता की नांई अर्चनपूजन करते भये तथा तिस पिप्पलाद मुनिके प्रति इस प्रकारके वचन कहते भये ॥ हे भगवन् ! आपने कृपा करके हमारे सर्व संशयोंको छेदन कियाहै, और हम लोगोंको मायासे परे निर्गुण ब्रह्मका साक्षात्कार करायके आपने कृतार्थ कियाहै ॥ हे भगवन्! आपके उपदेशसे ब्राह्मणभावको प्राप्त हुए हम सर्व आजके दिनमें आपमें ब्रह्मवित्त्वरूपसे उत्पन्न हुएहैं ॥ काहेसे "ब्रह्म जानाति ब्राह्मणः" इत्यादिक श्रुतियोंमें ब्रह्मविद्याकी प्राप्ति करकेही मुख्य ब्राह्मणभावकी प्राप्ति कथन की है, यातें आपही हमलोगोंके पिता हो, तथा आपही हमारी माता हो, आपके अतिरिक्त दूसरा कोई हमारा पिता

माता नहींहै, क्योंकि यह लोकप्रसिद्ध पितामातावो इस शरीर रूप मिथ्या आत्माकीही उत्पत्ति करतेहैं; जिस शरीरके सम्बन्धसे हम जीवोंको अनेक प्रकारके दुःखोंकी प्राप्ति होतीहै ॥ इस विषयमें मनु भगवान्‌नेभी कहा है ॥ तहां श्लोक ॥ उत्पादकब्रह्मदात्रोर्गरीयान्ब्रह्मदः पिता, ब्रह्मजन्म हि विप्रस्य प्रेत्य चेह च शाश्वतम् ॥ अर्थ यह इस स्थूल शरीरकी उत्पत्ति करनेहारा जो पिता है, तथा ब्रह्मभावकी प्राप्ति करनेहारा जो गुरु है, तिन दोनोंमें ब्रह्मभावकी प्राप्ति करनेहारा गुरुरूप पिता अत्यन्त श्रेष्ठ है ॥ काहेसे इस अधिकारी पुरुषका सो ब्रह्मउपदेष्टा गुरुसे जो ब्रह्मवित्वरूप (से) करके जन्म है, सो ब्रह्मवित्वरूप जन्म इस जीवन अवस्थामें तथा मरणसे अनन्तर सर्व कालमें नित्य है, तिस ब्रह्मवित्वरूप जन्मका कदाचितभी नाश होता नहीं ॥ १ ॥ यह वार्ता अन्य शास्त्रोंमेंभी कहा है ॥ तहां श्लोक ॥ शरीरमेतौ कुरुतः पितामाता च भारत। आचर्यदत्ता या जातिः सा नित्या सा जरामरा ॥ अर्थ यह हे भारत! यह लोकप्रसिद्ध पितामाता जिस शरीरको उत्पन्न करतेहैं, सो शरीर तो जरामरणसे युक्त है, और यह ब्रह्मवेत्ता गुरू अधिकारी पुरुषोंके प्रति जिस ब्रह्मवित्वरूप जातिकी प्राप्ति करताहै, सो ब्रह्मवित्वरूप नित्य है तथा अजर अमर है, इस कारण ब्रह्मविद्याका उपदेश करनेहारा गुरू इस लोकप्रसिद्ध पितामातासे अत्यन्त श्रेष्ठ है ॥ १ ॥

हे भगवन् ! कामक्रोधादिक मगरोंसे युक्त जो यह अविद्यारूप दुस्तर समुद्र है, तिस अविद्यारूप समुद्रसे आपने ब्रह्मविद्यारूप महान नौकाद्वारा हम लोगोंको पार किया है, इस आपके महान उपकारकी निवृत्ति करने वास्ते हम तीन लोकमें कोई पदार्थ देखते नहीं कि जो पदार्थ आपको देकर हम लोग आपके ऋणसे मुक्त हों, इस कारण आप ब्रह्मवेत्ता गुरूके प्रसन्न करने वास्ते हमारा सर्वदा नमस्कार होवै ॥ तिस हमारे नमस्कारमात्रको अंगीकार करकेही आप प्रसन्न होवो ॥ इस प्रकारके वचन जब तिन शुकेशादिक पट ऋपियोंने तिस पिप्पलाद मुनिके प्रति कथन किये, तब सो पिप्पलाद मुनि प्रसन्न होकर आशीर्वादपूर्वक तिन ऋपियोंको विदा करता भया तथा सो पिप्पलाद मुनि आपभी तिस स्थानसे सुख पूर्वक जाता भया ॥ इति प्रश्नोपनिपद्सार भापा, पिप्पलाद मुनि तथा सुकेशादिक पटऋपिसंवाद समाप्त हुआ ॥ ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ॥

ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः ।

अथर्ववेदीय मुण्डकउपनिपदके भाष्यके अर्थसे आंगिरस ऋपि तथा शौनक ऋपिसम्वादसे एकवस्तुके ज्ञानसे इस सर्व जगत्‌के ज्ञानका वर्णन ।

शौनक बोले ॥ हे भगवन्न आंगिरन् ! किस एक वस्तुके ज्ञानसे इस सर्व जगतका ज्ञान होता है, सो एक वस्तु कृपा

करके हमसे कथन करो ॥ अंगिरा बोले ॥ हे शौनक ! अद्वितीय ब्रह्मरूप एक आत्माके ज्ञानसेही इस सर्व जगत्का ज्ञान होता है। हे शौनक ! तिस परब्रह्मकी प्राप्ति वास्ते ब्रह्म-विन्दु उपनिषदादिकोंमें शाब्दब्रह्मका ज्ञान ही श्रेष्ठ उपाय कथन किया है, तहां शिक्षादिक षट् अंगोंसहित जो चार वेद हैं, सो चार वेद हैं शरीर जिस ब्रह्मका, तिस ब्रह्मका नाम शाब्दब्रह्म है। ऐसे शाब्द ब्रह्ममें जो पुरुष कुशल है. सो पुरुषही तिस परब्रह्मको प्राप्त होताहै, इस कारणसे मुमुक्षु जनको दो प्रकारकी विद्याको अवश्य संपादन करना चहिये, तिन दोनों विद्याओंमें एक विद्या तो साधनरूप होनेसे अपरा नामा है और दूसरी विद्या फलरूप होनेसे परा नामा है; वहां प्रथम अपरा विद्याको तू श्रवण कर ॥ हे शौनक ! शिक्षादिक षट् अंगोंसहित जो ऋग्, यजुष्, साम, अथर्वण यह चार वेद हैं, सो चार वेद हैं विषय जिस विद्याके तिस विद्याका नाम अपरा विद्या है, इस अपरा विद्यासेही सो परा विद्या प्राप्त होती है, जो विद्या अद्वितीय ब्रह्मको विषय करती है, तिस ब्रह्मविद्याका नाम पराविद्या है, और जिस ब्रह्मको सो पराविद्या कथन करतीहै, तिस ब्रह्मको श्रुतिमें अक्षर इस नामसे कथन किया है, सो अक्षर ब्रह्म नामरूप क्रिया तथा जन्मादिक विकारोंसे रहित है, सो अक्षरब्रह्म आकाशकी नांई सर्वत्र व्यापक है, यातें देशकृत परिच्छेदसे

रहित है, सो अक्षरब्रह्म साधनहीन पुरुषोंको दुर्विज्ञेय है, यातें सूक्ष्म है और सो अक्षर ब्रह्म उत्पत्तिनाशसे रहित है यातें कालकृत परिच्छेदसे रहित है और सो अक्षरब्रह्म मायाके वशसे इस सर्व जगतका कारणरूप हुआभी वास्तवसे तिस सर्व जगतरूप द्वैतसे रहित है, इस कारणसे सो अक्षर ब्रह्म वस्तु परिच्छेदसे रहित है, और जिस अक्षर ब्रह्मको ब्रह्मचर्य्यादिक साधनसम्पन्नही पुरुष अपने चित्तमें देखते हैं, साधनहीन पुरुष देख सकते नहीं । ऐसे अक्षर ब्रह्मकोही तुम अपना आत्मारूपसे जानना । तिस अक्षर ब्रह्मसे भिन्न कुलवर्ण आदिको तुम अपना आत्मारूपसे न जानना ॥ तिस अक्षरब्रह्मके ज्ञानसेही इस सर्व जगतका ज्ञान होवाहै ॥ अब तिस अक्षरब्रह्मके ज्ञानसे इस सर्व जगतके ज्ञानकी सिद्धि करनेवास्ते, तिस अक्षरब्रह्ममें इस जगतकी कारणताको तीन दृष्टान्तोंसे सिद्ध करतेहैं ॥ हे शौनक ! यह अक्षरब्रह्मही इस सर्व जगतके उत्पत्ति, स्थिति, लयका अभिन्न निमित्त उपादान कारणहै ॥ इस अर्थमें वेदवेत्ता पुरुष ऊर्णनाभि जन्तुका दृष्टान्त कथन करतेहैं ॥ जैसे ऊर्णनाभि जन्तु (मकरी) अपनेसे भिन्न दूसरे कारणकी अपेक्षासे विनाही तनुओंकी उत्पत्ति स्थिति लय करता है । तैसे यह अक्षरब्रह्म भी अपनेसे भिन्न दूसरे कारणकी अपेक्षासे विनाही इस सर्व जगतकी उत्पत्ति

स्थिति लय करताहै-॥ यातें -जैसे ऊर्णनाभि जन्तु तिन तन्तुओंका उपादानकारण तथा निमित्त कारण दोनों है, तैसे सो अक्षर-ब्रह्मभी इस सर्व जगत्का उपादान कारण तथा निमित्त कारण दोनों है, और हे शौनक ! इस जगतमें कोई सुखी है, कोई दुःखी है, कोई धनी है कोई निर्धनी है, इत्यादिक अनेक प्रकारकी विलक्षणता प्रतीत होतीहैं । ऐसे विलक्षण जगतका जो एक अक्षरब्रह्म कर्ता मानिये, तो तिस अक्षरब्रह्ममें विषमतादोषकी तथा निर्दयतादोषकी प्राप्ति होगी, इस प्रकारकी शंका निवृत्त करनेवास्ते वेदवेत्ता पुरुष भूमिका दृष्टान्त कथन करतेहैं ॥ जैसे अनेक प्रकारके स्थावरजंगमरूप शरीर एकही भूमिमे उत्पन्न होतेहैं, तैसे एकही अक्षर ब्रह्मसे यह नानाप्रकारका जगत् उत्पन्न होता है ॥ तात्पर्य यह है, कि जैसे एकही भूमिसे बीजोंकी विलक्षणतासे नानाप्रकारके स्थावरजंगम शरीर उत्पन्न होतेहैं । तैसे एकही अक्षर ब्रह्मसे जीवोंके पुण्य पाप रूप कर्मोंकी तथा संस्कारोंकी विलक्षणतामे नानाप्रकारका जगत् उत्पन्न होताहै, यातें तिस अक्षरब्रह्ममें विषमता, निर्दयता इन दोनों दोषोंकी प्राप्ति होती नहीं ॥ और हे शौनक ! इस लोकमें समान स्वभाववाले मृत्तिका घटादिक पदार्थोंका ही परस्पर कारण कार्यभाव देखा है । विलक्षण पदार्थोंका परस्पर कारण कार्य भाव

कहीं देखा नहीं, यातें चेतनब्रह्मसे जड जगतकी उत्पत्ति सम्भव नहीं । इस प्रकारकी शंका निवृत्त करनेवास्ते वेदवेत्ता पुरुष इस प्रकारका दृष्टान्त कथन करतेहैं ॥ जैसे जीवित अवस्थामें चेतन रूपसे प्रसिद्ध जो यह पुरुष है, तिस चेतन पुरुषसे नख, केश, लोमादिक अचेतन कार्य उत्पन्न होतेहैं, तैसे तिस चेतनरूप अक्षरब्रह्मसे यह जड जगत उत्पन्न होताहै, यातें सर्वथा समान स्वभाववाले पदार्थोंका ही परस्पर कार्य कारणभाव होताहै, इस प्रकारका नियम सर्वत्र सम्भव नहीं ॥ हे शौनक ! तिस अक्षर ब्रह्मसे इस जगतका जन्म, स्थिति, लय यह तीनों होतेहैं ॥ (सृष्टिके उत्पत्तिका प्रकार छान्दोग्यउपनिषदके निरूपण पृष्ठ १९१ में सविस्तर लिखा है) हे शौनक! जिस परमात्मादेवकी इस जगतकी उत्पत्ति, स्थिति, लय रूप विभूति सर्व लोकमें प्रसिद्ध है सो परमात्मादेव इस शरीररूपी ब्रह्मपुरमें स्थित जो दहराकाशरूप दिव्य व्योम है तिसमें स्थित है ॥

इस शरीररूपी ब्रह्मपुरमें परमात्मादेव किस प्रकार स्थित है तथा उसके जाननेका उपाय तथा फल निरूपण ।

हे शौनक ! जैसे उत्पन्न हुआ घट आकाशसे परिपूर्ण होताहै, तैसे उत्पन्न हुआ यह शरीर ब्रह्मसे परिपूर्ण होताहै, इस कारण श्रुति भगवती इस शरीरको ब्रह्मपुर इस नामसे

कथन करती है, तिस ब्रह्मपुरमें स्थित जो दिव्य व्योम है, सो दिव्य व्योम स्वयंप्रकाश आत्मारूपही है, तिसी दिव्य व्योमको श्रुतिमें दहराकाश इस नामसे कथन किया है, ऐसे अपने स्वरूपमें ही सो परमात्मादेव स्थित है॥ तहां श्रुति॥ सभूमा कुत्र प्रतिष्ठितः स्वे महिम्नि ॥ अर्थ यह ॥ सो भूमा आत्मा किसमें स्थित है, इस प्रकारकी जिज्ञासाके हुए, सो भूमा आत्मा अपने स्वरूपभूत महिमामें स्थित है, यह उत्तर श्रुतिने कथन किया है । अब अज्ञात आत्माका तथा ज्ञात आत्माका स्वभाव वर्णन करते हैं ॥ हे शौनक ! जिस कालमें यह आनन्दस्वरूप आत्मा अज्ञात रहताहै, तिस कालमें यह आत्मा देव मनके तादात्म्य अध्याससे मनोमय संज्ञाको प्राप्त हुआ प्राणोंको तथा देहको तथा इन्द्रियोंको अपने अपने व्यापारोंमें प्रवृत्त करताहै, तथा जबपर्यन्त ब्रह्मात्मज्ञानकी प्राप्ति नहीं होती है, तबपर्यन्त सो मनोमय आत्मा सर्व जगतके बीजभूत मूल अज्ञानमें तादात्म्य अध्यास स्थित होताहै, और जिस कालमें ब्रह्मचर्यादिक साधन सम्पन्न अधिकारी जन इस आत्मादेवके वास्तव स्वरूपको जानताहै, तिस कालमें सो अधिकारी जन इस आत्मादेवको परमानन्द स्वरूपसे देखताहै, तथा जन्ममरणसे आदि लेकर जितने कि संसार सम्बन्धी धर्म हैं, तिन सर्व धर्मोंसे रहित देखताहै, तथा ज्ञाता, ज्ञान,

ज्ञेय इत्यादिक त्रिपुटीरूप द्वैतसे रहित देखताहै ॥ अब तिस आत्मज्ञानके फलका निरूपण करतेहैं ॥ हे शौनक ! जो अधिकारी पुरुष तिस परब्रह्मको अपना आत्मारूप करके जानता है, तिस अधिकारी पुरुषको इस प्रकारके फलकी प्राप्ति श्रुतिने कथन की है, ॥ तहां श्रुति ॥ भिद्यते हृदयग्रंथि-श्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः । क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ॥ अर्थ यह ॥ कामक्रोधादिकोंका कारणरूप जो आत्म अनात्माकार अध्यास है । जो अध्यास इन जीवोंको सर्व दुःखोंकी प्राप्ति करताहै, तिस अध्यासका नाम हृदयग्रंथि है, और त्वं पदार्थ जीवविषे संसारीपना तथा अल्पज्ञता देखकर और तत्पदार्थविषे असंसारीपना तथा सर्वज्ञता देखकर यह जीव ब्रह्मरूप है अथवा ब्रह्मसे भिन्न इत्यादिक जो आत्मविषयक असम्भावना है, तिसका नाम संशय है और जिन पुण्यपापकर्मोंने यह शरीर दिया है, तिन प्रारब्ध कर्मोंको छोडकर जितने कि संचितक्रियमाणरूप पुण्यपाप कर्म हैं· जिन पुण्यपाप कर्मोंने यह जीव अनेक शरीरोंको प्राप्त होताहै, तिन संचित क्रियमाण कर्मोंका नाम कर्म है, सो सर्व कर्म तथा सो सर्व हृदयग्रंथि तथा सो सर्व संशय, सर्वात्मारूप ब्रह्मके साक्षात्कार हुए निवृत्त होजातेहैं ॥ १ ॥ हे शौनक ! जिस आत्मसाक्षात्कारसे संशय कर्मादिकोंकी निवृत्ति होतीहै ॥ तिसी आत्म-

साक्षात्कारको विद्वान पुरुष श्रवणादिक साधनोंका फलरूप कहतेहैं । जिस आत्मसाक्षात्कारके हुए यह कार्यसहित अविद्या निवृत्त होतीहै, इस अविद्याकी निवृत्तिही मोक्ष है ॥ इति मुंडकउपनिपद्सार (भाषा) समाप्त हुआ ॥ ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ॥

ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः ।

अथर्ववेदीय मांडूक्य उपनिपदके भाष्यके अर्थसे ॐकारका अधिष्ठान ब्रह्म है,यातें ॐकार ब्रह्म है तिसका वर्णन ।

ॐ नमः परमात्मने ॥ ॐकारही यह सर्व नामरूप प्रपंच है, ॐकारसे भिन्न नहींहै, तात्पर्य यह ॥ ब्रह्म सर्वका अधिष्ठान है, और कल्पित वस्तु अधिष्ठानसे भिन्न होता नहीं, यातें ब्रह्मसे किञ्चितभी भिन्न नहीं, और तिस अधिष्ठान ब्रह्मका वाचक होनेसे ॐकारही ब्रह्म है ॥ जैसे शालिग्राममें विष्णुमूर्तिका ध्यान करनेसे शालिग्रामको विष्णुरूपता है, तैसे इस ॐकारमें ब्रह्मस्वरूपका ध्यान करनेसे ॐकार भी ब्रह्मरूप है ॥ तथा जैसे भ्रांतिकालमें प्रतीत हुआ जो चोर है, सो स्थाणुके न जाननेसे ही प्रतीत होताहै, जब स्थाणुका यथार्थ बोध होजाताहै, तब चोर बाध (निवृत्त) होजाताहै, तब ऐसी प्रतीति होती नहीं कि यह चोर है किन्तु स्थाणुहै॥

इसको बाध सामानाधिकरण्य कहते हैं ॥ वैसे ॐकारका अधिष्ठान ब्रह्म है, यातें ॐकार ब्रह्म है, इसमें भी बाध सामा-नाधिकरण्य है ॥ नामके आधीन नामीकी सिद्धि होतीहै ॥ ॐकारभी ब्रह्मका नाम है, नामसे नामी भिन्न होता नहीं, तैसें ॐकार नामसे नामी ब्रह्म भिन्न नहीं है ॥ जैसे अर्थ प्रपं-चमें व्यापक ब्रह्म है तैसे शब्दप्रपंचमें व्यापक ओंकार है, इस कारण व्यापकताको ग्रहण करके ओंकारही ब्रह्म है ॥ और तिस ब्रह्मसे कार्यप्रपंच भिन्न नहीं; तिसी प्रकार ब्रह्म-रूप ओंकारसेभी यह प्रपंच भिन्न नहीं, यातें यह सिद्ध हुआ कि ओंकार ही सर्व नामरूप प्रपंच है ॥ अब तिस ओंकारका स्पष्ट कथन करतेहैं। तीन काल करि जितने परिछिन्न पदार्थ हैं, सो सर्व ओंकाररूपहैं, और जो अनादि अव्यक्त साभास अज्ञान है, सो कालकाभी कारण होनेसे काल करि परिच्छिन्न नहींहै, तथा हिरण्यगर्भसे पूर्व वर्षादि-रूप काल नहीं हुआ, ऐसा श्रुति भगवती कहती है, याते त्रिकाल अतीत अव्यक्त तथा हिरण्यगर्भ, यह दोनों हैं सो दोनों, अव्यक्त तथा हिरण्यगर्भ ओंकारसे भिन्न नहीं, वरन दोनों ओंकाररूपही हैं, पूर्व ओंकारही सर्व नामरूपप्रपंच है, ऐसा श्रुति कथन करचुकी है, ॥ अब सर्व जो वाच्य प्रपंच है, तिस, प्रपंचका वाचक जो ओंकार है, तिस वाचकरूप ओंकारका निरूपण करते हैं ॥ प्रयोजन जो दोनोंके परस्पर अभेद

कथनका यह है, कि वाच्यवाचक दोनोंको शुद्ध ब्रह्ममें लय करके अधिष्ठान निर्विशेष ब्रह्मको निश्चय करै। यह सर्व प्रपंच ब्रह्मरूप है ऐसा परोक्षरूपसे कथन किया जो ब्रह्महै; तिस ब्रह्मको ही श्रुति भगवती अपने हस्तको अपने हृदयदेशपर रखकर प्रत्यक्ष रूपसे कथन करती है॥ अति कृपावती जो महावाक्य रूपा - श्रुति है, सो श्रुति अपने अति प्रिय मुमुक्षु जनोंको यह उपदेश करती है ॥ भो मुमुक्षवः ॥ अयमात्मा ब्रह्म ॥ अर्थ यह नित्य अपरोक्ष जो यह साक्षी आत्मा है, यह साक्षी आत्मा ही ब्रह्महै, इससे ब्रह्म भिन्न न जानना॥ ऐसे महावाक्यके श्रवणसेभी जिस मन्दबुद्धि पुरुषको ज्ञान न प्राप्त हो, तिसके बोधवास्ते अब तिस आत्माके चार पाद कथन करतेहैं ॥ यह आत्माही चतुष्पाद है ॥ जैसे व्यवहारवास्ते एक रुपयाके चार भाग कहे जातेहैं । तैसे एक आत्मामें मुमुक्षु जनोंके बोध अर्थ चार पादका वर्णन है ॥ जैसे विश्व, तैजस, प्राज्ञ, तुरीय, यह जीवके चार पाद हैं, तैसे विराट, हिरण्यगर्भ, ईश्वर, तथा ईश्वरसाक्षी (परमात्मा) यह ईश्वरके चार पाद हैं ॥ अब विराटकी विश्वसे अभेदताको मनमें धारण करके विश्वरूप प्रथम पादका वर्णन करते हैं ॥ विश्वसे अभिन्न जो विराट है, यह आत्माका प्रथम पाद है, कैसा है यह विश्व अभिन्न विराट, जाग्रत अवस्था तथा स्थूल शरीरका अभिमानी है,

तथा बाह्य शब्दादिकोंमे वृत्तिवाला है, इस विश्व अभिन्न विराटके सप्त अंग हैं । स्वर्गलोक मस्तक है, चन्द्र सूर्य नेत्र हैं, वायु प्राण है, आकाश धड है समुद्रादिकरूप जल मूत्रस्थान है, पृथिवी पाद है;जिस अग्निमें हवन करतेहैं, तिस अग्निको आहवनीय कहतेहै, सो आहवनीय अग्नि इस विश्व अभिन्न विराटका मुख है ॥ और इस विश्वके उन्नीस मुख हैं, यथा, पंच कर्म इन्द्रिय, पंच ज्ञान इन्द्रिय, पंच प्राण मन, बुद्धि, अहंकार, चित्त, यह चार अन्तःकरण॥ यह उन्नीस ही मुखकी नांई भोगके साधन होनेसे मुख कहे जाते हैं, इस विश्वको स्थूल भुक्भी कहते हैं, स्थूल शब्दादिक विषयोंको भोगता है इसी कारण स्थूलभुक् है और यहही सर्व नररूपहै यातें वैश्वानर है ॥ यह प्रथम पादका निरूपण हुआ ॥ अब द्वितीय पादको कहते हैं, । व्यष्टि सूक्ष्मशरीरके अभिमानी तैजसका समष्टि सूक्ष्मशरीरके अभिमानी हिरण्यगर्भके साथ अभेद है। हिरण्यगर्भसे अभिन्न तैजसही स्वप्न अवस्थाका अभिमानी है और यह तैजस मनोमात्र जो पदार्थ है तिनको भोगता है, इसी कारण तैजसको अन्तःप्रज्ञ कहतेहैं ॥ अर्थ यह ॥ अन्तर है सूक्ष्म अविचारचित पदार्थोंमें प्रज्ञा (बुद्धि) जिसकी तिसका नाम अन्तःप्रज्ञ है। जैसे सप्त अंग उन्नीस मुख विश्वके कहेहैं. तैसेही तैजसकेभी हैं, केवळ इतना भेद है, कि विश्वके तो ईश्वर रचित हैं, और तैजसके मनोमात्र

है ॥ अब तृतीय पादके निरूपणवास्ते सुषुप्ति अवस्थाको प्रथम कहतेहैं ॥ जिस अवस्थामें प्राप्त हुआ यह जीव किसी भोगमें इच्छा करता नहीं, तथा जिस अवस्थामें अनेक प्रकारके विपर्ययरूप स्वप्नदर्शनको करता नहीं, तिस अवस्थाको सुषुप्ति कहतेहैं ॥ ऐसी सुषुप्ति अवस्थावाला ईश्वर अभिन्न प्राज्ञही तृतीय पाद है ॥ अब तिस व्यष्टिकारण शरीर अविद्याके अभिमानी प्राज्ञके विशेषणको कहतेहैं ॥ यह प्राज्ञ सुषुप्तिमें ईश्वरके साथ एकताको प्राप्त होताहै, यातें इसको प्रज्ञानघन कहतेहैं, जाग्रतके तथा स्वप्नके सर्वज्ञान अविद्यामें एकरूप होजातेहैं, इसीसे इसको प्रज्ञानघन कहतेहैं तथा अधिक आनन्दको प्राप्त होताहै, यातें आनन्दमय कहतेहैं, और यह प्राज्ञही अविद्याकी वृत्तियोंसे अज्ञानआवृत आनन्दको भोगताहै, यातें यह आनन्दभुक् है ॥ जाग्रतस्वप्नके ज्ञानमें द्वाररूपसे जो स्थित होवै तिसको चेतोमुख कहते हैं ॥ प्राज्ञही जाग्रत स्वप्नमें द्वार है, यातें तिसको चेतोमुख कहतेहैं। इसकोही भूत भविष्यत वर्तमान पदार्थोंका ज्ञान जाग्रत स्वप्नमें होताहै, यातें इसको प्राज्ञ कहतेहैं ॥ जाग्रत स्वप्नके ज्ञानोंसे रहित केवल चेतनप्रधानतारूप करके स्थित होनेसेभी इस तृतीय पादको प्राज्ञ कहतेहैं ॥ अब प्राज्ञको ईश्वररूपताके सूचन अर्थ ईश्वरके धर्मोंका प्राज्ञमें निरूपण करतेहैं ॥ यह प्राज्ञही सर्वका ईश्वर है, तथा यह प्राज्ञही सर्वज्ञ है,

यह प्राज्ञही सर्व भूतोंके अन्तर स्थित हुआ सर्वका नियंता है, तथा सर्व भूत इस प्राज्ञसेही उत्पन्न होतेहैं, और इस प्राज्ञमेंही लय होतेहैं ॥ अब चतुर्थ पादको साक्षात् शब्दका अविषय होनेसे निषेध मुखसे तिस तुरीय आत्मारूप चतुर्थ पादका निरूपण करतेहैं । यह तुरीय आत्मा तैजस नहीं, तथा विश्व नहीं, तथा जाग्रत स्वप्न अवस्थाकी जो मध्य अवस्था है, सो अवस्थाभी तुरीयरूप आत्मा नहीं, तथा सुषुप्ति अवस्था आत्मा नहीं, तथा एक कालमें सर्व विषयोंका ज्ञाता नहीं तथा सर्व पदार्थोंका अज्ञाता भी नहीं और यह तुरीय आत्मा निर्विशेष होनेसेही ज्ञान इंद्रियोंका अविषय है, यातेही क्रियासे रहित है, तथा कर्म इंद्रियोंका अविषय, तथा स्वतंत्र अनुमानका अविषय है तथा बुद्धिका अविषय है. तथा शब्दका अविषय है ॥ सर्व प्रकारसे आत्माको अविषय होनेसे प्राप्त हुई जो शून्यताकी शंका, तिस शंकाको अब निवृत्त करते हैं यह आत्मा तृतीय अवस्थामें अनुगत होकर प्रकाश करताहै ऐसी वृत्तिसे जानने योग्यहै, इस कारण शून्यताकी प्राप्ति होवी नहीं, तथा तुरीय आत्मा अपनी सिद्धिमें आपही प्रमाणहै, इससे भी शून्यताकी प्राप्ति होती नहीं । तथा तुरीय आत्मा अपनी सिद्धिमें आपही प्रमाण है, इससेभी शून्यताकी प्राप्ति होवी नहीं, तथा सर्व प्रपंचका जो तुरीयमें अभावहै, तथा निर्विकार

है तथा शुद्ध परमानन्द बोधरूप है, तथा भेदकल्पनासे रहित है, तथा तीन पादसे विलक्षण है, इसीसे इस आत्माको चतुर्थ कहतेहैं, तिनकी अपेक्षासे तुरीय कहा जाताहै, और उक्त पादत्रय इस आत्मासे भिन्न वास्तवमें है नहीं इस कारण इस आत्माको तुरीय कथन केवल उपदेश अर्थ है ॥ कोई श्रुति भगवती स्वअभिप्रायसे इस आत्माको तुरीय रूपता नहीं कहतीहै, ऐसे सर्व कल्पनासे रहित तुरीय आत्माको ही विवेकी पुरुष आत्मरूपसे मानतेहैं, भिन्न रूपसे मानैं नहीं,ऐसा आत्मा सर्व कल्पनाका अधिष्ठान तुरीयही मुमुक्षुको जानने योग्य है, इसके ज्ञानसे मुमुक्षु कृतकृत्यभावको प्राप्त होताहै ॥

अथ विश्वादिक पादोंका ॐकारके अकारादिक मात्राओंसे अभेद वर्णन ।

पूर्व चतुष्पादरूपसे निरूपण किया जो आत्मा सो आत्मा ॐकाररूप है, ॐकारकी तीन मात्रा हैं, प्रथमका नाम अकार है, द्वितीयको उकार कहतेहैं, तृतीयको मकार कहतेहैं, अब जिस मात्रासे आत्माके जिस पादका अभेद है तिसको कहतेहैं जाग्रत अवस्थावाला जो विश्वसे अभिन्न वैश्वानर है, सो प्रथम अकार मात्रारूप है ॥ अभेदके सम्पादकतुल्य धर्मको वर्णन करतेहैं ॥ जैसे सर्व प्रपंचमें व्यापक विराट है, तैसे अकारभी सर्व वाक्‌रूप है, ऐसा श्रुतिमें कहा है, यातें अकारभी व्यापक है ॥ जैसे आत्माके

पादोंमें प्रथम पाद विराट् है, तैसे ॐकारकी मात्रामें प्रथम मात्रा अकार है । ऐसे व्यापकता तथा प्रथमता रूप दो समान धर्मोंसे दोनोंकी एकता है ॥ जो पुरुष प्रथम पादका प्रथम मात्रासे उक्ततुल्य धर्मोंसे अभेद चिन्तन करते हैं, सो पुरुष सर्व कामनाओंको प्राप्त होतेहैं, तथा सर्व महात्माओंके मध्यमें अग्रणीय होतेहैं ॥ स्वप्न अवस्थावाला जो तैजस है, सो द्वितीय मात्रा उकाररूप है, दोनोंमें समान धर्म यह हैं, उत्कृष्टता तथा द्वितीयता, तैजसरूप द्वितीयपादमें तथा उकाररूप द्वितीय मात्रामें समान धर्म उत्कृष्टता तथा द्वितीयतारूप जानकर जो पुरुष दोनोंका अभेद चिन्तन करता है तिसको फलकी प्राप्ति कहतेहैं ॥ उच्चारणकी अपेक्षासे उकारमें उत्कृष्टता गौण जाननी ॥ वास्तवमें तो उत्कृष्टता सर्व वर्णोंमें व्यापक जो अकार है, तिसमेंही है ॥ ऐसे द्वितीय पादमें और द्वितीय मात्रामें उत्कृष्टतारूप समान धर्म करके अभेद चिन्तनसे पुरुष अत्यन्त ज्ञानकी वृद्धिको प्राप्त होताहै, तथा द्वितीयरूप समान धर्म करके अभेद चिन्तनसे शत्रु मित्रमें समानतारूप फलको प्राप्त होताहै ॥ सुषुप्ति अवस्थावाला प्राज्ञ तृतीय मात्रा मकाररूप है ॥ विश्व, तैजसको उत्पत्ति, प्रलयमें निर्गमनसे तथा प्रवेशसे प्राज्ञ परिमाणरूप मिनती करताहै ॥ तथा ॐकारके वारंवार उच्चारण करनेसे अकार, उकारका मकारमें लय, तथा मकारसे उत्पत्ति प्रतीति

होतीहै, यातें उत्पत्ति प्रलयकालमें मकार, अकार उकार दोनोंकी मिनती करताहै, इस मिनतीरूप धर्मसे प्राज्ञका तथा मकाररूप तृतीय मात्राका अभेद कहा ॥ जैसे ॐकारके उच्चारण करनेसे मकारमें अकार, उकारकी समाप्ति होनेसे दोनोंकी मकारमें एकता होतीहै, तैसे विश्वतैजस सुषुप्तिमें प्राज्ञमें एकताको प्राप्त होतेहैं । इस एकीभावरूप समान धर्मसे प्राज्ञका मकारसे अभेद है ॥ जो पुरुष प्राज्ञका मकारसे मिनतीरूप समान धर्म करिके अभेदचिन्तन करताहै, सो पुरुष जगतके यथार्थ स्वरूपको जानता है, और एकीभावरूप समान धर्मसे जो पुरुष प्राज्ञका मकारसे अभेद चिन्तन करताहै, सो पुरुष सर्व जगतका कारण होताहै ॥ यहांपर जो विश्वका अकारसे अभेद, तथा तैजसका उकारसे अभेद, तथा प्राज्ञका मकारसे अभेद ऐसे अभेदको निरूपण करके पुनः इन त्रितय अभेद चिन्तनके जो भिन्नभिन्न फल निरूपणकिये हैं, सो प्रधान ओंकारके ध्यानवास्तेही कहे हैं, यातें ओंकारके ध्यानकी स्तुतिरूप होनेसे अर्थवादरूप जानना ॥ श्रुति भगवती भिन्न भिन्न फलनिरूपणमें तात्पर्यवाली नहींहै, किन्तु प्रधान जो ओंकारका ध्यान ताके फलनिरूपणमेंही श्रुति भगवतीका तात्पर्य है, अन्यथा उपासनाकी अनेकता प्राप्त होवैगी केवल एक ॐकारका ध्यानही श्रुतिमें विवक्षित है ॥ अब

चतुर्थ पाद जो तुरीय है तिसका अमात्र ओंकारके साथ अभेदनिरूपण करतेहैं ॥ जो चेतन अध्यस्त त्रिमात्रावाले ॐकारके साथ अभेदरूपसे प्रतीत होताहै, सो यहां ॐकार रूपसे विवक्षित है, तिस ॐकाररूप चेतनकी परब्रह्मके साथ एकता होतीहै, ऐसे मात्रा कल्पनासे रहित जो ॐकारका वास्तव अमात्ररूप है, तिस अमात्ररूपका तुरीयसे अभेद है। अमात्ररूप तुरीय क्रियासे रहित है, तथा प्रपंचके सम्बन्धसे शून्य है, तथा आनन्दरूप है, और सर्वभेद कल्पनासे रहित है ॥ ऐसा जाननेवाला अधिकारी अपने पारमार्थिक स्वरूपमें प्रवेश करताहै । अज्ञानके निवृत्त होनेसे पुनः जन्ममृत्युको प्राप्त होता नहीं ॥ ॐकारके ध्यानसेही कृतार्थताको प्राप्त होताहै ॥ इस अर्थको कारिकासे कहते हैं ॥ युंजीत प्रणवे चेतः प्रणवो ब्रह्म निर्भयम् । प्रणवे नित्ययुक्तस्य न भयं विद्यते कचित ॥ १ ॥ अर्थ यह है॥ ॐकार निर्भय ब्रह्मरूप है। यातें पुरुष ॐकारमे चित्तको जोडै । और जो पुरुष ॐकारमें चित्तको जोडता है, तिस पुरुषको कहीभी भयकी प्राप्ति नहीं होती ॥ १ ॥ इस स्थानमें यह निष्कर्ष है ॥ पूर्व निरूपण करा जो विराटसे अभिन्न विश्व सो अकाररूप कहा है, तिस विश्वरूप अकारका तैजसरूप उकारमें लय करै ॥ विश्वरूप अकार तैजसरूप उकारसे भिन्न नहीं, ऐसे चिन्तनका नाम लयचिन्तन इस उपनिषदमें इष्ट है । इसी

प्रकार तैजसरूप उकारको प्राज्ञरूप मकारमें लय करै, प्राज्ञरूप मकारको ॐकारके परमार्थरूप अमात्रमें लय करै ॥ क्योंकि स्थूलकी उत्पत्ति तथा लय सूक्ष्ममें होतीहै । यातें स्थूल विश्वरूप अकारका सूक्ष्म तैजसरूप उकारमें लय कहा ॥ सूक्ष्मकी उत्पत्ति और लय-कारणमें होतीहै, यातें सूक्ष्म तैजसरूप उकारका कारण प्राज्ञरूप मकारमें लय कहा ॥ विश्वादिकोंके लय-कथनसे समष्टि विराट तथा हिरण्यगर्भभी ग्रहण कर लेना॥ जिस प्राज्ञरूप मकारमें तैजस अभिन्न हिरण्यगर्भरूप उकारका लय निरूपण किया है, तिस ईश्वर अभिन्न प्राज्ञरूप मकारका तुरीयरूप जो ॐकारका पारमार्थिक अमात्ररूप है तिसमें लय करै, क्योंकि ॐकारका परमार्थरूप अमात्र है, सो अमात्र तुरीयरूप है, तिस तुरीयका ब्रह्मसे अभेद है । शुद्ध ब्रह्ममें माया उपाधिते विशिष्ट ईश्वर तथा अविद्याविशिष्ट प्राज्ञ दोनों कल्पित हैं । कल्पित वस्तु अधिष्ठानसे भिन्न होता नहीं, यातें ईश्वर अभिन्न प्राज्ञरूप मकारका लय अमात्रमें निरूपण किया ॥ ऐसे जिस ॐकारके वास्तव अमात्र स्वरूपमें सर्वका लय किया है, सो मेरा स्वरूप है ॥ सर्व नामरूप प्रपंचका अधिष्ठान नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वभाव परमानन्द अद्वैतस्वरूप जो ॐकारका पारमार्थिक स्वरूप है, सोई मैं हूँ । ऐसा चिंतनसे ज्ञान उदय होता है । ऐसा ज्ञान

द्वारा मोक्षका करने हारा यह प्रणवरूप ॐकारका चिन्तन है ॥ जो पुरुष इस प्रकारसे ॐकारके ध्यानको करता है, तिसको श्रीगौडपादाचार्य वृद्धमुनिरूप करके वर्णन करते भये ॥ जो पुरुष अनेक प्रकारके अनात्म प्रतिपादक शास्त्रको जानताभी है, परन्तु इस ॐकारके ध्यानसे रहित है, वो सो पुरुष मुनि नहीं है । परमहंस महात्माओंको यह अतिप्रिय है । जो बहिर्मुख है, तथा रागद्वेषादि दोषसें दूषित अन्तःकरण है, तिसका इस ॐकारके ध्यानमें अधिकार नहीं ॥ जो पुरुष रागद्वेषादि दोषरहित है, तथा अन्तर्मुख है, तिसको इस ॐकारके ध्यानका अधिकार है ॥ जिस पुरुषकी भोगोंमें कामना नहींहै, तिसको इस जन्ममेंही इस ध्यानसे ज्ञान प्राप्त होताहै ॥ जिस पुरुषकी परलोकके भोगोंमें कामना तो है, परन्तु तिस कामनाको रोककर गुरुमुखसे ॐकारके उपदेशको श्रवण करके ॐकारका ध्यान करता है, तिस प्रतिबन्धके वशसे ज्ञान वो होता नहीं, किन्तु देवयान मार्गसे ब्रह्मलोकमें प्राप्त होताहै, तिस ब्रह्मलोकमें प्राप्त हुआ सो उपासक पुरुष ईश्वरके समान सत्यसंकल्प होता है, परन्तु जगतकी उत्पत्ति आदिकोंके करनेमें ईश्वरही में सामर्थ्य है, उपासकमें जगतकी उत्पत्ति आदिक करनेकी सामर्थ्य होती नहीं ॥ ऐसा उपासक तिस ब्रह्मलोकमेंही ज्ञानको प्राप्त होताहै, और प्रलयकालमें जब ब्रह्मलोकका नाश होताहै, तब हिरण्यगर्भके साथही यह उपा-

सक विदेहकैवल्यको प्राप्त होताहै ॥ यदि ऐसे उपासककी इस लोकके भोगोंमें कामना रही हो तो इस लोकमें शुद्ध कुलवाले धनाढ्यके गृहमें सो योगभ्रष्ट उत्पन्न होता है तथा इस लोकके नानाप्रकारके भोगोंको भोगकर वैराग्यको प्राप्त हुआ ॐकारके ध्यानमें वा श्रवणादिकोंमें प्रवृत्त होकर ज्ञानद्वारा मोक्षको पाता है, यदि लोक परलोकके भोगोंकी कामना तो है नहीं, परन्तु किसी भावी प्रारब्धकर्मरूप प्रतिबन्धसे योगभ्रष्ट हुआ तो वह योगी अथवा ज्ञानीके कुलमें उत्पन्न होकर अभ्यास वैराग्यादि साधनोंको सम्पादन करता हुआ ज्ञानप्राप्ति द्वारा मोक्षको प्राप्त होताहै ॥ ऐसे योगभ्रष्टकी व्यवस्था भगवद्गीताके अनुसार हमने लिखी है ॥ इति ॥ मांडूक्य उपनिषद सार (भाषा) समाप्त हुआ ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ॥

ॐ नमो भगवते लक्ष्मीनृसिंहाय ॥

अथर्ववेदीय नृसिंहपूर्वोत्तरतापनीय उपनिषदके भाष्यके अर्थसे प्रजापति ब्रह्मा तथा अग्नि आदिक देवताओंका संवाद ॥ ॐकाररूप प्रणवकी चार मात्रा तथा उसके वाच्य आत्माके षोडश पाद अर्थात् कलानिरूपण।

प्रजापति बोले ॥ हे देवतावो ! ॐकाररूप प्रणवकी अकार, उकार, मकार, नाद यह चार मात्रा होतीहैं, तिन

अकारादिक चार मात्रावोंमें एक एक मात्रा स्थूल सूक्ष्मादिक भेदसे चार चार प्रकारकी होतीहैं, तहां तिन अकारादिक वर्णोंकी वैखरी नामा स्थूल अवस्था तौ वाकमें रहतीहै, और तिन अकारादिक वर्णोंकी दूसरी मध्यमा नामा सूक्ष्म अवस्था हृदयदेशमें रहतीहै; और तिन अकारादिक वर्णोंकी तीसरी पश्यन्ती नामा बीज अवस्था कुण्डलिनीमें रहतीहै और तिन अकारादिक वर्णोंकी चतुर्थ परा नामा अवस्था तौ साक्षीरूपसे सर्वत्र व्यापक है ॥ इस प्रकार अकारादिक चार मात्रावोंका चार चार प्रकारका होनेसे तिन मात्रावोंका समुदाय रूप प्रणव षोडश अवयवोंवाला सिद्ध होताहै ॥ अथवा सो अकारादिक चार मात्रा प्लुत दीर्घ; ह्रस्व, साक्षी, इन चार भेदसे चार चार प्रकारकी होतीहैं, यातें तिन सर्व मात्रावोंका समुदाय रूप प्रणव षोडश अवयवोंवाला कहा जाताहै ॥ अब आत्माके षोडश भेदोंका वर्णन करतेहैं ॥ हे देवतावो ! जैसे तिस प्रणवके अकार उकार, मकार, नाद यह चार पाद होतेहैं, तैसे तिस प्रणवके वाच्य अर्थ रूप आत्माकेभी चार पाद होतेहैं ॥ वहां व्यष्टि स्थूल शरीररूप उपाधिवाला जो विश्व है, सो विश्व इस आत्मादेवका प्रथम पाद है और व्यष्टि सूक्ष्म शरीररूप उपाधिवाला जो तैजसहै, सो तैजस इस आत्मादेवका द्वितीय पाद है, और व्यष्टिकारण शरीररूप उपा-

धिवाला जो प्राज्ञ है, सो प्राज्ञ इस आत्मादेवका तृतीय पाद है, और तिन तीनोंका प्रकाश करने हारा जो साक्षीरूप तुरीय है, सो तुरीय इस आत्मादेवका चतुर्थ पाद है ॥ यह चारों पाद यथाक्रमसे तिस प्रणवमन्त्रके अकारादिक चार मात्रावोंके अर्थरूप हैं, सो चारों पाद अध्यात्मरूप हैं ॥ और हे देवतावो! तिस आत्मादेवके जैसे विश्वादिक चार अध्यात्म पाद हैं, वैसे तिस आत्मादेवके चार अधिदैव पादभी हैं, तहां समष्टि स्थूल शरीररूप उपाधिवाला जो विराट है, सो विराट प्रथम पाद है; और समष्टि सूक्ष्म शरीररूप उपाधिवाला जो हिरण्यगर्भ है, सो हिरण्यगर्भ द्वितीय पाद है, और समष्टि कारण शरीर रूप उपाधिवाला जो ईश्वर है, सो ईश्वर तृतीय पाद है; और तिन सर्वको प्रकाश करनेहारा परमात्मा चतुर्थ पाद है, यह चारों तिस आत्मादेवके अधिदैव पाद हैं ॥ हे देवतावो! जैसे तिस प्रणवकी अकारादिक चार मात्रा चार चार प्रकारकी होतीहैं, तैसे इस आत्मादेवके विराटादिक चार अधिदैवरूपोंसे अभिन्न जो विश्वादिक चार पाद हैं, सो विश्वादिक चार पादभी तीव्र, मध्यम, मंद, तुरीय, इन चार भेदोंसे चार चार प्रकारके होतेहैं ॥ तहां जाग्रतरूप विश्वका जो स्वरूप नेत्रादिक इन्द्रियोंसे रूपादिक विषयोंको ग्रहण करता है, सो स्वरूप तिस विश्वका तीव्र नामा प्रथम पाद है, और

तिस विश्वका जो स्वरूप मनोरथोंको करता है, सो स्वरूप तिस विश्वका मध्यम नामा द्वितीय पाद है, और तिस विश्वका जो स्वरूप मोह करके तूष्णींभावको प्राप्त होताहै, सो स्वरूप तिस विश्वका मंद नामा तृतीय पाद है; और तिस विश्वका जो सर्व उपाधिसे रहित निर्विशेष तुरीय स्वरूप है, सो निर्विशेष स्वरूप तिस विश्वका चतुर्थ पाद है ॥ इसी प्रकार स्वप्नका द्रष्टा तैजसभी चार प्रकारका होताहै, तहां स्वप्न अवस्थामें जो तैजसका स्वरूप सत्यमंत्रादिकोंको ग्रहण करताहै, सो स्वरूप तिस तैजसका तीव्र नामा प्रथम पाद है; और तिस तैजसका जो स्वरूप स्वप्नको स्वप्नरूपसे जानता है, सो स्वरूप तिस तैजसका मध्यम नामा द्वितीय पाद है; और तिस तैजसका जो स्वरूप तिस स्वप्नमें मोह करके मूढभावको प्राप्त होताहै, सो स्वरूप तिस तैजसका जो मन्दनामा तृतीय पाद है और तिस तैजसका स्वरूप निर्विशेष तुरीयरूप है, सो निर्विशेष तुरीय स्वरूप तिस तैजसका चतुर्थ पाद है ॥ इसी प्रकार सुषुप्ति अवस्थावाला प्राज्ञभी चार प्रकारका होताहै, तहां सात्त्विकवृत्ति है प्रधान जिसमें ऐसा जो प्राज्ञका स्वरूप है, सो स्वरूप तिस प्राज्ञका तीव्र नामा प्रथम पाद है, और राजस वृत्ति है प्रधान जिसमें ऐसा जो तिस प्राज्ञका स्वरूप है, सो स्वरूप तिस प्राज्ञका मध्यम नामा द्वितीय पाद है, और तामस वृत्ति है प्रधान जिसमें ऐसा जो तिस प्राज्ञका स्वरूप है, सो

स्वरूप तिस प्राज्ञका मन्द नामा तृतीय पाद है; और तिस प्राज्ञका जो स्वरूप निर्विशेष तुरीयरूप है, सो निर्विशेष स्वरूप तिस प्राज्ञका चतुर्थ पाद है ॥ पूर्व प्रणवमंत्रकी जो नाद नामा चतुर्थी मात्रा कथन की थी, तिस नादमात्राकी बीज, बिन्दु, शक्ति, शांत यह चार अवस्था कथन की हैं तिन चारोंके यथाक्रमसे ओत, अनुज्ञाता, अनुज्ञा, अविकल्प यह तुरीय आत्माके चार पाद अर्थरूप हैं ॥ अब तिन ओतादिक चार पादोंको तीव्रादि रूपसे (करके) वर्णन करतेहैं ॥ वहां जैसे अंगारोंमें अग्नि अनुगत होकर रहताहै, तैसे जो आत्मादेव सर्व स्थूल सूक्ष्म कारण शरीरोंमें साक्षीरूपसे अनुगत है, तथा सर्व जीवोंका आत्मारूप है, तथा जिस आत्मादेव करके यह सर्व प्रपंच अपने अपने रूपसे जाने जातेहैं, तिस अन्तर्यामी आत्मादेवका नाम ओत है। सो ओत नामा आत्मा तिस तुरीय आत्माका तीव्र नामा प्रथम पाद है ॥ और जो आत्मादेव ध्याता, ध्यान, ध्येय, ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय इत्यादिक जगतको अपनी सत्तास्फूर्तिसे रहित देखकर तथा हमारी सत्तास्फूर्ति इस जगतको प्राप्त होवै; इस प्रकारका विचार करके अपनी सत्तास्फूर्ति इस जगतमें प्राप्त करताहै, तिस आत्मादेवका नाम अनुज्ञाता है। सो अनुज्ञाता नामा आत्मा तिस तुरीय आत्मादेवका मध्यम नामा द्वितीय पाद है ॥ और जो आत्मादेव कल्पि-

जगतसे अपनी सत्तास्फूर्तिको आकर्षण करके तिस कल्पि-
जगतको लय करके केवल अपने अद्वितीय रूपको जानता है,
तिस आत्माको अनुज्ञा इस नामसे कथन करतेहैं, सो अनुज्ञाता
आत्मा तिस तुरीय आत्मादेवका मन्द नामा तृतीय पाद है ॥
और जिस आत्मादेवके स्वरूपमें इस कल्पित द्वैतप्रपंचकी स्मृ-
तिभी नहीं होती है, तथा जो आत्माका स्वरूप योगी पुरुषों-
को अनेक जन्मोंके पुण्यकर्मोंसे प्राप्त होताहै, तिस आत्माके
स्वरूपका नाम अविकल्प है, सो अविकल्पस्वरूप तिस तुरीय
आत्माका चतुर्थ पाद है ॥ हे देवतावो ! सो अविकल्प
नामा तुरीय आनन्दस्वरूप तिन चारों अवस्थावोंमें अधिष्ठान-
तारूपसे अनुगत हुआ प्रतीत होताहै, और तिसी अविकल्प
नामा तुरीय आत्माकी सत्तास्फूर्त्तिसे यह पूर्व उक्त षोडश
प्रकार आत्माका स्वरूप प्रतीत होताहै ॥ तहां यद्यपि
आत्माके तुरीय स्वरूपमें कल्पितरूपता संभवै नहीं, तथापि
तिस तुरीय आत्मामें जो तुरीयतारूप धर्म है, सो तुरीयता
धर्म अपनेसे भिन्न तीन वस्तुवोंकी अपेक्षा करता है, तिनकी
अपेक्षा करकेही तुरीय कहा जावाहै, यातें सो तुरीयता धर्मभी
कल्पित है, परन्तु सो तुरीयता धर्मका आश्रयरूप आत्मा
कल्पित नहींहै ॥ हे देवतावो ! जैसे निर्मल आकाशमें गंध-
र्वनगर प्रतीत होता है, यातें सो गंधर्वनगर कल्पित कहा
जाताहै, वैसे तिस अविकल्परूप शुद्ध आत्मामें यह सर्व

जगत प्रतीत होता है, यातें यह जगतभी कल्पित कहा जाता है ॥ और यह अविकल्प आत्मादेव सर्व भयसे रहित है; तथा जन्मादिक सर्व विकारोंसे रहित है, तथा यह परमात्मादेव परमाणु आदिक सूक्ष्म पदार्थोंसेभी अत्यन्त सूक्ष्म है, और आकाशादिक महान पदार्थोंसेभी अत्यन्त महान है, ऐसे आत्मादेवके साक्षात्कारसेही मोक्षकी प्राप्ति होतीहै ॥ अब तिस आत्मज्ञानके अधिकारीका वर्णन करतेहैं ॥ हे देवतावो ! इस अविकल्प नामा आनन्दस्वरूप आत्माके जाननेकी इच्छा करते हुए यह ब्राह्मणादिक अधिकारी पुरुष वेदविहित अग्निहोत्रादिक कर्मोंको करतेहैं, तथा हिंसादिक निषिद्ध कर्मोंका परित्याग करतेहैं, तथा सो अधिकारी पुरुष सत्य, तप, दया, दान, ब्रह्मचर्य हैं, अहिंसा इत्यादिक शुभ कर्मोंको करतेहैं ॥ यहांतक मन्द-मध्यम इन दो प्रकारके अधिकारियोंका वर्णन किया ॥ अब उत्तम अधिकारीका वर्णन करतेहैं ॥ हे देवतावो ! इस अविकल्प स्वरूप आत्माके जाननेकी इच्छा करते हुए कोइक ब्राह्मणपुत्र ईषणा, वित्तईषणा लोक ईषणा इन तीन प्रकारकी ईषणावोंका परित्याग करके तथा परमहंस संन्यासके ग्रहणपूर्वक सर्व कर्मोंका परित्याग करके केवल भिक्षावृत्तिको धारण करते हैं ॥ ऐसे उत्तम अधिकारी पुरुष इस आनन्दस्वरूप आत्माको साक्षात्कार करके अन्तरसे सर्वज्ञ हुएभी बाह्यसे

अन्ध, मूक पुरुषकी नांई इस पृथिवीपर विचरते हैं ॥ इस कारणसेही अविवेकी लोक तिन विद्वान् पुरुषोंको जान सकते नहीं ॥ जैसे पूर्व संवर्तकादिक संन्यासी, इस पृथिवीपर लोगोंसे अज्ञात हुए विचरते भयेहैं, यातें अधिकारी पुरुषोंको तिस अविकल्प आत्माके साक्षात्कारको अवश्य सम्पादन करना चाहिये ॥

अब तिस पूर्व उक्त अनुष्टुप छन्दरूप मंत्रसहित प्रणवकी उपासनाका तथा केवल प्रणवके उपासनाको निरूपण करते हैं ॥ हे देवतावो ! यह अधिकारी पुरुष जो कदाचित किसी पापकर्मरूप प्रतिबन्धके वशसे तिस आत्मादेवको अविकल्परूपसे नहीं जान सकै, तो ऐसे अधिकारी पुरुषोंको तिस पापरूप प्रतिबन्धकी निवृत्ति करनेवास्ते कोई उपाय अवश्य करना चाहिये ॥ सो उपाय यह है, पूर्व जो चार पादों वाला मंत्रराज कहाथा, तिस मंत्रके चार पादोंका यथाक्रमसे विश्व, तैजस, प्राज्ञ, तुरीय, इन चार आत्माके स्वरूपोंका वाचक जो अकार,उकार, मकार,नाद, यह प्रणवकी चार मात्रा हैं, तिन चार मात्रावोंके साथ अभेदचिन्तन करना ॥ तहां प्रणव मंत्रके मात्रावोंकी विभूति इस प्रकार श्रुतिने कथन की है, ब्रह्मा, वसु, गायत्री, गार्हपत्य पृथिवी, ऋग्वेद,ऋग्मंत्र,यह सम्पूर्ण अकाररूप हैं।और विष्णु,रुद्र त्रिष्टुप, दक्षिणाग्नि,यजुर्मंत्र,यजुर्वेद अन्तारिक्ष यह सम्पूर्णउकाररूपहैं।रुद्र,

आदित्य, जगती, आहवनीय, स्वर्ग, साममंत्र, सामवेद यह सम्पूर्ण मकाररूप हैं, और विराट, मरुत, एकर्षि रूप अग्नि, प्रणव, अथर्वण मन्त्र, अथर्व वेद, संवर्त्तकाग्नि, सोम, लोक यह सम्पूर्ण नादरूप हैं ॥ इस प्रकारकी विभूतियों सहित तिन अकारादिक चार मात्रावोंको, ब्रह्मवेत्ता गुरुके मुखसे जानकर यह अधिकारी पुरुष पूर्व उक्त मंत्रराजके चार पादोंका यथाक्रमसे इन अकारादिक चार मात्रावोंमें अभेद चिन्तन करै, तिसके अनन्तर यह अधिकारी पुरुष तिस मंत्रके चार पादोंसहित तिन अकारादिक मात्रावोंका लयचिन्तन करै ॥ अथवा केवल अकारादिक मात्रावोंकाही लयचिन्तन करै ॥ तिस लयचिन्तन करनेका प्रकार शास्त्रवेत्ता पुरुषोंने इस प्रकारसे कथन किया है:—अकारादिक पूर्वपादोंको उकारादिक उत्तरपादोंमें लय करै, तैसै उकारादिक पादोंकोभी उत्तर मकारादिक पादोंमें लय करै, इस प्रकार तुरीय पर्यन्त तिनका लय करै, तिसके अनन्तर बीज, बिन्दु, शक्ति, शान्त इस चार अवस्थावाले तुरीयरूप प्रणवको मनसे (करके) चिन्तन करै ॥ हे देवतावो ! तिस प्रणव मंत्रका वाच्यार्थ रूप जो पुरुष है, तिस पुरुषकी जो यह पादरूप षोडश कला कथन कीहै, सो षोडश कला यथाक्रमसे पूर्व उक्त षोडश अवयववाले प्रणव मंत्रमेंही तादात्म्य सम्बन्ध (करके) से स्थित होतेहैं ॥ सर्व भेदसे रहित शुद्ध परमात्मादेवमें सो

कला रहते नहीं ॥ इस कारणसे तिन सर्व कलावोंका लय संभव है ॥ इस प्रकार शनैः शनैः अभ्यास करते करते इस अधिकारी पुरुपको जब किसी पूर्वले पुण्यकर्मके प्रभावसे इस अविकल्प तुरीय आत्माकी प्राप्ति होतीहै, तब इस अधिकारी पुरुपके कार्य सहित अज्ञानकी निवृत्ति होतीहै; तिसके अनन्तर इस अधिकारीको किंचितमात्रभी कर्तव्य शेप नहीं रहता । यातें तिस आत्मसाक्षात्कारकी प्राप्ति वास्ते अधिकारी पुरुषोंको तिस प्रणवकी उपासना अवश्य करनी चाहिये ॥ इति ॥

मायाके स्वरूपका तथा ब्रह्मके स्वरूपका भिन्नभिन्न निरूपण ।

हे देवतावो ! सर्व कार्यों तथा सर्व कारणोंमें अनुगत जो परिणाम भाग है, तिस परिणामभागको वेदवेत्ता पुरुप "माया" इस नामसे कथन करतेहैं, और तिन कार्य कारण दोनोंका तथा तिन दोनोंमें अनुगत परिणामभागका प्रकाश करनेहारा जो स्फुरणरूप सत् वस्तु है, तिस स्फुरणरूप सत् वस्तुको वेदवेत्ता पुरुप "ब्रह्म, आत्मा" इस नामसे कथन करतेहैं ॥ हे देवतावो ! इस लोकमें जितने कि स्थूलसूक्ष्म पदार्थ हैं, तिन सर्व पदार्थोंमें परिणामरूपसे तो मायाका अनुगतपना देखनेमें आताहै, और सत्तारूपसे ब्रह्मका अनुगतपना देखनेमें आताहै ॥ इस कारण सो माया, तथा ब्रह्म दोनों जगतके उपादान कारण हैं, परन्तु

ब्रह्मतो विवर्त उपादान कारण है, और माया परिणामि उपादान कारण है ॥ इति ॥

जगत्की उत्पत्तिमें सामान्यरूप मायाकी कारणतानिरूपण।

प्रजापति बोले ॥ हे देवतावो ! इन्द्रिय,क्रिया,भोग इन तीनोंसे युक्त जो जरायुज, अंडज, स्वेदज, उद्भिज्ज, यह चार प्रकारके देह हैं,सो देह तो वटवृक्षके समान हैं, और संस्कार वटवीजके समान है, और तिन संस्कारोंमें स्थित जो सामान्य है,तिस सामान्यको वेदवेत्ता पुरुष माया इस नामसे कथन करतेहैं,कैसी है सो माया, सर्व जगतका कारणरूप है,तथा अनादि है ॥ और हे देवतावो ! जैसे तिन वटवीजोंमें तथा अंकुरोंमें अनुगत जो सामान्य है, सो सामान्य नाशसे रहित है इस कारणसेही सो सामान्य कारणरूप है, और तिस सामन्यका विशेष रूप जो बीज अंकुर है, सो बीज अंकुर तिस सामान्यरूप कारणसे भिन्न है नहीं, यातें सो सामान्य अद्वितीय रूप है, और परस्पर कारणकार्य रूपसे प्रसिद्ध जो बीज अंकुर है, सो बीज अंकुर दोनों नाशमान हैं, तैसे कारणकार्यरूपसे प्रसिद्ध जो संस्कार देह हैं तिन दोनोंके नाश हुएभी सो माया नाशको प्राप्त होती नहीं ॥ और हे देवतावो ! जैसे तिस वटबीजसे वटवृक्ष उत्पन्न होता है, और तिस वटवृक्षसे पुनः बीज उत्पन्न होताहै,

और तिस बीजसे पुनः वटवृक्ष उत्पन्न होताहै,इस प्रकार प्रवाहरूपसे तिन दोनोंका परस्पर कार्यकारणभाव होताहै, तैसे संस्कारोंसे देह होताहै, तिस देहसे पुनः संस्कार उत्पन्न होतेहैं, तिन संस्कारोंसे पुनः देह उत्पन्न होताहै,इस प्रकार प्रवाहरूपसे तिन दोनोंका परस्पर कार्यकारणभाव होताहै ॥ और हे देवतावो! जैसे कारण कार्यरूपसे प्रसिद्ध जो वटबीज तथा वृक्ष यह दोनोंहैं, तिन दोनोंमें पृथिवीके अवयव अनुगत होतेहैं, और तिन अवयवोंमें पृथिवी अनुगत होतीहै ॥ सो पृथिवी वटबीजके तथा वटवृक्षके नाश हुएभी प्रलय अग्निके विना नाशको प्राप्त होती नहीं,तैसे इन देहादिकोंमें तथा तिन देहादिकोंके कारणभूत संस्कारादिकोंमें अनुगत जो माया है;सो माया तिन देहादिकोंके नाश हुएभी ब्रह्मज्ञानरूप कालाग्निके विना नाशको प्राप्त होती नहीं; अतः अधिकारी पुरुषोंको ब्रह्मज्ञान अर्थात् स्फुरणरूप सत्तामात्र ब्रह्म-आत्माके ज्ञाननिमित्त अवश्य प्रयत्न करना चाहिये ॥ इति ॥

मायाब्रह्म इनदोनोमें स्पष्ट करके इस जगतकी कारणतानिरूपण ।

हे देवतावो ! सर्वदा एकरूप सत्ताही जो कदाचित् इन [illegible] अनुगत हुई दिखाई देती तो मायाको कारणरूपता नहीं सिद्ध होती,परन्तु इस जगतमें केवल एक सत्ताकाही अनुगतपना दिखाई देती नहीं,किन्तु सो परिणामरूप

मायाभी अनुगत हुई प्रतीत होतीहै और जो कदाचित सो परिणामरूप मायाही केवल इस जगतमें अनुगत हुई प्रतीत होती, तो सत्तारूप ब्रह्मको कारणता नहीं सिद्ध होती, परन्तु सो परिणामरूप मायाही केवल अनुगत हुई प्रतीत होती नहीं, किन्तु सो ब्रह्मभी अपने सत्तारूपसे सर्वत्र अनुगत हुआ प्रतीत होताहै। यातें सो सत्तारूप ब्रह्म तथा माया दोनोंही इस जगतके कारण हैं॥ तिस परिणाम सामान्यरूप माया का, तथा स्फुरणरूप सत ब्रह्मका, परस्परभेद विद्वान् पुरुषोंने कथन किया है, यातें इस जगतकी कारणतामें तिस मायाकी नांई ब्रह्मकोभी अवश्य अंगीकार करनाचाहिये ॥इति॥

एकही चेतन आत्मादेव उपाधिके भेदसे विराट हिरण्यगर्भ, ईश्वर तथा विश्वतैजस, प्राज्ञ भावको प्राप्त होताहै।

प्राजापति बोले! हे देवतावो! जो माया, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र इन तीनोंके सम्बन्धसे तथा सत्व, रज, तम इन तीन गुणोंसे तीन प्रकारकी होतीहै। तिस मायाके संबन्धसे यह आत्मादेव भी कर्त्ता, पालक, संहर्ता इन तीन रूपोंको प्राप्त होताहै, तथा जाग्रदादिक तीन अवस्थारूप संसारमें अहंमम अभिमानको करताहै। और सो आत्मादेवही समष्टि स्थूल उपाधिके संबन्धसे; विराट संज्ञाको प्राप्त होताहै। और समष्टि सूक्ष्म उपाधिके संबन्धसे सो आत्मादेव हिरण्यगर्भ

संज्ञाको प्राप्त होताहै । और समष्टि कारण उपाधिके संबन्धसे सो आत्मादेव ईश्वर संज्ञाको प्राप्त होताहै ॥ अब हिरण्यगर्भ भगवानमें जीवरूपता तथा ईश्वररूपता सिद्ध करनेवास्ते तिस हिरण्यगर्भको अध्यात्म अधिदैवरूपसे वर्णन करतेहैं ॥ हे देवतावो ! जिस हिरण्यगर्भके विश्व, तैजस प्राज्ञ यह अध्यात्म तीन भेद हैं । सो हरण्यगर्भ भगवानही समष्टि जाग्रत विषे स्थित हुआ अधिदैव रूप विराट कहा जाताहै, । और व्यष्टि स्थूल शरीरोंके अभिमानसे सो हिरण्यगर्भ भगवान विश्व संज्ञाको प्राप्त होताहै ॥ विविध प्रकारसे विराजमान होनेसेभी विराट संज्ञाको प्राप्त होताहै ॥ और समष्टि सूक्ष्ममें अहं अभिमान करता हुआ सो आत्मा-देव हिरण्यगर्भ संज्ञाको प्राप्त होताहै, । तेजः प्रधान व्यष्टि-सूक्ष्मशरीरके अभिमानसे सो आत्मादेव तैजस संज्ञाको प्राप्त होताहै ॥ और केवल अज्ञानमें अहं अभिमान करता हुआ सो आत्मादेव निर्विक्षेप साक्षीरूप ज्ञानवाला होनेसे प्राज्ञ संज्ञाको प्राप्त होताहै, तथा सर्व विश्वका कारण होनेसे ईश्वर संज्ञाको प्राप्त होताहै ॥ हे देवतावो ! जो आत्मादेव अधिदैव मर्यादामें हिरण्यगर्भ इस नामसे कथन कियाहै, सो हिरण्यगर्भरूप आत्मादेव इस सर्व जगतमें अहं अभिमानको प्राप्त होताहै ॥ और जो कारण उपाधिवाला आत्मादेव अधिदैव ईश्वररूपसे कथन कियाहै, सोई आत्मादेव

इस सर्व जगतको अपनी अपनी मर्यादामें स्थापन करता है, इस कारणसे वेदवेत्ता पुरुष तिस आत्मादेवको नियंता अन्तर्यामी इस नामसे कथन करते हैं ॥ हे देवतावो ! जैसे कारण उपाधिवाला ईश्वर अध्यात्म, अधिदैव, अधिभूत इन तीन रूपसे स्थित होताहै, तैसे यह कार्य उपाधिवाला हिरण्यगर्भ नामा जीवभी सर्वत्र व्यापक होनेसे अध्यात्म, अधिदैव अधिभूत इन तीन रूपसे स्थित होताहै, और जैसे सो ईश्वर स्वयंज्योति आनन्दस्वरूप है, तथा सर्वत्र व्यापक है, तैसे यह हिरण्यगर्भभी स्वयंज्योति आनन्दस्वरूप है, तथा सर्वत्र व्यापक है, यातें यह हिरण्यगर्भ भी ईश्वरस्वरूपही है ॥ यद्यपि यह हिरण्यगर्भ क्रियाशक्तिरूप प्राणवाला है, तथा ज्ञानशक्तिरूप बुद्धिवाला है, ईश्वर तिस प्राणबुद्धिरूप उपाधि-वाला है नहीं, यातें तिन दोनोंकी विलक्षणताभी सम्भव है. तथापि यह हिरण्यगर्भ भगवान स्वतः सिद्ध ज्ञानसे अपने स्वरूपको सर्व उपाधियोंसे रहित निर्विशेष स्वरूपही मानताहै यातें इस हिरण्यगर्भमें ईश्वररूपता संभव हो सकता है ॥ हे देवतावो ! जो चेतन मायारूप उपाधिके संबन्धसे ईश्वर संज्ञाको प्राप्त होताहै, सोई ईश्वररूप चेतनही ज्ञानशक्तिरूप तथा क्रिया शक्तिरूप उपाधिवाला हुआ हिरण्यगर्भ कहा जाताहै। जिस हिरण्यगर्भमें मायाका किया हुआ अनेक प्रकारका विक्षेप प्रतीत होता है, ऐसा हिरण्यगर्भ भी ईश्वर

रूपही है ॥ अब दोनों उपाधियोंके अभेदद्वाराभी तिन दोनों-
का अभेद निरूपण करतेहैं ॥ हे देवतावो ! सो मायाही
आत्माको आवरण करती हुई अविद्या कही जातीहै, जिस
अविद्यारूप मायासे ज्ञान,क्रिया दोनोंकी उत्पत्ति होतीहै,तिन
दोनोंकी उत्पत्तिसे इस सर्व जगतकी उत्पत्ति होतीहै, काहेसे
पंच भूतोंसहित प्राण, बुद्धि आदिक जितने की पदार्थ विश्व
शब्दसे कथन किये जातेहैं,सो सर्व पदार्थ ज्ञानक्रियाशक्ति,
रूपही हैं,ज्ञानको अथवा क्रियाको नहीं उत्पन्न करता हुआ
कोईभी पदार्थ देखनेमें आता नहीं,और सर्व परिणामोंमें
अनुगत जो सामान्य है, तिस सामान्यको पूर्व अविद्या
इस नामसे कथन करि आये हैं,सो मायारूप अविद्या ही
ईश्वरकी उपाधि है,और तिस सामान्यरूप मायाका कार्यरूप
जो ज्ञान क्रिया है,तिस ज्ञानक्रियामें अनुगत जो कार्यशक्ति
है, सो कार्यशक्ति हिरण्यगर्भकी उपाधि है ॥ इस लोकमें जैसे
मृत्तिकादिक कारणोंका तथा घटादिक कार्योंका अभेदही
देखनेमें आताहै.तैसे मायारूप ईश्वरकी उपाधिका
तथा कार्यशक्तिरूप हिरण्यगर्भके उपाधिका अभेदही
सिद्ध होताहै, तिन उपाधियोंके अभेद हुए तिस ईश्वर
हिरण्यगर्भकाभी अभेदही सिद्ध होताहै ॥ शंका ॥ हे भग-
वन् ! इस पूर्व उक्तरीतिसे हिरण्यगर्भकी परमात्माके साथ
एकता सिद्ध हुएभी व्यष्टिजीवोंकी तिस परमात्माके साथ

एकता किस प्रकार सिद्ध होवैगी ॥ समाधान ॥ हे देवतावो! तिस हिरण्यगर्भका उपाधिरूप जो समष्टि लिंग शरीर है, तिस लिंगशरीके तुल्य है रूप जिसका तथा नाना संस्कारोंका आश्रय होनेसे विचित्र है रूप जिसका, तथा मायासे है उत्पत्ति जिसकी ऐसा जो अनेक प्रकारका लिंगशरीरहै, सो लिंगशरीर इन व्यष्टिजीवोंका उपाधिरूप है। और जैसे वट वृक्षोंमें स्थित, तथा वटबीजोंमें स्थित, जो जनकतारूप सामान्य है, सो जनकतारूप सामान्य एक एक व्यक्तिमें परिपूर्णतारूपसे वर्तताहै; तैसे यह अविद्यारूप मायाभी हिरण्यगर्भके समष्टि सूक्ष्म उपाधिमें तथा जीवोंके ज्ञानक्रियाशक्तिरूप व्यष्टि उपाधिमें परिपूर्णतारूपसे वर्ततीहै ॥ जैसे मृत्तिका अपने घट पियाला आदिक सर्व कार्योंमें अनुगत होकर रहतीहै ॥ तैसे यह ईश्वरकी उपाधिरूप मायाभी अधिदैव, अधिभूतरूप बाह्य प्रपंचमें तथा अध्यात्मरूप अन्तर प्रपंचमें अनुगत होकर रहती है ॥ इस कहनेसे यह अर्थ सिद्ध हुआ कि व्यष्टि समष्टिरूप सर्व उपाधियोंका सर्व शक्तिसम्पन्न मायाके साथ तादात्म्य सम्बन्ध है, यातें सो सर्व उपाधियां सर्व रूप हैं, इस कारण जैसे उपाधियोंके अभेदद्वारा तिस हिरण्यगर्भका परमात्माके साथ अभेद है। तैसे तिन व्यष्टिजीवोंकाभी तिस परमात्माके साथ अभेदही है ॥ तात्पर्य यह ॥ अविद्यारूप उपाधिमें तथा

उपहित चेतन आत्मामें जब भेद सिद्ध नहीं हुआ तब व्यष्टिजीवोंमें तथा तिस जीवकी कार्यरूप उपाधिमें सो भेद किस निमित्त (करके) से सिद्ध होगा, किन्तु किसीभी निमित्त (करके) से भेद सम्भव नहीं ॥ शंका ॥ हे भगवन् ! जो व्यष्टि समष्टिका अभेदही होवा तो व्यष्टिविषे परिछिन्नता किस निमित्त प्रतीत होवीहै ॥ समाधान ॥ हे देवतावो ! जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति इन तीन अवस्थावोंको प्राप्त होनेहारे जो जरायुज, अंडज, स्वेदज, उद्भिज्ज यह चार प्रकारके जीव हैं, सो सर्व जीव वास्तवमें हिरण्यगर्भरूप ईश्वरके तुल्यरूपवाले हुए यद्यपि महान पदार्थोंसेभी अत्यन्त महान है, तथापि परिछिन्न बुद्धि आदिकोंके योगसे सो जीव परिछिन्न हुएकी नांई प्रतीत होतेहैं, जैसे वास्तवमें परिपूर्ण हुआभी आकाश घट मठादिक उपाधियोंके सम्बन्धसे घटाकाश, मठाकाश इत्यादिक परिच्छन्न रूपसे प्रतीत होते हैं ॥ हे देवतावो ! जो सत, चित, आनन्दस्वरूप आत्मा हमने पूर्व तुम्हारे प्रति कथन किया था, सोई आत्मादेव हिरण्यगर्भरूप होकर स्थूल विराटको उत्पन्न करताहै, तथा अग्नि आदिक देवतावोंसहित वागादिक इन्द्रियोंको उत्पन्न करताहै, तथा आकाशादिक पंचभूतोंको उत्पन्न करताहै, तथा अन्नमयादिक पंचकोशोंको उत्पन्न करताहै. इस प्रकार सर्व जगतको उत्पन्न करके सो आत्मादेवही जीव रूपसे.

इस जगतमें प्रवेश करताभया, तिस प्रवेशके अनन्तर तिन देहादिकोंमें अहं, मम अभिमानरूप कंचुकसे युक्त हुआ, सो स्वयंज्योति आनन्दस्वरूप आत्मा वास्तवमें सर्वज्ञ हुआभी मूढकी नाईं स्थित होता भया ॥ तिसके अनन्तर स्थूलादिक तीन शरीरोंमें वर्तमान जो नानाप्रकारके व्यवहार हैं, तिन व्यवहारोंको साक्षीरूपसे देखताहुआभी तिन व्यवहारोंको अपने आत्माविषे मानता है ॥ हे देवतावो ! वास्तवमें जीव ईश्वरादिकभेदसे रहित जो आत्मादेव है, सो आत्मादेवमें जो यह जीवईश्वरादिक भेद प्रतीत होतेहैं; तिस भेदमें यह मायाही कारण है ॥ कैसी है सो माया चेतनके अधीन है, तथा अनादि है, तथा अधिष्ठान ब्रह्मकी सत्तासे भिन्न सत्तासे रहित है, तथा वास्तवमें तुच्छरूप है, ऐसी मिथ्याभूत मायासे प्रतीत भया जो जीव ईश्वरादिक भेद है, सो भेद प्रपंचभी मिथ्याही है ॥ हे देवतावो ! सो भेद इस तुच्छ रूपमायाका कार्य है, इस कारण इस आत्मादेवमें किंचितमात्रभी भेद है नहीं, यातें वेदवेत्ता पुरुष इस आत्मादेवको अद्वितीय इस नामसे कथन करतेहैं ॥ हे देवतावो ! जैसे स्वप्न अवस्थामें स्वप्नद्रष्टा पुरुषने देखा जो जीव ईश्वरादिकरूप अनेक प्रकारका भेद तिस कल्पित भेदसे तिस स्वप्नद्रष्टा पुरुषका किंचितमात्रभी भेद होता नहीं, तैसे मायाकल्पित भेदसे तिस अद्वितीय आत्मामें किंचितमात्रभी द्वैत-

भावकी प्राप्ति होती नहीं ॥ हे देवतावो ! इस आत्माके जो सत, चित, आनन्दस्वरूप हैं, तिन सत्यादिक स्वरूपोंका तो परस्पर भेद सम्भव नहीं, तथा पूर्व उक्तरीतिसे कल्पित प्रपंचकाभी तिस आत्मामें भेदसम्भव नहीं इस कारणसे सो आत्मादेव अद्वितीयरूप है ॥ तथा अद्वितीयरूप होनेसे सत्यस्वरूप है ॥ हे देवतावो ! किसीभी वादीने सत्ताका नाश अंगीकार किया नहीं, किन्तु सर्व वादीने तिस सत्ताको नाशसे रहित माना है हे देवतावो । इसलोकमें जो जो पदार्थ सत्य होतेहैं, सो सत्यपदार्थ अपनेमें कल्पित मिथ्या पदार्थोंसे वंधाय मान होते नहीं, जैसे एकही रज्जुमें दोषयुक्त अनेकद्रष्टापुरुषोंने कल्पना किये जो अनेक सर्प हैं, तिन अनेकमिथ्यासर्पोंसे सो सत्यरज्जु वंधायमान होता नहीं, तैसे सो सत्य आत्माभी अपनेमें कल्पित मिथ्या जगतसे वंधायमान होता नहीं इस कारणसे वेदवेत्तापुरुषोंने तिस सत्य आत्माको मुक्त इस नामसे कथन किया है ॥ इति ॥

सम्पूर्ण वेदान्तका संक्षेप प्रयोजन (आशय) निरूपण ।

अहं अज्ञः इस प्रकारके अनुभवका विषय जो अज्ञानरूप माया है, तिस अज्ञानरूप मायाको वेदवेत्ता पुरुष कारणशरीर इस नामसे कथन करतेहैं, तिस कारण शरीररूप मायासे सूक्ष्म शरीर, स्थूल शरीर, इस भेदसे दो प्रकारका

दृश्य प्रपंच उत्पन्न होताहै, कैसा है सो दृश्यप्रपंच ? भूत, भौतिकरूप है, तथा अधिदैव, अध्यात्म, अधिभूत, स्वरूप है, तहां जाग्रत प्रपंचका नाम स्थूल है, और स्वप्न प्रपंचका नाम सूक्ष्म है, और मायारूप अविद्याका नाम सुषुप्ति है । तिन स्थूल सूक्ष्म कारण शरीरोंको अधिकारी पुरुषोंको परित्याग करना योग्य है । स्थूल, सूक्ष्म, कारण इन तीन शरीरोंसे परे जो वस्तु है, तिस वस्तुको वेदवेत्ता पुरुष तुरीय इस नामसे कथन करतेहैं, सो तुरीयभी ओत, अनुज्ञाता, अनुज्ञा, अविकल्प इन भेदोंसे चार प्रकारका होता है ॥ अधिदैवरूप साक्षी आत्माकी यह ओतादिक चार अवस्था हैं, तिन ओतादिक अवस्थावोंकी प्राप्तिमें स्थूल सूक्ष्म कारण इन तीन शरीरोंका अभिमान प्रतिबंधक है,तिस देहाभिमानके निवृत्ति हुए यह विद्वान पुरुष समाधिसे व्युत्थान कालमें बाह्य अन्तर विश्वको ब्रह्मरूपसे अनुभव करता है, तिस व्युत्थान कालमें सर्व विश्वको प्रकाश करने-हारा जो चैतन्य है, तिस चैतन्यको वेदवेत्ता पुरुष ओत इस नामसे कथन करतेहैं । ध्याता, ध्यान, ध्येय इन त्रिपुटीसे युक्त जो सविकल्प समाधिहै, तिस सविकल्प समाधिमें स्थित हुआ यह विद्वान पुरुष इस सर्व विश्वको ब्रह्मरूपसे देखता है, तिस सविकल्प समाधि कालमें जो चैतन्य इस सर्व विश्वको सत्ताकी प्राप्ति करताहै, तिस चैतन्यको वेदवेत्ता पुरुष अनु-ज्ञाता इस नामसे कथन करते हैं । जिस निर्विकल्प समाधिमें

स्थित हुआ यह विद्वान पुरुष ध्याता, ध्यान, ध्येय इत्यादिक सर्व त्रिपुटीका परित्याग करके सर्व जगतकी सत्ताको आकर्षण करने हारे जिस चैतन्यरूप आत्माको अनुभव करताहै, तिस चैतन्य स्वरूप आत्माको वेदवेत्ता पुरुष अनुज्ञा इस नामसे कहतेहैं । और जिस कालमें ब्रह्मज्ञानरूप अग्निसे इस संसार दुःखरूप शूलका मूलभूत अज्ञान नाशको प्राप्त होताहै, तथा मनवाणीका अविषयरूप जो स्वयंज्योति आनन्द स्वरूप अद्वितीय आत्मा है, तिस अद्वितीय आत्माको यह विद्वान् पुरुष अविषयतारूपसे देखता हुआभी, विषयतारूपसे देखता नहीं, तथा यह मैं हूँ यह दूसरा है इत्यादिक भेदकोभी देखता नहीं, तथा तिस भेदके अभावकोभी नहीं देखता, तथा मैं जीता हूँ,मैं मरा हूँ इत्यादिक विशेषोंकोभी देखता नहीं, तिस कालमें स्थित चैतन्यस्वरूप आत्माको वेदवेत्ता पुरुष अविकल्प इस नामसे कथन करतेहैं ॥ जैसे जाग्रत,स्वप्न,सुषुप्ति यह तीनों अवस्था भेददोषसे युक्त हैं, अतः अधिकारी पुरुषोंको सो जाग्रतआदिक अवस्था परित्याग करना योग्य है, तैसे इस तुरीय आत्माके ओत, अनुज्ञाता,अनुज्ञा यह तीन रूपभी तिस भेदरूप दोषसे युक्त हैं, यातें अधिकारी पुरुषको सो ओतादिक तीन रूपभी परित्याग करना योग्य है ॥ और तिस तुरीय आत्माका जो चतुर्थ अविकल्प स्वरूप है, सो अविकल्प स्वरूप मनवाणीका अविषय है, तथा द्वैत प्रपंचसे रहित आनन्दस्वरूप है, तथा इस शरीररूप द्वारवतीपुरीमें स्थित है,

तथा सर्व आश्रयोंसे रहित है,तथा सर्व भेदसे रहित है, तथा मायासे रहित स्वयंज्योतिरूप है, तथा सर्व प्राणियोंके हृदय-कमलमें सर्वदा साक्षीरूपसे भासमान है, ऐसे अविकल्प रूप आत्मादेवको यह अधिकारी पुरुष घटादिक दृश्य पदार्थोंकी नांई इदंतारूपसे नहीं देखता हुआ "अहं अस्मि" इस प्रकार प्रत्यकरूपसे देखें, यही परम फलरूप ज्ञानका स्वरूप है, और यह अविकल्प रूप आत्माका ज्ञानही इस शास्त्रका प्रयोजन है ॥ अब इसी अर्थके स्पष्ट करनेवास्ते प्रथम तिस अविकल्प आत्माके ज्ञानमें असंभावनाको दृष्टान्तसे निवृत्त करतेहैं जैसे आकाशमें गंधर्वनगर कल्पित होताहै, तैसे इस आनन्दस्वरूप आत्मामें यह मायादिक द्वैतप्रपंचभी कल्पित है, और जैसे निरवयव आकाशका कल्पित जो कोई एकदेश है, तिस एक देशमें आकाशके वास्तव स्वरूपके अज्ञानसे तिस गंधर्व-नगरकी कल्पना होती है, तैसे वास्तवमें निरवयव आत्माका कल्पित जो कोई एक देश है, तिस एक देशमें तिस आत्मा-के वास्तव स्वरूपके अज्ञानसे मायादिक प्रपंचकी कल्पना होतीहै ॥ जैसे तिस आकाशके वास्तवस्वरूपके ज्ञानसे सो गंधर्वनगर लयभावको प्राप्त होताहै, तैसे तिस आत्माके वास्तव स्वरूपके ज्ञानसे यह दृश्यप्रपंच लयभावको प्राप्त होताहै ॥ जैसे तिस आकाशके ज्ञानसे केवल गंधर्वनगरकीही निवृत्ति नहीं होती, किन्तु तिस गंधर्वनगरका कारणरूप

जो अज्ञान है, तिस अज्ञानकीभी निवृत्ति होतीहै, तैसे इस आनन्दस्वरूप आत्माके ज्ञानसे केवल इस कार्यप्रपंचकीही निवृत्ति नहीं होती, किन्तु इस कार्यप्रपंचका कारणरूप जो अज्ञान है तिस अज्ञानकीभी निवृत्ति होतीहै ॥ अपरोक्ष भ्रमकी निवृत्ति करनेवास्ते अधिष्ठानका अपरोक्ष ज्ञानही अपेक्षित होवाहै, परोक्ष ज्ञानसे अपरोक्ष भ्रमकी निवृत्ति होती नहीं ॥ जैसे पूर्वादिक दिशावोंमें जो पश्चिमादिक दिशावोंका भ्रम होताहै । वो तिस अपरोक्ष भ्रमकी निवृत्ति पूर्वादिक दिशावोंके परोक्ष ज्ञानसे होती नहीं, किन्तु तिन पूर्वादिक दिशावोंके अपरोक्ष ज्ञानसेही तिस अपरोक्ष भ्रमकी निवृत्ति होतीहै, तैसे इस आत्मादेवके परोक्ष ज्ञानसे इस अपरोक्ष रूप संसारभ्रमकी निवृत्ति होती नहीं, किन्तु इस आत्मादेवके अपरोक्ष ज्ञानसेही इस संसार भ्रमकी निवृत्ति होतीहै ॥ और हे शिष्य ! जैसे एकही स्वप्नद्रष्टापुरुष निद्रादोषके वशसे अनेक प्रकारका हुआ प्रतीत होताहै, तैसे यह एकही आत्मादेव अपने स्वरूपके अज्ञानसे अनेक प्रकारका हुआ प्रतीत होता है ॥ शंका ॥ हे भगवन् ! जैसे मध्याह्नके सूर्यमें अन्धकारकी स्थिति सम्भव नहीं, तैसे भासमान स्वयंज्योति आत्मामें इस अज्ञानकी स्थिति सम्भव नहीं ॥ समाधान ॥ हे शिष्य ! यह अत्यन्त दुर्घट है, तथा दुस्तर है, तथा इन जीवोंको अत्यन्त दुःखकी प्राप्ति करनेवाली है, तथा इस संसाररूप

शूलकी जननी है, ऐसी मायाको शास्त्रवेत्ता पुरुष "अघटितघटनापटीयसी," इस नामसे कथन करतेहैं, तिस अपने स्वभावके बलसेही यह माया तिस स्वयंज्योति आत्मामें स्थित होती है ॥ हे शिष्य ! जैसे इस लोकमें वृश्चिकी अपने गर्भसे नाशको प्राप्त होतीहै, तैसे सर्व भेदसे रहित इस आनन्द स्वरूप आत्माको विषय करनेहारा जो महावाक्यजन्य अन्तःकरणकी वृत्तिरूप ज्ञान है, तिस ज्ञानरूप गर्भसेही यह मायारूप वृश्चिकी नाशको प्राप्त होतीहै ॥ हे शिष्य ! यह अविद्यारूप माया आनन्द स्वरूप-साक्षी आत्मासे कदाचित्भी भयको प्राप्त होती नहीं, किन्तु महावाक्यसे उत्पन्न भई जो अन्तःकरणकी वृत्ति है, तिस वृत्तिमें स्थित तिस साक्षीआत्माके प्रतिबिम्बसेही यह माया सर्वदा भयको प्राप्त होतीहै ॥ तात्पर्य यह ॥ जैसे काष्ठोंको प्रकाश करनेहारा भी अग्नि कुठारादिरूप लोहमें स्थित होकर तिन काष्ठोंको भेदन करता है, तैसे यह आत्मादेव अपने साक्षीरूपसे तिस मायाका साधक हुआभी महावाक्यजन्य अन्तःकरणकी वृत्तिमें स्थित होकर तिस मायाका बाधक होता है, इस कारणसेही वेदवेत्ता पुरुषोंने इस अनादि मायाके नाश करनेवास्ते एक महावाक्यजन्य आत्मज्ञान रूप उपायही कथन किया है, तिस आत्मज्ञानके विना दूसरा कोई उपाय है नहीं ॥ हे शिष्य ! जैसे इस लोकमें मनुष्योंके शरीरमें प्रवेश करके अनेक प्रकारके दुःखोंकी

प्राप्ति करनेवाला जो कोई पिशाच है, सो पिशाच किसी महानमन्त्रसेही निवृत्त होताहै, तैसे इन जीवोंको जन्ममरणादिक अनेक दुःखोंकी प्राप्ति करनेहारी जो यह मायारूप पिशाची है, सो मायारूप पिशाची ब्रह्मात्मज्ञानरूप महामंत्र से (करके) ही नाशको प्राप्त होती है, तिस आत्मज्ञानके विना दूसरे किसी उपायसे यह मायारूप पिशाची नाशको प्राप्त होती नहीं ॥ यातें जो मुमुक्षु जन शांति आदिक गुणोंसे युक्त हैं, तथा चित्तकी एकाग्रतासे युक्त हैं, तथा तिस मायारूप पिशाचीसे भयको प्राप्त हुये हैं, सो मुमुक्षु जन ब्रह्मवेत्ता गुरुके समीप जाकर इस आत्मज्ञानरूप मन्त्रको सम्पादन करें, ॥ यह आत्मज्ञानही इस वेदान्तशास्त्रका प्रयोजन है ॥ हे शिष्य ! आत्मज्ञानसे भिन्न उपायोंके करनेमें पुरुषोंको पुनः पुनः संसारकी प्राप्ति होतीहै, इस कारण अधिकारी पुरुषोंको आत्मज्ञानसे भिन्न कोईभी उपाय करना योग्य नहीं है ॥ इति श्रीनृसिंहपूर्वोत्तर तापनीय उपनिषद्के अर्थका सार भाषा समाप्त हुआ ॥ ॐशांतिः शांतिः शांतिः ॥

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ॥
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥
ॐशांतिः शांतिः शांतिः ॥

ॐ परमात्मने नमः ।

अथर्ववेदीय ईशावास्य उपनिषदके भाष्यके अर्थसे स्थावरजंगमरूप सर्वजगतमें अभिन्ननिमित्त उपादानकारणरूप ईश्वरकी परिपूर्णता, तथा उसके साक्षात्कार करनेका उपाय और फल निरूपण ।

सर्व जगतरूप परमात्मा देवही वेदान्तशास्त्रमें प्रतिपादन किया गया है, इस प्रकार सर्व जगत्को ईश्वररूप देखकर वेदवेत्ता पुरुष अपने शिष्योंके प्रति इस प्रकारका उपदेश करते भये हैं ॥ हे शिष्यो ! यह स्थावर, जंगमरूप सर्व जगत अभिन्ननिमित्त उपादान कारणरूप ईश्वरने व्याप्त किया है ॥ अब इसी अर्थको अनेक दृष्टान्तोंसे निरूपण करतेहैं ॥ जैसे उपादानकारणरूप मृत्तिका घट प्यालादिक कार्यको व्याप्त करताहै, तैसे उपादानकारणरूप ईश्वरने यह सर्व जगत् व्याप्त किया है, और जैसे राजाने दृष्टिद्वारा अपने सर्व नगरादिकको व्याप्त किया है, तैसे निमित्तकारणरूप ईश्वरने यह सर्व जगत व्याप्त किया और जैसे मनुष्योंका शरीर बाह्यसे वस्त्रोंसे व्याप्त होताहै, तैसे यह सर्व जगत विभु ईश्वरने व्याप्त किया है, और जैसे सुगन्धवाले पुष्प अपने सुगंधवाले सूक्ष्म अवयवोंसे शीतल जलको व्याप्त करते हुए तिस जलमें रमणीयता प्राप्त करते हैं, तैसे यह

ईश्वरभी अपने सत्तास्फूर्तिसे इस सर्व जगतको व्याप्त करता हुआ इस जगतमें रमणीयता प्राप्त करताहै, और जैसे प्रवृत्तिकी कारणरूप वासनावोंने इन जीवोंका मन व्याप्त किया है, तैसे अन्तर्यामी ईश्वरने यह सर्व जगत् व्याप्त किया हैं, इस कारण अपने तथा पराये जितने कि स्त्री पुत्र धनादिक पदार्थ हैं सो सर्व पदार्थ पूर्व उक्त रीतिसे ईश्वररूपही हैं, तिस ईश्वरसे भिन्न सत्तावाला कोईभी पदार्थ नहीं है यातें सर्व पदार्थ ईश्वरकेही हैं जीवोंका कोईभी पदार्थ नहीं है जैसे गंधर्व-नगर आकाशरूप होनेसे तिस आकाशकाही है, वैसे यह सर्व जगतभी ईश्वररूप होनेसे तिस ईश्वरकाही है, और जैसे राजादिक महानपुरुषोंमें तथा तिनोंके धनादिक पदार्थोंमें बुद्धि-मान पुरुष स्वत्व दृष्टि करता नहीं, अपनी इच्छा पूर्वक जो तिन पदार्थोंका ग्रहण त्याग करना है, यही तिन पदार्थोंमें स्वत्व दृष्टि है ॥ तैसे तिस स्वत्व दृष्टिसे रहित हुआ यह पुरुष यह स्त्री पुत्र धनादिक पदार्थ ईश्वररूपही है, इस प्रकार तिन सर्व पदार्थोंको ईश्वररूप जानकर अथवा यह सर्व पदार्थ तिस ईश्वरकेही हैं, इस प्रकार तिन सर्व पदार्थोंको ईश्वरका जानकर तिन स्त्री पुत्र धनादिक पदार्थोंके कामनाका परित्याग करै ॥ तहां यह सर्व जगत् ईश्वररूप है, इस प्रथम दृष्टिमें तो तिस सर्व प्रपंचके बाधसे तिस स्वत्व दृष्टिके परित्याग हुए परिशेषसे निर्गुण ब्रह्मका ज्ञानरूप फल सिद्ध होताहै ॥ और यह सर्व

जगत् ईश्वरका है, इस दूसरी दृष्टिमें तो सगुण ब्रह्मका ज्ञान-रूप फल सिद्धि होताहै ॥ अब इसी अर्थके स्पष्ट करनेवास्ते दो दृष्टान्त कथन करतेहैं, जैसे मिथ्या गंधर्वनगरमें स्वत्वकी आशा पुरुषोंको दुःखकी प्राप्ति करती है, और जैसे महारा-जाके स्त्री आदिक पदार्थोंमें स्वत्वकी आशा पुरुषोंको दुःख-कीही प्राप्ति करतीहै, तैसे अपने मानेहुए स्त्री पुत्र धनादिक पदार्थोंको आशाभी पुरुषोंको दुःखकीही प्राप्ति करती है। इस कारण अधिकारी पुरुषोंको सर्व कामनावोंका परित्याग करके सर्वका अधिष्ठानरूप ईश्वरहीको अपने आत्मारूपसे देखना चाहिये, अथवा सर्व जगतका प्रेरकरूपसे तिस ईश्वरका आराधन करना चाहिये ॥ हे शिष्यो ! चित्त शुद्धके अभाव हुए जो कदाचित तुमको तिस सगुण ब्रह्मज्ञानमें तथा निर्गुण ब्रह्मज्ञानमें अधिकार नहीं होवै, तौभी तुम यह स्त्री पुत्र धनादिक पदार्थ ईश्वरकेही हैं, हमारे नहीं हैं, इस प्रकार जानकर कर्मोंके फलरूप लोकोंका परित्याग करो, तिसके अनन्तर अपने वर्णाश्रमके अनुसार तुम शरीर, मन, वाणीसे निष्काम कर्मोंको करो । इस प्रकार जब तुम निष्काम कर्मोंको करोगे, तब इस जन्ममें अथवा दूसरे जन्ममें तुम्हारा अन्तःकरण शुद्ध होगा, तिस अन्तःकरणकी शुद्धिके अनन्तर तुमको ब्रह्मज्ञानकी प्राप्ति होगी। तिस ब्रह्मज्ञानके प्रभावसे तुम्हारे जन्म मरणादिक सर्व दुःखोंकी निवृत्ति होवैगी ॥

अब इसी अर्थके स्पष्ट करनेवास्ते तीन मार्गोंका-निरूपण करते हैं ॥ हे शिष्यो ! स्वर्ग, ब्रह्मलोक रूप जो अभ्युदय है, तथा मोक्षरूप जो निःश्रेयस है, तिन अभ्युदयनिश्रेयसकी प्राप्ति करनेहारे तीन प्रकारके मार्ग होते हैं:—वहां अग्निहोत्रादिकरूप इष्टकर्मोंको तथा वापी, कूप, तड़ागादिरूप पूर्त कर्मोंको करने हारे जो पुरुष हैं, तिन कर्मीपुरुषोंको स्वर्गरूप अभ्युदयकी प्राप्ति करनेहारा पितृयान नामा दक्षिण मार्ग है, और अहंग्रहादिक उपासनावोंको करनेहारे जो पुरुष हैं, तिन उपासक पुरुषोंको ब्रह्मलोकरूप अभ्युदयकी प्राप्ति करनेहारा देवयाननामा उत्तर मार्ग है, और श्रवणादिक साधनोंसे सम्पन्न जो निष्काम पुरुष हैं, तिन निष्काम पुरुषोंको मोक्षरूप निःश्रेयसकी प्राप्ति करनेहारा ब्रह्मज्ञानरूप मार्ग है ॥ इन तीन मार्गोंसे भिन्न दूसरा कोईभी मार्ग इन जीवोंको सुखकी प्राप्ति करने हारा नहीं है ॥ हे शिष्यो ! पितृयान, देवयान, ब्रह्मज्ञान, इन तीन मार्गोंका परित्याग करके जो पुरुष केवल पापकर्मोंकोही करतेहैं, सो अल्पबुद्धिवाले पुरुष सर्वदा दुःखोंकोही प्राप्त होतेहैं ॥ अब उक्त तीन मार्गोंमें तीसरे ब्रह्मज्ञानरूप मार्गकी श्रेष्ठता वर्णन करतेहैं ॥ हे शिष्यो ! स्वर्गलोकमें तथा ब्रह्मलोकमें स्थित जो देवता हैं, ।देवतावोंमेंभी जो देवता ब्रह्मज्ञानसे रहित हैं, तिन अज्ञानी ...भी वास्तवमें किंचितमात्रभी सुख होता नहीं, क्योंकि

महान पुरुषोंका जो तिरस्कार करना है। सो तिरस्कारही तिन महान पुरुषोंका हनन है, यह वार्ता सर्वलोकमें प्रसिद्ध है, जो पुरुष सर्वसे महान आत्मादेवको नहीं जानताहै, सो अज्ञानी पुरुष तिस आत्मादेवका तिरस्काररूप हनन करतेहुए आत्म हत्यारे कहे जातेहैं, तिन आत्महत्यारे पुरुषोंको श्रुतिने संसाररूप दुःखकी प्राप्तिही कथन करीहै ॥ तहां श्रुति ॥ असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः । तांस्ते प्रेत्याभिगच्छंति येके चात्महनो जनाः ॥ अर्थ यह ॥ जो पुरुष अपने आत्मामेंही भली प्रकारसे रमण करतेहैं, तिन पुरुषोंका नाम सुरहै, ऐसे आत्माराम विद्वान पुरुष हैं, तिन विद्वान पुरुषोंसे भिन्न अज्ञानी पुरुषोंका नाम असुर है, तिन असुर पुरुषोंको प्राप्त होने योग्य जो शुभ अशुभ कर्मजन्य लोक हैं, तिन लोकोंका नाम असुर्य है ॥ सो असुर्य नामा लोक आत्माको आवरण करने हारे अज्ञानरूप अंधतमसे व्याप्त हैं, ऐसे असुर्य लोकोंको सो आत्महत्यारे पुरुष मरणके अनन्तर प्राप्त होतेहैं ॥ १ ॥ अब जिस आत्माके ज्ञानसे तिन असुर्यलोकोंकी प्राप्ति नहीं होतीहै, तिस आत्माका स्वरूप वर्णन करते हैं ॥ हे शिष्यो ! तिन असुर पुरुषोंसे अज्ञात यह आत्माका स्वरूप अत्यन्त आश्चर्यरूप है, क्योंकि यह आत्मादेव आप क्रियासे रहित हुआभी मनसेभी अधिक वेगवाला है ॥ तात्पर्य यह ॥

जिस जिस पदार्थको यह मन अपने संकल्पद्वारा प्राप्त होव है, तिस तिस पदार्थमें यह आत्मादेव तिस मनके गमनसे पूर्वह परिपूर्ण है, और यह आत्मादेव नेत्रादिक इन्द्रियां (करके) से अग म्य हुआभी ब्रह्मज्ञानसे गम्य होताहै, और यह आत्मादेव आ पर्वतकी नांई निश्चल हुआभी शीघ्र गमन करनेहारे वायु आदिकोंकोभी उल्लंघन करके आगे आत्मा है और तिस अन्तर्यामी आत्मादेवसे प्रेरित हुआही यह सूत्रात्मारूप वायु सर्व शरीरोंमें अग्निहोत्रादिक कर्मोंके करनेमें समर्थ होताहै, जिन मेघादिभावको प्राप्त हुई अग्निहोत्रकी आहुतियोंसे यह अनेक कर्मोंका फलरूप विश्व उत्पन्न होताहै, और सो आत्मादेव वास्तवसे सर्व क्रियासे रहित हुआभी सर्व क्रियावाला होताहै, और सो आत्मादेव अज्ञानी पुरुषोंको अत्यन्त दूर हुआभी विद्वान् पुरुषोंको अत्यन्त समीप है, तथा यह आत्मा इस दृश्य प्रपंचके अन्तर बाह्य परिपूर्ण है ॥ अब वर्णन किये हुए आत्माके ज्ञानका फल निरूपण करतेहैं ॥ हे शिष्यो! जो विवेकी पुरुष इस जीवित अवस्थामें ब्रह्मासे आदि लेकर पिपीलिका पर्यन्त सर्व शरीरोंको अपने आत्मास्वरूपमें कल्पितरूपसे देखता है, तथा तिन सर्व शरीरोंमें अपने आत्माको अनुगतरूपमें देखताहै, सो विवेकी पुरुष किंचितमात्र भी दुःखको प्राप्त होता नहीं ॥ हे शिष्यो ! जिस विद्वान पुरुषको आत्मज्ञानके प्रभावसे यह सर्व भूतप्राणी

आत्मभावको प्राप्त हुए हैं, तथा जिस विद्वान पुरुषने अधिष्ठान आत्माके एकत्व स्वभावको गुरु शास्त्रके उपदेशसे साक्षात्कार किया है, ऐसे विद्वान पुरुषको आवरणरूप मोहकीभी प्राप्ति होती नहीं, तथा विक्षेपरूप शोककीभी प्राप्ति होती नहीं ॥ हे शिष्यो ! जो अधिकारी पुरुष स्वयंप्रकाश आनन्दस्वरूपः ईश्वरको अपनेसे अभिन्नरूपसे साक्षात्कार करताहै, सो पुरुष सर्वत्र व्यापक आत्माकोही देखताहै कैसा है सो आत्मादेव, स्थूल, सूक्ष्म, कारण इन तीन शरीरोंसे रहित है, तथा निर्गुण निरवयव है, ऐसे आत्मादेवको ईश्वररूपसे जाननेहारा जो विद्वान पुरुष है सो विद्वान पुरुषही सोपाधिक दृष्टिसे आराधन करने योग्य ईश्वररूपभी होताहै, कैसा है सो ईश्वर, संकोचसे रहित दर्शन स्वभाववाला है, तथा सर्व मनके प्रवृत्तियोंके जाननेहारा सर्वज्ञ है, तथा अज्ञानादिक शत्रुवोंका तिरस्कार करनेहारा है, तथा सर्व कारणोंसे रहित होनेसे स्वयंभू रूप है। तथा लोकप्रसिद्ध सर्वकारणोंकाभी कारणरूप है ॥ हे शिष्यो ! ऐसे आत्मादेवके साक्षात्कारकी प्राप्तिमें चित्तकी शुद्धिद्वारा उपासनासहित कर्मही उपायरूप है। तिस कर्मको वेदवेत्ता पुरुष "असंभूति, अविद्या" इन दोनों नामसे कथन करतेहैं, और तिस उपासनाको वेदवेत्ता पुरुष "संभूति, विद्या" इन दोनों नामोंसे कथन करतेहैं । सो दोनों अन्तःकरणकी शुद्धिद्वारा

तथा एकाग्रतादारा आत्मज्ञानके कारण हैं ॥ अब कर्म, उपासना, इन दोनोंके समुच्चयविधान करनेवास्ते प्रथम उपासनासे रहित केवल कर्मोंकी निन्दा करतेहैं ॥ हे शिष्यो ! जो पुरुष केवल कर्मोंकोही करतेहैं, सो पुरुष तिन कर्मोंके प्रभावसे स्त्री पुत्रधनादिक पदार्थोंमें परम आसक्तिको प्राप्त होतेहैं,तथा स्वर्गादिक अनित्य लोकोंको प्राप्त होतेहैं, तथा नानाप्रकारके रागद्वेषसे युक्त होतेहैं,इस प्रकार संसारके सुखमें आसक्त हुए सो कर्मीपुरुष बारंबार जन्ममृत्युको प्राप्त होते हैं ॥ अब कर्मोंसे रहित केवल उपासनाकी निन्दा करतेहैं ॥ हे शिष्यो ! जो पुरुष केवल उपासनामेंही प्रीतिवाले होतेहैं, सो उपासक पुरुष तिस उपासनाके ऐश्वर्यवारूप फलमें आसक्त हुए तिन कर्मी पुरुषोंसेभी अधिक दारुण तमको प्राप्त होतेहैं, काहेतें जो पुरुष वेदविहित कर्मोंका परित्याग करके केवल उपासनामें तत्पर होतेहैं,तिन केवल उपासक पुरुषोंमें दो अनर्थके हेतु होतेहैं,तहां एक तो विहित कर्मोंका त्याग,और दूसरा नानाप्रकारके ऐश्वर्यमें आसक्ति,तिन दोनों दोषोंसे सो उपासक पुरुष तिन कर्मी पुरुषोंसेभी अधिक दुःखको प्राप्त होतेहैं,यातें अधिकारी पुरुषोंको वेदविहित कर्मोंसहित उपासनाकाही अनुष्ठान करना चाहिये, केवल कर्मोंका तथा केवल उपासनाका अनुष्ठान न करना चाहिये ॥ हे शिष्यो ! इस प्रकार कर्म उपासना इन दोनोंसे युक्त जो तत्वज्ञानार्थी

पुरुष हैं,सो अधिकारी पुरुष चित्तको एकाग्र करके "हिरण्यमयेन पात्रेण,"इत्यादिक मंत्रसे इस आदित्य भगवानकी पुनःपुनः प्रार्थना करै ॥ कैसा है सो आदित्य भगवान्,अधिकारी पुरुषोंको ब्रह्मलोककी प्राप्तिद्वारा क्रममुक्तिकी प्राप्ति वास्ते अपने मंडलमें छिद्ररूपमार्गकी प्राप्ति करनेहारा है ॥ हे शिष्यो ! कर्म उपासनावाला पुरुष 'हिरण्यमयेन पात्रेण' इस मंत्रसे तिस सूर्यभगवान्की प्रार्थना करताहै, तिस अधिकारी पुरुषको इस प्रकारकी शुभ बुद्धि प्राप्त होतीहै,जो आदित्यमंडलमें स्थित स्वयंज्योति पुरुष है, सो स्वयंज्योति पुरुषही हमारा वास्तवस्वरूप है, यह देह इन्द्रियादिरूप संघात मेरा वास्तवस्वरूप नहीं है, काहेसे यह देहादि रूपसंघात आकाशादिक पंचभूतोंका कार्यरूप है, तथा मरणके अनन्तर भस्मादि रूप परिणामको प्राप्त होवा है, ऐसा यह संघात प्रणवपदके वाच्यअर्थरूप आत्माको जाननेहारा मुझ विद्वान्' पुरुषका स्वरूप क्योंकर हो सकता है, तात्पर्य यहहै 'कि यह संघात हमारा स्वरूप नहीं है ॥ हे शिष्यो ! इस प्रकार कर्म उपासनासे युक्त तथा इस संघातसे वैराग्यवान जो अधिकारीपुरुष है, सो अधिकारी पुरुष अपने मनके प्रति इस प्रकारका वचन कहै, हे मन ! पूर्व जिस देशमें तथा जिस कालमें जिस जिस पदार्थको तू प्राप्त हुआ है, तिस तिस पदार्थको तू संकल्पसहित कर्मोंसेही प्राप्त हुआ है, संकल्पसहित कर्मोंके विना

किंचितमात्र पदार्थकीभी प्राप्ति होती नहीं, इस प्रकारका तिस संकल्पका तथा कर्मका माहात्म्य तुमने अभी किसवास्ते विस्मरण किया है, किन्तु इस कालमें तुमको तिस कर्म संकल्पका माहात्म्य विस्मरणकरना योग्य नहींहै, यातें वेद विहित कर्म तथा उपासनारूप संकल्प इन दोनोंके माहात्म्यको अभी स्मरण करके तू तिस कर्मसंकल्पमें तत्पर हो ॥ हे शिष्यो ! इस प्रकार मनके आगे प्रार्थना करताहुआ यह अधिकारी पुरुष जब 'हिरण्यमयेन पात्रेण' इस वैदिक मंत्रसे तथा लौकिक स्तोत्रोंसे तिस आदित्य भगवानकी प्रार्थना करताहै, तथा अग्निदेवताकी प्रार्थना करताहै, तब यह अधिकारी पुरुष सर्व पापोंसे रहित होकर क्रमसे ब्रह्मभावको प्राप्त होताहै॥अब तिस अग्निदेवताकी प्रार्थनाका निरूपण करतेहैं॥हे अग्निदेवता! आप हमको सर्व दुःखोंसे रहित, तथा प्रकाशमान ऐसे देवयानमार्गमें ब्रह्मलोककी प्राप्ति करो, तथा पापकी प्राप्ति करने हारे हमारे काम क्रोधादिक सर्व शत्रुवोंको नाश करो, और हे अग्निदेवता! आप हम सर्व जीवोंके चित्तके वृत्तान्तको जाननेहारे हो, यातें आपको हमारे कामक्रोधादिक सर्व शत्रु विदित हैं, इस प्रकार हम अधिकारी जनोंके कामक्रोधादिक सर्व शत्रुवोंको नाश करनेहारे, तथा हम अधिकारी जनोंको ब्रह्मलोककी प्राप्ति करनेहारे जो आप अग्निदेवता हो, तिस आपके उपकारके निवृत्त करनेमें हम समर्थ नहींहैं, यातें

हम अधिकारी जनोंका आपके तांई वारंवार नमस्कार होवै॥ अब सूर्यभगवान्‌की प्रार्थनाको कथन करनेहारा जो 'हिरण्मयेन पात्रेण' इत्यादिक मंत्र हैं तिन मंत्रोंका अर्थ निरूपण करतेहैं ॥ हे शिष्यो ! अधिकारी पुरुष इस प्रकार सूर्यभगवानकी प्रार्थना करै ॥ हे भगवन् ! तप्त सुवर्णके समान अत्यन्त प्रकाशमान जो यह आवरण करनेहारा पात्रके समान तेजोमंडल है, तिस तेजोमंडलरूप हिरण्मय पात्रसे आदित्य मंडलमें स्थित आप ब्रह्मका उपासक पुरुषोंके प्राप्तिका द्वारभूत छिद्ररूप मुख आवृत होरहा है, हे सर्व जगतके पोषण करनेहारे सूर्यभगवान् ! सत्यपरायणतारूप धर्मवाले हम अधिकारी जनोंको अपना दर्शन देकर इस संसारसे रक्षा करनेवास्ते तिस अपने मुखके आवरणको निवृत्त करो ॥ हे भगवन् ! स्मरणमात्रसे सर्व अनर्थोंको नष्ट करने हारा जो आपका वास्तव स्वरूप है, तिस आपके वास्तव स्वरूपको जिस प्रकार मैं अधिकारी जन साक्षात्कार करूँ, तिस प्रकार आप मेरे ऊपर अनुग्रह करो॥इस प्रकारसे अधिकारी पुरुष आदित्य भगवानकी प्रार्थना करै ॥ इति ईशोपनिषद्सारभाषा समाप्त हुआ ॥ ॐशांतिः शांतिः शांतिः ॥

चतुर्विंशोपनिषद्सारसंग्रहभाषाके चिन्तन तथा गुरुमुखसे श्रवण करनेका फल निरूपण ।

वेदवेत्ता पुरुष जिस परमात्माकी प्राप्तिवास्ते अपने शिष्योंके प्रति नानाप्रकारकी विद्या उपदेश करतेहैं, तिस

परमात्मादेवहीका प्रतिपादन उक्त संग्रहमें किया गया है, तिस परमात्मादेवसे भिन्न किसीभी अनात्म पदार्थका इस संग्रहमें प्रतिपादन नहीं किया गयाहै, इस कारण जो अधिकारी पुरुष ब्रह्मवेत्ता गुरुसे इस ग्रंथका पठन अथवा श्रवण करै तथा जो अधिकारी पुरुष दूसरे मुमुक्षु जनोंके प्रति इस ग्रंथका कथन करै तथा स्वयं निरन्तर चिन्तन करै ऐसे सर्व अधिकारी जन तिस परमात्मादेवको अपना आत्मारूप जानकर कार्य सहित अज्ञानकी निवृत्तिपूर्वक ब्रह्मभावकी प्राप्ति रूप मोक्षको प्राप्त होंगे । यातें मोक्षकी इच्छावान पुरुषोंको श्रद्धाभक्ति पूर्वक इस उपनिषदसार भाषाग्रन्थका अवश्य विचार करना चाहिये ॥

हरिः ॐतत्सव ब्रह्मार्पणमस्तु;

ॐतत्सद्ब्रह्मणे नमः

पञ्चदशीसे ॥ प्रकृतिका स्वरूप ॥

चिदानन्दरूप ब्रह्मके प्रतिबिंबसे युक्त तथा सत्व, रज, तम इन तीन गुणोंकी जो साम्य अवस्था है, तिसको प्रकृति कहते हैं; सो प्रकृति दो प्रकारकी है:—प्रकाशरूप सत्वगुणकी शुद्धि अर्थात् रजोगुण तमोगुणसे अमलीन, और सत्वगुणकी अशुद्धि; अर्थात् रजोगुण तमोगुणसे मलीन; तिन सत्वगुणकी शुद्धि तथा अशुद्धिके कारण, सो प्रकृति क्रमसे माया और अविद्या दो भांतिकी मानी गई है । तिनमें विशुद्ध सत्वगुण है प्रधान जिसमें सो [illegible]

और मलीन सत्वगुण है प्रधान जिसमें सो अविद्या है ॥ जिस निमित्त माया और अविद्याका भेद कहा है, तिस प्रयोजनको अब दिखातेहैं:--मायामें जो प्रतिबिंब चिदात्मा (ब्रह्म) का है सो मायाको स्वाधीन करके वर्तमान हुआ सर्वज्ञतादिक गुणयुक्त ईश्वर होताहै ॥

अविद्यामें प्रतिबिंब होकर स्थित चिदात्मा (ब्रह्म) तिस अविद्याके वश हुआ अल्पज्ञतादिक गुणयुक्त जीव होता है । सो जीव तिस उपाधिरूप अविद्याकी अशुद्धिके अधिक न्यून रूप विचित्रपनेसे, देव, तिर्यक् (पशु पक्षी) आदिक भेदसे विविध भांतिका होताहै । सो अविद्या कारण शरीर है, तिस कारण शरीरका अभिमानी जीव, प्राज्ञ कहलाता है

अपंचीकृत पञ्चमहाभूतोंकी उत्पत्ति ।

तिन प्राज्ञ जीवोंको पुण्यपापकर्मोंका फल सुखदुःख भोगने अर्थ, तमः प्रधान प्रकृतिसे अर्थात् तमोगुण है प्रधान जिसमें ऐसी जो जगतकी उपादानकारणरूप प्रकृति है तिससे ईशन (प्रेरणा) आदि शक्तिसे युक्त ईश्वरकी ईक्षणा (सृष्टिकी इच्छारूप आज्ञा) से आकाश, वायु, तेज, जल, पृथिवी पंचमहाभूत प्रकट हुए ॥ तिन पंचमहाभूतोंके सत्व अंशसे श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, रसना, घ्राण इस नामवाले पांच ज्ञान इन्द्रिय क्रमसे उत्पन्न होते हैं ॥ तात्पर्य यह है कि एक एक भूतमें स्थित सत्वगुणके अंशसे एक एक ज्ञान इंद्रिय उत्पन्न होतीहैं ॥ पांचो भूतोंके सत्वअंशसे अन्तःकरण

उत्पन्न होताहै जो वृत्तिके भेदसे दो प्रकारका है, विमर्श (संशय) रूप मन और निश्चयरूप बुद्धि है ॥

तिन पंचभूतोंके रजोगुण अंशसे वाक, पाणि, पाद, पायु (गुदा) उपस्थ (लिंग) इस नामवाले पांच कर्मइंद्रिय क्रमसे उपजे अर्थात् एक एक भूतके रजोगुण भागसे क्रमसे एक एक कर्म इंद्रिय उपजीं ॥ पंचभूतोंके मिलेहुए रजो अंशसे प्राण उत्पन्न हुआ जो वृत्तिके भेदसे पांच प्रकारका है *प्राण १ अपान २ समान ३ उदान ४ व्यान ५ यह पांच भेद हैं ॥

सूक्ष्म शरीरका स्वरूप ।

पंच ज्ञान इन्द्रिय, पंच कर्म इन्द्रिय, पंचप्राण, मन, बुद्धि इन सप्तदश (१७) तत्वोंसे सूक्ष्म शरीर होताहै तिसको लिंगशरीरभी कहतेहैं ॥ मलिन सत्वगुणकी प्रधानता युक्त जो अविद्या है, तिस उपाधिवाला प्राज्ञ (कारण शरीरका अभिमानी) जीव, लिंगशरीरमें तादात्म्य (अभेद) अभिमानसे युक्त तैजस संज्ञाको प्राप्त होताहै । और विशुद्ध सत्वगुणकी प्रधानता युक्त जो माया है, तिस उपाधिवाला परमेश्वर तिस लिंगशरीरमें "मैं हूँ" इस अभिमानसे युक्त हिर-

---

* उर्द्धगमन स्वभाववाला नासिकाके अग्रमें स्थायी वायु, प्राण है १ अधोगमन स्वभाववाला गुदा आदिमें स्थायी वायु अपान है २ शरीरके मध्यमें स्थित हुआ अन्नके रस आदिकका सारे शरीरमें नाडीद्वारा पहुंचावनेवाला वायु समान है ३ ऊर्द्ध चलनेके स्वभाववाला कण्ठमें स्थायी वायु उदान है ४ सर्वनाडियोंमें गमनके स्वभाववाला सर्व शरीरमें स्थायी वायु व्यान है ॥ ५ ॥

ण्यगर्भ (सूत्रात्मा) संज्ञाको प्राप्त होताहै, ननु, तैजस, हिरण्य गर्भ दोनोंको लिंगशरीरके अभिमानके समान हुए, तिन (तैजस, हिरण्यगर्भ) का परस्पर भेद किस निमित्तसे होता है तहां कहते हैं, तैजस, हिरण्यगर्भ, दोनोंका व्यष्टिभाव और समष्टिभाव होता है तिससेही तिनका भेद है ॥ तात्पर्य यह है कि ईश्वर (हिरण्यगर्भ) सर्व लिंगशरीर उपाधिवाले तैजस जीवोंका जो स्वात्मा (स्वरूप) हैं, तिसके साथ अपनी एकता-के ज्ञानसे समष्टि कहलाता है। तिस ईश्वरसे अन्य जो जीव हैं, सो तिस (सर्व स्वात्माकी एकता) के ज्ञानके अभावसे व्यष्टिशब्दसे कहेजातेहैं ॥

अथ पंचीकरणनिरूपण।

उक्त लिंगशरीरको और तिस उपाधिवाले तैजस, हिर-ण्यगर्भ दोनोंको दिखाकर, स्थूल शरीर आदि (ब्रह्माण्डादि) की उत्पत्तिकी सिद्धि अर्थ पंचीकरणनिरूपण करतेहैं भगवान्, कहिये, ऐश्वर्य आदिक षट्गुणसम्पन्न परमेश्वर फिर तिन जीवोंके भोग (सुखदुःख साक्षात्कार) वास्ते अन्नपानादि-रूप भोग्यके और जरायुज अंडज आदि चार प्रकारके शरीरकी जातिरूप भोगायतन (भोगस्थान) के जन्म (उत्पत्ति) अर्थ, आकाशादिक जो पंचभूत हैं तिन एक एक को पांच पांच प्रकार करताहै. एक एक भूतको पांच पांच प्रकार करनेको पंचीकरण कहतेहैं ॥ प्रथम पंच भूतोंके दो दो वृद्ध भाग (आधे आधे) किये, उन प्रत्येकके प्रथम वृद्ध

भागको पृथक् पृथक् रक्खा और उनके द्वितीय वृद्ध भागके बराबर चार चार विभाग करके अपने अपने अर्ध भागोंको त्यागकर दूसरे भूतोंके अर्द्ध भागोंमें मिलानेसे पंचीकरण होताहै॥

उपादान कारणरूप पंचीकृत भूतोंसे ब्रह्माण्ड उत्पन्न होताहै। तिस ब्रह्मांडके भीतर, ऊपर भागमें वर्त्तमान पृथिवी आदिक सप्तभुवन (लोक) हैं, पृथिवीके नीचे सप्त अतल आदिक पातालरूप भुवन हैं, तिन चतुर्दश भुवनमें तिन तिन प्राणियों (जीवों) के भोगने योग्य अन्नादिक और तिस तिस लोकके योग्य शरीर तिन पंचीकृत भूतोंसेही ईश्वरकी आज्ञा (इच्छा) से उत्पन्न होतेहैं ॥ ऐसै (प्रकार) इस स्थूल देहोंकी उत्पत्ति हुई तिन स्थूल शरीरोंमें अभिमानी समष्टिरूप हिरण्यगर्भको वैश्वानर (विराट) कहतेहैं और एक एक स्थूल शरीरके अभिमानी व्यष्टिरूप तैजस जीवोंको विश्व नामसे कहते हैं, तिन (विश्वजीवों) के अवान्तर भेद देवतिर्यक (पशुपक्षी) नर आदिकहैं ॥ सो देवादिक पराक् (बाह्य) दर्शी हैं, अर्थात् बाह्य शब्दादिक विषयोंकोही देखतेहैं और प्रत्यक आत्माको नहीं देखतेहैं । क्योंकि स्वयंभू (परमात्मा) ने इन्द्रियोंको पराक् अर्थात् बहिर्मुख रचना की, तातें पुरुष बाह्य वस्तुओंको देखताहै, अन्तर आत्माको नहीं देखता ॥ सो जीव प्रत्यक् आत्माके बोधके अभावसे भोग (सुखादिकके अनुभव) अर्थ मनुष्यादि शरीरोंको आश्रय करके तिस तिम शरीरके योग्य व्यापारको करते हैं और कर्म करनेको

देवादिक शरीरोंसे तिसतिस फलको भोगतेहैं । जैसे नदीके प्रवाहमें पडे हुये कीट भ्रमणसे और भ्रमणको तत्काल पातेहुए निर्वृत्ति (सुख) को नहीं पातेहैं, तैसे संसारमें वर्तमान जीवभी तत्काल जन्मसे और जन्मको पाते हुए सुखको नहीं प्राप्त होतेहैं ॥

अथ जीवको संसारसे निवृत्तिका प्रकार ।

उक्त कीटको उसके पूर्वजन्ममें सम्पादन कियेहुए सत्कर्मके परिपाकसे कोई कृपालु सत्पुरुष नदीके प्रवाह (धारा) से बाहर निकालकर तीरके किसी वृक्षकी छायामें करदे तो वह सुखपूर्वक विश्रामको पाताहै इसी प्रकार सो जीवभी पूर्व उत्पादन किये हुये पुण्यकर्मके परिपाकके वशसेही तत्ववेत्ता आचार्य (गुरु) से उपदेशको पाकर पंचकोशोंके विचारसे परमनिवृत्ति (सुख) को प्राप्त होताहै ॥

अथ पंचकोशनिरूपण ।

पंचीकृतभूतोंसे उत्पन्न स्थूलशरीर अन्नमय कोश है। लिंगशरीरमें वर्तमान रजोगुणसे उत्पन्न पंचप्राण, पंचकर्मइन्द्रिय यह प्राणमय कोश है ॥ संशयरूप और पंच भूतोंके सत्व अंशोंका कार्यरूप मन तथा एक एक भूतके सत्व अंशके कार्यरूप पंचज्ञान इन्द्रिय इनके समुदायका नाम मनोमय कोश है । निश्चयरूप तथा भूतोंके सत्वगुणका कार्यरूप बुद्धि, पंचज्ञान इन्द्रियसहित विज्ञानमय कोश है । कारण शरीररूप अविद्यामें जो मलीन सत्वगुण है, सो प्रियमोद प्रमोद नामवाले क्रमसे इष्ट (प्रिय) का दर्शनलाभ, भोगसे

जन्य जो सुखविशेष है तिनसहित आनन्दमय नामकोश है॥ प्रत्यगात्मा तिस तिस अन्नमयादि कोशके साथ तादात्म्य अभिमानसे तिस तिस कोशका रूप होताहै ॥ उक्त पंचकोशों अर्थात् अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनन्द-मयसे आच्छादित (ढपा) हुआ स्वात्मा (स्वरूपभूतआत्मा) स्वस्वरूपके विस्मरणसे जन्मादिककी प्राप्तिरूप संसारको प्राप्त होताहै । जैसे कुशवारीका कीट अपने गृहरूप कोशमें आवरण को प्राप्त होकर कष्ट पाता है; तैसे अन्नमयादिक पंचकोशोंसे आवरणको प्राप्त हुआ आत्मा अपने अद्वयत्व, आनंदत्व आदिक स्वरूपको विस्मरण कर कष्ट पाता है ॥

अन्वयव्यतिरेकसे आत्माका ब्रह्मरूप होना निरूपण ।

अन्वय, व्यतिरेक करके विचारपूर्वक पंचकोशोंसे अपने आत्माको भिन्न निश्चय करि परब्रह्मको प्राप्त होताहै अर्थात् परब्रह्मका स्वरूपही हो जाताहै ॥ अब पंचकोशोंमें आत्माका अन्वय और कोशोंका परस्पर व्यतिरेक दिखाते हैं:—स्वप्नअव-स्थामें अन्नमय कोशरूप स्थूलशरीरकी अप्रतीतिके हुए, साक्षी आत्माका जो स्वप्नका साक्षी होनेसे स्फुरण है, सो आत्माका अन्वय है । और तिसही स्वप्न अवस्थामें स्थूल-देहकी जो अप्रतीति है; सो स्थूलदेहका व्यतिरेक है ॥ १ ॥ सुषुप्ति अवस्थामें सूक्ष्म देहरूपलिंगकी अप्रतीतिके हुए, आत्माका जो सुषुप्ति अवस्थाका साक्षी होनेसे स्फुरण है; सो आत्माका अन्वय है । और तिस आत्माके भान

(प्रतीति) हुए जो लिंगदेहका अस्फुरण (अप्रतीति) है; सो तिस लिंगदेहका व्यतिरेक है ॥ २ ॥ तिस लिंगशरीरके विवेकसे प्राणमय, मनोमय, और विज्ञानमय तीन कोश आत्मासे भिन्न हुए ॥ २ ॥ समाधि अवस्थामें सुषुप्तिके अभान (अप्रतीति) हुए जो आत्माका भान है; सो अन्वय है। और आत्माके भान हुए जो सुषुप्तिका अभान है, सो व्यतिरेक है; अर्थात् समाधि अवस्थामें सुषुप्ति शब्दसे उपलक्षित कारण देहरूप अज्ञानकी अप्रतीतिके हुए, जो आत्माकाही भान (स्फुरण) है; सो आत्माका अन्वय है। और आत्माके भानके होते; सुषुप्ति शब्दसे उपलक्षित अज्ञानकी अप्रतीतिही; तिस अज्ञानका व्यतिरेक है ॥ ३ ॥ तात्पर्य यह है कि प्रत्यक आत्मा अन्नमयादिक पंचकोशोंसे भिन्न है; क्योंकि तिन कोशोंके परस्पर भिन्न प्रतीत हुएभी आप आत्मा तिन कोशोंमें अनुगत (अनस्यूत) होनेपरभी उक्त पंचकोशों, तीनों अवस्था तथा तीनों शरीरोंसे भिन्नही रहताहै। जैसे पुष्पमालामें पुष्पोंके परस्पर भिन्न प्रतीत हुएभी तिन पुष्पोंमें परोया जो सूत्र है सो आप स्वरूपसे अभिन्न प्रतीत होताहै, परन्तु पुष्पोंसे भिन्नही है ॥

जिस प्रकार पुरुष मूंज इस नामवाले तृणके गर्भ (बीच) में स्थित तृणरूप ईपिका (सिरकी) को बाहर आवरण करनेवाले स्थूल पत्रादिके भंजनरूप उपायसे निकालते हैं, तैसे इस आत्माकोभी अन्वय व्यतिरेकरूप उपायसे पर्वोक्त पंचकोश-

रूप तीनों शरीरोंसे ब्रह्मचर्यादि साधनसम्पन्न अधिकारी पुरुष जब भिन्न करताहै तब सो आत्मा परब्रह्मही होवाहै ॥

महावाक्य करि जीवब्रह्मकी एकताका प्रतिपादन तत्त्वमसि महावाक्यका अर्थ।

परमात्मा और जीवात्मा जो क्रमसे "तत्" पद और "त्वं" पदके अर्थरूप हैं, तिन दोनोंकी एकता (अभिन्नता) लक्षण (चिदानन्दरूपता) की समताके दर्शन (दिखावना) आदिक अर्थात् अन्वय व्यतिरेक आदि उपायरूप युक्तिसे जिज्ञासु वा वादीकी बुद्धिमें अंगीकार कराई है, सोई एकता "तत्त्वमसि" आदिक महावाक्योंसे विरुद्ध अंशके त्यागपूर्वक लक्षणवृत्तिसे बोधन करते हैं:—प्रथम "तत्" पदके वाच्य अर्थको कहतेहैं:—जो सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म तमोगुणप्रधान मायाको उपाधिरूपसे स्वीकार करके चर, अचररूप कार्यके समूह जगत्का उपादान होवाहै, और सत्वगुणप्रधान मायाको उपाधिरूपसे स्वीकार करके निमित्त होवा है; अर्थात् जैसे कुलाल घटकी उपादानमृत्तिका और अन्यनिमित्त दण्ड चक्रादिकोंका जाननेवाला हुआ घटका कर्त्ता है; तैसे विशुद्ध सत्वप्रधान माया उपहित ब्रह्म भी जगतकी उत्पत्ति आदिकका हेतु सर्व सामग्रीका ज्ञाता हुआ जगतका कर्ता है, सो निमित्त, उपादान दोनोंरूप ब्रह्म (ईश्वर) "तत्त्वमसि" इस महावाक्य (जीवब्रह्मकी एकताके बोधक वाक्य) में स्थित "तत्" पदसे कहा

जाताहै अर्थात् सो "तत" पदका वाच्य है ॥ अब "त्वं" पदके वाच्य अर्थको कहते हैंः-सोई परब्रह्म जब मलिन सत्व-गुण युक्त और काम आदिकसे दूषित तिस मायाको ग्रहण करताहै, तब त्वं पद कहा जाताहै अर्थात् सो "त्वं" पदका वाच्य है ॥ इस रीतिसे "तत्" पद और "त्वं"पदके अर्थको कहकर वाक्य (पदसमुदायरूप) के अर्थको कहतेहैंः-- तमः प्रधान, विशुद्धसत्वप्रधान और मलिनसत्वप्रधान इन तीन प्रकारकी परस्पर विरोधिनी मायाको परित्याग करके अखंड (भेदरहित) सच्चिदानन्द ब्रह्म महावाक्यसे लक्षणा द्वारा जानाजाताहै ॥ लक्षणावृत्तिसे वाक्यके अर्थका बोधन कहां देखा है इस आशंकासे कहते हैंः--"सो यह देवदत्त है" इत्यादिक वाक्योंमें सो कहिये परोक्षदेश, दूर कालयुक्त धर्म और यह कहिये अपरोक्षदेश, समीप कालयुक्त धर्म, इन दोनोंके विरोधसे अर्थात् एकताके असम्भवसे विरुद्ध भागोंके त्याग करनेसे एक आश्रय अर्थात् देवदत्तका स्वरूप (शरीर) एकही है, यह भागत्याग लक्षणासे जाना जाता है; जिसका रूपक निरूपण यह हैः--

एक देवदत्त नामवाला पुरुष था जिसको यज्ञदत्त नाम-वाले पुरुषने अन्य देशमें (पूर्वकालमें) पहिले देखा था । सो देवदत्त पुरुष बहुत काल पीछे स्वदेशको छोड़कर तिस यज्ञदत्तके देशमें गया, तब यज्ञदत्तने अपने पास बैठे हुए पुरुषसे कहाः-- "सो यह देवदत्त है" अर्थात् सो (अन्य

देश पूर्वकालमें मेरा देखा) यह (इस देश आधुनिक (वर्तमान) कालमें प्राप्त) देवदत्त पुरुष है ॥ यह सुनकर श्रोता पुरुषने यज्ञदत्तसे कहा "अन्य देश काल और इस देशकालकी एकताका विरोध है, यातें तिस देशकाल वाला पुरुष इस देशकालवाला कैसे सम्भव है" तब यज्ञदत्तने कहाः-- तिस देशकालयुक्ततारूप धर्म और इस देशकालयुक्ततारूप धर्मकी दृष्टिको छोड़कर दोनों धर्मोंमें अनुस्यूत (वर्तनेवाला) धर्मीरूप देवदत्तका पिंड एकही है । यह मेरे कहनेका अभिप्राय है, यह सुनकर "सो यह देवदत्त है" इस प्रकार उस श्रोताने निश्चय किया ॥ तिसी प्रकार "सृष्टिसे पूर्व एकही अद्वितीय सत्रूप ब्रह्म था" यह श्रुतिमें सुनते हैं । तिस ब्रह्मको तत्त्वज्ञानी महात्माने अपने आपको जाना है ॥ सोई ब्रह्म सृष्टिकालके अनन्तर अविद्या उपाधिसे जीवभावको प्राप्त होकर संसारमें भटकता फिरता है । जब किसी पुण्यके परिपाकसे विवेकादि सम्पन्न शिष्य होकर तिस महात्मा गुरुके शरण विधिपूर्वक आया तब गुरुने कहाः--"सो (सृष्टिसे पूर्व विद्यमान एकही अद्वितीय सत् रूप ब्रह्म) तू (सृष्टिके अनन्तर कालमें संसारदशामें भटकने वाला जीव) है" यह सुनकर तिस जीव (शिष्य) ने मनरूप श्रोताद्वारा कहाः -हे गुरो ! मैं अल्पज्ञता, अल्पशक्तिता, पराधीनतादि निकृष्ट धर्मवाला, सो सर्वज्ञता, सर्व शक्तिता, स्वतंत्रतादि श्रेष्ठ धर्मवाला परमेश्वर कैसे हो सकता हूं ? तब गुरुने कहाः—"ईश्वरकी माया-

उपाधि और तिस मायाके किये सर्वज्ञवादिक धर्मों; और जीवकी कार्य (व्यष्टि स्थूल सूक्ष्म शरीर) सहित अविद्या उपाधि और तिस अविद्याके किये अल्पज्ञतादि धर्मोंको और उत्पत्ति स्थिति, प्रलय, और जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति इस कालको स्वप्न और मनोराज्यकी नांई कल्पित होनेसे, मिथ्या जान कर, ये हैंही नहीं; इस रीति इनकी दृष्टि त्यागकर, अवशेष, अखण्ड सच्चिदानन्दरूपब्रह्म, मैं ही हूं; यह जान'' ॥ तब वह जीव, मनरूप श्रोताद्वारा सुनकर मनन; निदिध्यासन करके आपको ब्रह्मरूप करके साक्षात्कार करता भया ॥ यह शिष्यकी बुद्धिमें सुगमतासे समझने अर्थ रूपक करके दृष्टान्त सिद्धान्त वर्णन है ॥ इति ॥

पूर्वोक्त प्रकारसे ईश्वरकी उपाधिमाया और जीवकी उपाधि अविद्याको त्यागकर अखण्ड (भेदरहित) सच्चिदानन्दरूप परब्रह्मको महावाक्यद्वारा लक्षणासे मुमुक्षु जन जानकर निदिध्यासनपूर्वक साक्षात्कार करके संसार (जन्ममरण) बन्धनसे विमुक्त होवै ॥ इति ॥

अथ महावाक्यविचार निरूपण।

१ ऋग्वेदकी ऐतरेय उपनिषदगत "प्रज्ञान ब्रह्म" इस महावाक्यका अर्थ।

१ "प्रज्ञान" पदका अर्थ।

अन्तःकरणकी वृत्ति उपहित (साक्षी) चैतन्य जो नेत्रद्वारा देखता है, श्रोत्रद्वारा सुनताहै, नासिकाद्वारा गंधके

समूहको सूंघताहै, वाकइन्द्रियद्वारा शब्दके समूहको बोलताहै, रसनइन्द्रियद्वारा स्वादअस्वाद दोनो भांतिके रसको जानताहै इत्यादि सकल इन्द्रियों और अन्तःकरणकी वृत्तियोंसे उपलक्षित जो (कूटस्थ) चैतन्य है तिसको "प्रज्ञान" ऐसा कहतेहैं,

२ "ब्रह्म" पदका अर्थ तथा (एकतारूप) वाक्यार्थ ।

उत्तम जो देवादिक हैं, मध्यम जो मनुष्य, अधम जो अश्व गौ आदिक हैं, तिन सर्व देहधारियोंमें तथा आकाशादिक भूतोंमें, जगत्के उत्पत्ति आदिका हेतुरूप जो एक व्यापक चेतन है तिसको ब्रह्म कहतेहैं ॥ इस प्रकार "प्रज्ञान" और "ब्रह्म" इन पदोंके अर्थको कहकर वाक्य (पदसमुदायरूप) के अर्थको कहतेहैंः—जैसे सर्व देव, मनुष्य, पशु, आकाशादिकमें स्थित प्रज्ञान ब्रह्म है, तैसे मुझमेंभी प्रज्ञान ब्रह्म स्थित है, तात्पर्य यह है कि मुझ प्रज्ञानरूपमें तथा ब्रह्ममें अभेद है ॥ इति ॥

२ यजुर्वेदकी बृहदारण्यक उदनिपदगत "अहं ब्रह्मास्मि" इस महावाक्यका अर्थ निरूपण ।

अहं पदका अर्थ ।

परिपुर्ण परमात्मा, विद्या (ज्ञान) के अधिकारी इस देहमें बुद्धिका साक्षिरूपसे स्थिव होकर जो स्फुरता है, सो "अहं" (मैं) इस पदसे कहा जाताहै ॥

"ब्रह्म" पदका अर्थ और "अस्मि" पदके अर्थसे (एकतारूप) वाक्यार्थ ।

स्वभावसे, देश, कालसे अनवच्छिन्न (अपारिच्छिन्न)

जो स्वतःपरिपूर्ण परमात्मा है सो यहां ("अहं ब्रह्मास्मि" इस महावाक्यमें) "ब्रह्म" शब्दसे वर्णन किया है यह अर्थ है ॥ इस वाक्यगत "अस्मि" इस पदसे दोनों ("अहं" अरु "ब्रह्म" इन) पदोंके सामानाधिकरण्यसे लक्ष्य जो जीव ब्रह्मकी एकता है, सो स्मरण कराताहै, ऐसा कहते हैं ॥ "अस्मि" यह पद एकताका स्मरण करानेहारा है, तिस हेतुसे मैं ब्रह्मही हूँ ॥ इति ॥

३ सामवेदकी छांदोग्य उपनिषदगत "तत्त्वमसि" इस महावाक्यका अर्थ निरूपण।

अब सामवेदकी छांदोग्य उपनिषदगत "तत्त्वमसि" (सो तू है) इस महावाक्यके अर्थ प्रकाश करनेवास्ते "तत्" (सो) (सो) पदके लक्ष्य (लक्षणावृत्तिके विषय) अर्थको कहतेहैं (एकमेवेति) सृष्टिसे पूर्व एकही अद्वितीय नाम रूप रहित जो सत था, इस सतका अब सृष्टिके पीछेभी वही स्वरूप "तत्" (सो) ऐसा कहतेहैं, तात्पर्य यह है कि सृष्टिके पूर्व स्वगतादि भेद शून्य और नामरूपरहित जो सत् वस्तु था इस सत्वस्तुका अब (सृष्टिसे उत्तर कालमें) भी विचार दृष्टिसे स्वगतादि भेदरहित नामरूप वर्जित, सत्पना है, सो तत इस पदसे कहा जाताहै, यह अर्थ है ॥

१ भिन्न अर्थयुक्त (अपर्याय) पदोंकी समान विभक्तिके बलसे एकही जो प्रवृत्ति, सो सामानाधिकरण्य कहलाताहै ॥

"त्वं" पदका अर्थ और "असि" पदके अर्थसे (एकतारूप) वाक्यार्थ ॥

श्रवणादिक अनुष्ठानसे महावाक्यके अर्थका निश्चय करनेहारा जो श्रोता है, सो देह इन्द्रियसे परे कहिये, देह और इन्द्रियोंसे उपलक्षित स्थूलसूक्ष्मकारणरूप जो तीन शरीर हैं, तिनका साक्षीहोनेसे तिनसे विलक्षण (अलग) जो तत् वस्तु है, सो महावाक्यगत "त्वं" यह पदसे लक्षण पूर्वक जाना जाता है, यह अर्थ है ॥ इस महावाक्यमें जो "असि" पद है, सो "तत्" पद और "त्वं" पदके एक अर्थमें तात्पर्य करके सिद्ध जो जीव ब्रह्मकी एकता है, सो असि पदका अर्थ है ॥ इस प्रकार "तत्" और "त्वं" पदके अर्थ अर्थात् ब्रह्म आत्माकी प्रमाणसिद्ध एकता मुमुक्षु जनोंको अनुभव करना चाहिये ॥ इति ॥

अथर्ववेदकी माण्डूक्य उपनिषद्गत "अयमात्मा ब्रह्म" इस महावाक्यका अर्थ निरूपण ।

"अयम्" और "आत्मा" पदका अर्थ ।

"अयम्" इस शब्दसे साक्षीका स्वप्रकाशतायुक्त अपरोक्षपना अभिमत (माना) है । अहंकारसे आदि लेकर देह पर्यंत संघातसे जो प्रत्यक् (अन्तर) है तथा इस संघातका अधिष्ठान और साक्षिरूपसे अन्तर स्थित जो चेतन है सो इस महावाक्यमें "आत्मा" ऐसा कहतेहैं यह अर्थ है ॥

"ब्रह्म" पदका अर्थ और एकतारूप वाक्यार्थ।

दृश्यमान सर्व जगत्का जो तत्त्व (वास्तव स्वरूप) है अर्थात् दृश्य होनेसे मिथ्या रूप जो सर्व आकाशादिक जगत है तिसका तत्त्व कहिये अधिष्ठान होनेसे और तिस जगतके बाधका अवधि (सीमा) होनेसे पारमार्थिक सच्चिदानन्द लक्षणयुक्त जो स्वरूप है सो इस महावाक्यमें "ब्रह्म" शब्दसे कहतेहैं यह अर्थ है॥ वाक्यसमुदायके अर्थको कहतेहैं, सो ब्रह्म स्वप्रकाश आत्मस्वरूप है अर्थात् उक्त लक्षणवाला जो ब्रह्म है सो यही स्वप्रकाश आत्म (अपना) स्वरूप है, यह ब्रह्म आत्माकी एकतारूप वाक्यका अर्थ है॥ इस रीतिसे जो चार महावाक्यका अर्थरूप ब्रह्मआत्माकी एकता कही तिसको विवेक वैराग्य आदिक चार साधनसंयुक्त मुमुक्षु जन जिस प्रक्रियामें रुचि रखता हो उस प्रक्रियाकी रीतिसे वेदान्तशास्त्र और ब्रह्मनिष्ठ गुरुके मुखद्वारा वाच्य अर्थ और लक्ष्य अर्थके विचारसे पदार्थ (पदोंका अर्थ) शोधनपूर्वक यथार्थ जानकर श्रवण, मनन, निदिध्यासद्वारा विपर्ययको निवारण कर दृढ़ अपरोक्ष निष्ठासे अज्ञान और तिसके कार्यरूप अनर्थकी निवृत्ति और परमानन्दकी प्राप्तिरूप जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्तिका अनुभव करै॥इति॥

महावाक्यार्थके ज्ञानमें उपयोगी जहत्, अजहत्, भागत्यागलक्षणा इत्यादि पदार्थोंका कथन।

वाक्यार्थके ज्ञानमें पदार्थका ज्ञान उपयोगी है और पदार्थके ज्ञानमें शब्दकी वृत्ति (शक्ति औ लक्षणा) का ज्ञान

उपयोगी है । पदका जो अर्थसे संबंध उसको वृत्ति कहतेहैं, सो वृत्ति दो प्रकारकी है:—एक शक्तिवृत्ति है, दूसरी लक्षणा वृत्ति है । पदमें जो अर्थ करनेकी सामर्थ्य सो पदकी शक्ति है । जैसे घट पदके श्रोताको कलशरूप अर्थके ज्ञान करनेकी जो घटपदमें सामर्थ्य है, सोई घट पदमें शक्ति है; इसी प्रकार सर्व पदनमें जान लेना । पदकी शक्ति वृत्तिसे जिस अर्थका ज्ञान होताहै, उसको शक्य अर्थ तथा वाच्य अर्थ कहतेहैं । शक्य (वाच्य) अर्थका जो संबंध सो लक्षणावृत्ति कहतेहैं. सो लक्षणावृत्ति तीनप्रकारकी है:—एक जहतलक्षणा दूसरी अजहत् लक्षणा तीसरी भागत्याग लक्षणा है । जहां संपूर्ण वाच्य अर्थका त्याग करके वाच्य अर्थके संबंधीकी प्रतीति होवे, तहां जहत् लक्षणा कहतेहैं. "जैसे गंगामें ग्राम है" इस स्थानमें गंगा पदकी तीरमें जहत् लक्षणा है, काहेतें गंगा शब्दका वाच्य अर्थ जो देवनदीका प्रवाह है, तिसमें ग्रामकी स्थिति संभव नहींहै. यातें सारे वाच्य अर्थको त्याग तीरमें गंगापदकी जहत् लक्षणा है, और जहां वाच्य अर्थसहित वाच्यके संबंधीकी प्रतीति होवे, तहां अजहत् लक्षणा कहतेहैं जैसे "शोण (लालरंग) धावन करताहै" तहां शोणपदकी लाल रंगवाले अश्वमें अजहत् लक्षणा है, काहेतें केवल लाल रंगमें धावनका असंभव है, यातें शोण पदका वाच्य जो लालरंग तासहित अश्वमें शोणपदकी अजहत् लक्षणा है, और जहां वाच्य अर्थके मध्य एक (विरोध) भागका त्याग होवे और एक (अविरोध) भागका ग्रहण होवे, तहां भाग-

त्याग लक्षणा कहतेहैं, जैसे पूर्व देखी वस्तुको अन्यदेशमें देखकर किसीने कहा "सो यह है" तहां भागत्याग लक्षणा है, काहेतें भूतकाल और अन्य देशमें स्थित वस्तुको "सो" कहते हैं, यातें भूतकाल और अन्यदेश सहित वस्तु "सो" पदका वाच्य अर्थ है और वर्तमानकाल समीप देशमें स्थित वस्तुको "यह" कहतेहैं, यातें वर्तमानकाल और समीप देश-सहित वस्तु "यह" पदका वाच्य अर्थ है। भूतकाल अन्यदेश-सहित जो वस्तु, सोई वर्तमानकाल और समीप देशसहित है, यह समुदाय (सारे वाक्य) का वाच्य अर्थ है, सो संभव नहीं, काहेतें भूतकालका और वर्तमानकालका विरोध है, तैसे अन्य देशका और समीप देशका विरोध है, यातें दोनों पदनमें देशकाल जो वाच्य भाग, तिसको त्यागकर वस्तु-मात्रमें दोनों पदनकी भागत्याग लक्षणा है॥

शब्दकी लक्षणा वृत्तिसे जिस अर्थका ज्ञान होवै, सो अर्थ लक्ष्य अर्थ कहलाताहै। जैसे पलाश वृक्षकी एकही लघु शाखामें तीन पर्ण होते हैं; तैसे एकही वेदान्तसिद्धान्तमें उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ अधिकारिनके बोधन अर्थ तीन पक्ष हैं:- १ अजातवाद, २ दृष्टिसृष्टिवाद, ३ व्यावहारिकपक्ष (सृष्टिदृष्टिवाद) है। जहां एकही परमार्थसत्ता (चेतन) का अंगीकार है, सो अजातवाद कहलाताहै; जहां परमार्थसत्ता और प्रातिभासिक सत्ता दोनोंका अंगीकार है; सो दृष्टिसृष्टिवाद कहलाता है; और जहां परमार्थ, प्रातिभासिक, और व्यावहारिक इन तीन सत्ताओंका अंगीकारहै, सो व्यावहारिक पक्ष कहलाताहै। तिनमें

अजातवादमें तो आरोप और अपवादके अभावसे वाच्यार्थ, लक्ष्यार्थकी कल्पना बनै नहीं और दृष्टिसृष्टिवादमें स्वकल्पित राजाकी नांई जीव कल्पित जो ईश्वर है, सो "तत्" पदका वाच्यार्थ है. और अविद्या आवृत (अज्ञात) ब्रह्मरूप जो जीव है, सो "त्वं" पदका वाच्यार्थ है । दोनों पदोंका शुद्ध ब्रह्म लक्ष्यार्थ है॥ और व्यावहारिक पक्षके अंतर्गत पांच पक्ष हैं; एक बिंबप्रतिबिंबवाद, दूसरा कार्यकारण उपाधिवाद, तीसरा अविच्छिन्न, अनवच्छिन्नवाद, चतुर्थ अवच्छेदवाद, पंचम आभासवाद, ये पांच पक्ष हैं, तिनमें, बिंबप्रतिबिंबवादकी रीतिसे अज्ञान उपहित शुद्ध ब्रह्मरूप बिंब ईश्वर है सो "तत्" पदका वाच्य अर्थ है, और समष्टि अज्ञानके संबंध करके भ्रांतिसे प्रतिबिंबभावको प्राप्त हुआ ब्रह्मरूप जो एकही जीव, सो "त्वं" पदका वाच्य अर्थ है, और बिंबप्रतिबिंबभावकी कल्पनासे रहित असंग जो शुद्ध चेतन है, सो दोनों पदोंका लक्ष्य अर्थ है ॥ १ ॥ और कार्य कारण उपाधिवादकी रीतिसे कारण (माया) उपाधिवाला चेतन ईश्वर ("तत"पदका वाच्य) है, और कार्य (अन्तःकरण) उपाधिवाला चेतन जीव ("त्वं"पदका वाच्य) है । दोनों उपाधिरहित शुद्धब्रह्म दोनों पदोंका लक्ष्य अर्थ है ॥ २ ॥ अवच्छिन्न अनवच्छिन्न वादकी रीतिसे अन्तःकरण अनवच्छिन्न चेतन ईश्वर ("तत" पदका वाच्य) है और अन्तःकरण अवच्छिन्न चेतन जीव "त्वं" पदका (वाच्य) है और अवच्छिन्नपने और अनवच्छिन्नपने रूप उपाधिरहित

शुद्धब्रह्म दोनोंपदोंका लक्ष्य अर्थ है ॥ ३ ॥ और अवच्छेद-वादकी रीतिसे माया करि अवच्छिन्न (विशिष्ट) चेतनरूप ईश्वर "तत्" पदका वाच्य अर्थ है और माया अनवच्छिन्न ब्रह्मचेतन "तत्"पदका लक्ष्य अर्थ है । अन्तःकरण वा व्यष्टि अज्ञान करि अवच्छिन्न (विशिष्ट) चेतनरूप जीव "त्वं"पदका वाच्य अर्थ है और अन्तःकरण वा व्यष्टि अज्ञान अनवच्छिन्न कूटस्थ चेतन"त्वं"पदका लक्ष्य) अर्थ है, तिन दोनों लक्ष्य अर्थ (ब्रह्म और कूटस्थ) की अखंड एकरसता है ॥४॥ इस ग्रंथउक्त आभासवादकी रीतिसे साभास (चिदा-भाससहित) माया विशिष्ट चेतनरूप ईश्वर ("तत्" पदका वाच्य अर्थ है)और साभास मायाभागका त्याग करके अवशेष शुद्ध ब्रह्म लक्ष्यार्थ है । साभास अन्तःकरण वा व्यष्टि अज्ञान अंश विशिष्ट चेतनरूप जीव "त्वं" पदका वाच्य अर्थ है, और साभास अन्तःकरण वा व्यष्टि अज्ञान अंशरूप उपाधि (विशेषण) भागका त्याग करके अवशेष चेतन (कूटस्थ) लक्ष्य अर्थ है, तिन दोनों लक्ष्य अर्थ (कूटस्थ और ब्रह्म) की अखंड एकरसता है ॥५॥ उक्त सर्व प्रक्रियाका, जीवभाव ईश्वरभाव और जगतका आरोप करके तिनके अपवादद्वारा अद्वैत ब्रह्मके बोधनमें तात्पर्य है । यातें जिस मुमुक्षुको जिस प्रक्रि-याकी रीतिसे अद्वैत ब्रह्मका ज्ञान होवै; तिसको सोई प्रक्रिया समीचीन है ॥ इस प्रकार "तत्त्वमसि" महावाक्यमें दिखाई जो वाच्य लक्ष्यकी रीति, सो और तीन महावाक्योंमेंभी जान लेनी । यद्यपि इस महावाक्यविवेकमें सर्व महावाक्य-

गत दोनों पदोंके लक्ष्य अर्थ कहकर तिनकी एकता परस्पर जनाईहै, सो मुमुक्षुको उपादेय है । तथापि वाच्य अर्थके ज्ञानविना वाच्य अर्थमें प्रविष्ट लक्ष्य अर्थका स्पष्ट ज्ञान होता नहीं यातें वाच्य लक्ष्य दोनोंका कथन किया है. तिसको न जानकर मुमुक्षुको ब्रह्मात्माकी एकताका निश्चयरूप तत्त्वज्ञान होता नहीं, शंकासमाधानरूप विवाद बहुत है; सो शुद्ध बुद्धिवाले जिज्ञासुको उपयोगके अभावसे और ग्रंथविस्तारके भयसे नहीं लिखा किन्तु दिशामात्र दिखाई है. यद्यपि उक्त चार महावाक्योंमें क्रमसे विद्यमान जो "प्रज्ञानम्" "अहं" "त्वं" और "अयं विशेषणवाला आत्मा" ये चार पाद हैं, तिनका वाच्य अर्थ सर्व मतकी रीतिसे जीव है । इसी प्रकार "ब्रह्म" "ब्रह्म" "तत्" "ब्रह्म" इन पदोंका वाच्य अर्थ ईश्वर है । इन दोनों (जीव और ईश्वर) को अल्पज्ञतादि और सर्वज्ञतादि रूप विरुद्ध धर्मवाले होनेसे इन दोनोंकी एकताका घटाकाश (घटविशिष्ट आकाश) और मठाकाश (मठविशिष्ट आकाश) की एकताकी नांई असंभव है, तथापि घटमठकी दृष्टिको त्याग कर तिन दोनोंमें स्थित जो आकाशमात्र है तिनकी एकताके संभवकी नांई, लक्षणासे धर्मसहित उपाधिभागको त्यागकर दोनों (जीव ईश्वर) में जो लक्ष्य अर्थ चेतनमात्र है, तिसकी एकता संभव है । यहां महावाक्योंके दोनोंदोनों पदोंमें जहत् लक्षणा संभव नहीं क्योंकि लक्ष्यार्थ जो आत्मा और ब्रह्म है, सो वाच्य अर्थ (जीव ईश्वर) में प्रविष्ट है, जो जहत लक्षणाकी रीतिसे सारे

वाच्य अर्थका त्याग होवै, तो तिसके साथ लक्ष्य अर्थकाभी त्याग होवैगा, और अजहत् लक्षणाभी संभवै नहीं. क्योंकि अजहत् लक्षणाकी रीतिसे वाच्य अर्थके त्याग कारि विरोधके विद्यमान होनेसे लक्षणाकी व्यर्थताका प्रसंग होवैगा। याते "सो यह देवदत्त है" पृष्ठ ३५९ में लिखित दृष्टान्तकी नांई विरोधीभागके त्याग और अविरोधीअंशके ग्रहणसे एकता संभवके अनुसार यहां भागत्याग लक्षणाही संभव है। इस रीतिसे आचार्यने लक्षणा करके जीवईश्वरकी एकता दिखलाई ॥ यदि उक्त रीतिसे ब्रह्मजीवकी एकतामें अधिकारीको कुछ भ्रांति होवै तो उसके निवारणार्थ ओतप्रोतभाव कर्तव्य है। तिस ओतप्रोतकी रीति यह है:-"तत्" पदके अर्थमें परोक्षताभ्रांतिके निवारणार्थ "तत्त्वं" (सो तू है) इस प्रकार "तत्" पदके अर्थको उद्देश करके "त्वं" पदकी अर्थरूपता विधेय है, और "त्वं" पदके अर्थमें परिच्छिन्नता भ्रांतिके निवारणार्थ "त्वं तत्" + (तू सो है) इस प्रकार "त्वं" पदके अर्थको उद्देश करके "तत्" पदकी अर्थरूपता विधेय है, काहेते "तत" पदके अर्थ ब्रह्मकी "त्वं" पदके अर्थ नित्य अपरोक्ष साक्षीरूपतासे परोक्षता भ्रांतिकी हानि होतीहै, और "त्वं" पदके अर्थ साक्षीकी "तत्" पदके अर्थ व्यापक ब्रह्मरूपता करके परिच्छिन्नता भ्रांतिकी हानि होतीहै। तैसेही "अहं ब्रह्म" "प्रज्ञानं ब्रह्म" "आत्मा ब्रह्म" इस प्रकार जाननेसे परिच्छिन्नताकी हानि होतीहै। और ब्रह्म "अहं" "ब्रह्म प्रज्ञानं" "ब्रह्म आत्मा" ऐसा

जाननेसे परोक्षताकी हानि होती है । यह ओतप्रोत भावकी रीति है । श्रीमद्भागवतके द्वादश स्कंधगत पंचम अध्यायके एकादशवें श्लोकमें श्रीशुकदेवजीने "मैं परमधाम (निरतिशय स्वरूप) ब्रह्म हूं और परमपद (निरतिशय स्वरूप) ब्रह्म मैं हूं, इस प्रकार सम्यक् देखता (विचारता) हुआ आत्मा (मन) को निष्कल (निरुपाधिक) आत्मा (ब्रह्म) में धारण करके (देहादिक सर्वको आपसे भिन्न नहीं देखैगा)" इस प्रकार परीक्षित राजाके प्रति कहा है । और आचार्योंने तिस तिस महावाक्यके प्रसंगमें लिखा है । यातें जीवके परिच्छिन्नतादिक और ब्रह्मके परोक्षतादिक भ्रांतिकी निवृत्ति अर्थ, उक्त ओतप्रोत-भाव अवश्य कर्तव्य है । उक्त प्रकारसे मुमुक्षु जन सतशास्त्र और सद्गुरुकी कृपासे अभिलषित प्रक्रियाके ज्ञानद्वारा त्रिविध परिच्छेदशून्य अखंड सच्चिदानंदादि विशेषणयुक्त समष्टिव्यष्टि सर्व प्रपंचका अधिष्ठान माया अविद्या और तिसके कार्य प्रपंचमे रहित और उपाधिकृत जीव ईश्वरके भेद आदिक पंच भेदविवर्जित, बंध मोक्ष तत्साधन, कल्पनाशून्य, प्रवृत्ति निवृत्ति रहित शुद्ध एकरस परमार्थ तत्व अपने आपको यथार्थ दृढ अपरोक्ष जानकर कृतार्थ होवै ॥ इति ॥ पंचदशीसे, सृष्टि प्रकार तथा संसारमे निवृत्तिपूर्वक अन्वयव्यतिरेक और महावाक्यविवेकद्वारा जीव ब्रह्मकी एकतानिरूपण समाप्त हुआ ॥ ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ॥

पता—खेमराज श्रीकृष्णदास "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस—बम्बई

क्रय्यपुस्तकें (वेदान्तग्रन्थ–भाषा।).

नाम. की. रु. आ.

अनुभवप्रकाश–(वेदांत) योगेश्वर श्री १०८ वनानाथजीकृत मारवाडी भाषा । इसमें–गुरुकी महिमा, योगीकी प्रशंसा, सन्तोंका प्रभाव, मनको चेतावनी, वेदान्तके पद, तत्त्वमस्यादि वाक्योंका सार, आसावरी, सोरठ, वसन्त, गूजरी आदि अनेक रागोंमें वर्णन किया है. ०–८

अभिलाखसागर–भाषामें स्वामी अभिलाखदास उदासीकृत । इसमें–वन्दनविचार, ग्रन्थविचार, मार्गविचार, भजनविचार, जडब्रह्मविचार, चैतन्यब्रह्मविचार, निराकारब्रह्मविचार, मिथ्याब्रह्मविचार, अहंब्रह्मविचार, ब्रह्मविचार, वर्तमान ब्रह्मविचारादि विषय अच्छीरीतिसे वर्णितहैं १–८

अध्यात्मप्रकाश–श्रीशुकदेवजीप्रणीत–कवित्त, दोहे, सोरठे, छन्द, चौपाई इत्यादिमें वेदान्तका अपूर्व ग्रन्थहै ०–६

अमृतधारा–वेदान्त भाषाछन्दोंमें भगवानदास निरंजनीकृत वेदान्तकी प्रक्रिया छन्दोंमें लिखीगई है ०–१०